बिहार में बेरोजगारी की समस्या

अर्थशास्त्र में पी-एच0 डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

1992

निर्देशक :
डॉ० एस० एन० पाण्डेय
अर्थशास्त्र विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

शोधकर्ता :
दीन दयाल सिंह

अर्थशास्त्र विभाग
समाज विज्ञान संकाय
काशी विद्यापीठ, वाराणसी-२

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री दीनदयाल सिंह,एम०ए० (अर्थशास्त्र) ने "बिहार में बेरोजगारी की समस्या" विषय पर प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध ,अर्थशास्त्र विभाग,काशी विद्यापीठ की पी-एच०डी०उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय के नियमानुसार पूर्ण किया है । यह मौलिक कार्य उनके द्वारा एकत्रित किये गये तथ्यों पर आधारित है ।

(डॉ०एस०एन०पाण्डेय)
अर्थशास्त्र विभाग
काशी विद्यापीठ,वाराणसी

अग्रसारित ।

(प्रो०ईश्वरदत्त सिंह)
अध्यक्ष
अर्थशास्त्र विभाग
काशी विद्यापीठ,वाराणसी
अध्यक्ष
अर्थशास्त्र विभाग
काशी विद्यापीठ-वाराणसी-२

26.12.92

दो शब्द

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है । प्राकृतिक सम्पदा और खनिज सम्पदा की दृष्टि से यह एक धनी राज्य है फिर भी यहाँ के निवासी निर्धन हैं । यह एक विडम्बना ही है । राज्य में बेरोजगारी और निर्धनता तथा आर्थिक असमानता की जो स्थिति देखने को मिलती है, वह भारत के अन्य राज्यों में मुश्किल से ही देखी जा सकती है । इन्हीं समस्याओं के प्रधान कारकों को विश्लेषित कर निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास प्रस्तुत शोध अध्ययन के अन्तर्गत किया गया है ।

सर्वप्रथम मैं अपने सम्माननीय गुरूवर डॉ० एल०एन०पाण्डेय जी के कुशल निर्देशन और मृदु स्वभाव एवं वात्सल्य भाव के प्रति आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने अपने योग्य निर्देशन द्वारा मुझे निरन्तर कार्यरत रखते हुए प्रस्तुत शोध को पूर्ण कराया । ऐसे सुयोग्य गुरू के चरणों में कार्य करने का अवसर पाकर मैं अपने को कृतकृत्य समझता हूँ ।

मैं अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष प्रो०ईश्वरदत्त सिंह और पूर्व अध्यक्ष प्रो०पुरूषोत्तम पाण्डेय के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहता हूँ जिनकी प्रेरणा सदैव मुझे प्राप्त होती रही है । साथ ही अर्थशास्त्र विभाग के सभी अध्यापकों एवं कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ, क्योंकि इनका हर सम्भव सहयोग मुझे प्रस्तुत शोध अध्ययन की अवधि में प्राप्त होता रहा । मैं उन सभी लेखकों, सम्पादकों एवं श्रद्धेय विद्वानों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी पुस्तकों अथवा पत्रिकाओं का योगदान मेरे शोध अध्ययन में मिला है ।

प्रात: स्मरणीया माता एवं परमपूज्य पिता जी एवं दोनों अग्रजों के प्रति आभार व्यक्त करना मात्र औपचारिकता ही होगी । आप सभी के स्नेह, आशीर्वाद और सहयोग का वर्णन करने के लिए शब्दों की कमी जान पड़ रही है । परिवार के अन्य सभी सदस्यों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । अपनी धर्मपत्नी के सहयोग के प्रति आभार व्यक्त करना अन्यथा न होगा ।

डा0योगेन्द्र सिंह, डा0विजय शंकर पाण्डेय के अमूल्य योगदान के प्रति आभारी हूँ । मैं पुस्तकालय के सभी कर्मियों का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने हर सम्भव प्रयास से मुझे दुर्लभ पुस्तकों एवं शोध सम्बन्धी अन्य साहित्यों को उपलब्ध कराने में सहायता की ।

अन्त में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अल्पकाल में टंकण के लिए डा0अवधेश कुमार श्रीवास्तव को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपने व्यस्ततम समय में इसे टंकित किया ।

दीन दयाल सिंह
-दीनदयाल सिंह

15-11-92

विषय-अनुक्रमणिका

अध्याय-1

सामान्य परिचय

सामान्य परिचय

बिहार उत्तरी पूर्वी भारत का एक कृषि प्रधान राज्य एवं खनिज सम्पदा के दृष्टिकोण से भारत का सबसे धनी राज्य है । इसके उत्तर में हिमालय पर्वत तथा नेपाल देश, पूरब में पश्चिम बंगाल, दक्षिण में उड़ीसा तथा पश्चिम में उत्तर प्रदेश एवं दक्षिण-पश्चिम में मध्य प्रदेश स्थित है । राज्य का अक्षांशीय विस्तार 21° 53'10" से 27° 31'15" उत्तरी तथा देशान्तरीय विस्तार 83° 19' 50" और 88° 17' 40" पूर्व है । बिहार का कुल क्षेत्रफल 173,876 वर्ग कि0मी0 है[1] जिसमें ग्रामीण क्षेत्र 171103 वर्ग कि0मी0 क्षेत्रफल में तथा नगरीय क्षेत्र 2774 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में स्थित है । भारत की कुल भूमि का 5·3 प्रतिशत भाग बिहार राज्य के पास है । क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारतीय संघ का आठवाँ बड़ा राज्य है ।

प्राकृतिक और भौगोलिक दृष्टि से बिहार राज्य को दो बड़े भागों में बाँटा जा सकता है- दक्षिण का पठारी भाग एवं मैदानी भाग । शेष मैदानी क्षेत्र राज्य के कुल क्षेत्रफल के लगभग 73 प्रतिशत भाग पर तथा पठारी/पर्वतीय क्षेत्र 27 प्रतिशत भाग पर फैला हुआ है । मैदानी भाग को

1- बिहार थ्रू फीगर्स - बिहार सरकार प्रकाशन, 1982, पृ0-1·

गंगा नदी दो भागों में विभक्त करती है जिससे मैदानी भाग के भी दो खण्ड हो जाते हैं-उत्तरी बिहार एवं दक्षिणी बिहार का मैदान । सम्पूर्ण मैदानी भाग नदियों द्वारा लायी गयी उपजाऊ मिट्टी से बना है । इसलिए कृषि की बहुलता है और जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि में लगा हुआ है । उत्तरी बिहार खेती के दृष्टिकोण से सघन आबाद है । हिमालय से निकलने वाली नदियों में गंगा,घाघरा,कोसी तथा दक्षिण पठार से निकलने वाली नदियों में सोन नदी प्रमुख है । दक्षिणी बिहार के पश्चिमी भाग में करमनाशा नदी उत्तर प्रदेश और बिहार की सीमा बनाती है । सम्पूर्ण मैदानी एवं पठारी भाग क्रमशः कृषि की उपज व खनिज सम्पदा के लिए विख्यात है । बिहार राज्य सभ्यता एवं संस्कृति का एक पुरातन केन्द्र रहा है । प्रकृति द्वारा प्रदत्त प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से धनी होते हुए भी इस राज्य में बेकारी और गरीबी का नैराश्यपूर्ण वातावरण देखा जा सकता है । साक्षरता की दृष्टि से भी यह राज्य भारतीय संघ के अन्य राज्यों की अपेक्षा पिछड़ा हुआ है । इस राज्य की स्थिति देखकर कोई भी व्यक्ति यह कहने पर मजबूर हो जाता है कि एक धनी राज्य निर्धन व गरीब निवासियों का राज्य है । भूमि के असमान वितरण ने भी इस राज्य में आर्थिक असमानता को बढ़ावा दिया है । प्रस्तुत शोध अध्ययन के अन्तर्गत बिहार की भौगोलिक स्थिति का समावेश करना इसलिए समीचीन जान पड़ता है क्योंकि इसके आधार पर कृषि,खनिज वन सम्पदा आदि का विवरण प्रस्तुत कर बेरोजगारी की समस्या को ज्ञात करने में सुविधा होगी । आंकड़ों के संकलन हेतु द्वैतीयक आंकड़ों,विशेषकर, सरकारी आंकड़ों का सहारा लिया गया है ।

भारत की जलवायु प्रधानतः वर्षा प्रधान उष्ण है । बिहार की जलवायु भी लगभग ऐसी ही है । वर्षा इत्यादि का वितरण राज्य के विभिन्न

भागों में असमान है । तापमान तथा वर्षा की विभिन्नताओं के कारण वनस्पतियों तथा कृषि पर अलग-अलग रूपों में प्रभाव पड़ता है । इस प्रकार जलवायु की विविधता से सभी प्रकार की वनस्पतियों का अक्षय भण्डार यहाँ देखने को मिलता है ।

प्राकृतिक संसाधनों एवं मानव शक्ति की दृष्टि से बिहार एक सम्पन्न राज्य है । राज्य की अर्थव्यवस्था प्रधानतया कृषि पर ही आधारित है तथा राज्य की आधी आय कृषि क्षेत्र से प्राप्त होती है । राज्य की कुल जनसंख्या का 82 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि पर ही आश्रित है । अतः एक कृषि प्रधान राज्य में कोई भी प्राकृतिक साधन भूमि के समान महत्वपूर्ण नहीं है ।

बिहार राज्य प्रचुरता में निर्धनता की एक पहेली प्रस्तुत करता है । यद्यपि आधुनिकी प्रौद्योगिकी के विकास एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया के चलते हुए बिहार राज्य में कृषि एवं उद्योग के क्षेत्रों में पिछले कुछ दशकों में प्रगति हुई है किन्तु राज्य की प्रति व्यक्ति आय सम्पूर्ण भारत के प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कम है । राज्य की 62 प्रतिशत भूमि पर कृषि कार्य होता है । उत्तरी बिहार को भारत का बगीचा कहा जाता है क्योंकि यहाँ खनिज पदार्थों की अधिकता है और भूमि भी अत्यधिक उपजाऊ है । बिहार को प्राकृतिक दृष्टिकोण से 3 भागों में विभक्त किया जा सकता है:-

(1) उत्तरी बिहार
(2) दक्षिणी बिहार और
(3) छोटा नागपुर की पहाड़ियाँ या पठारी क्षेत्र

उत्तरी बिहार का कुल क्षेत्रफल 52,800 वर्ग कि0मी0 है जो राज्य की कुल भूमि का 30•9 प्रतिशत है । इसकी जनसंख्या 26•5 मिलियन है । उत्तरी बिहार की भूमि मुख्य रूप से कोसी, गण्डक और बूढ़ी गण्डक नदियों द्वारा सिंचित है । इसमें कुल 16 जिले हैं ।

दक्षिणी बिहार का मैदानी क्षेत्र 40,400 वर्ग कि0मी0 है जो बिहार की कुल भूमि का 23 प्रतिशत है । इसकी जनसंख्या 15•5 मिलियन है । रोहतास, भोजपुर, पटना गया आदि मुख्य जिले इसी के अन्तर्गत हैं ।

छोटा नागपुर जिसे पठारी क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है, इसका आधा क्षेत्र करीब-करीब गंगा नदी के प्रभाव में आ जाता है जिसके कारण यह क्षेत्र अत्यधिक उपजाऊ हो जाता है । गंगा नदी राज्य में पूरब से पश्चिम बहती है । छोटा नागपुर का लगभग आधा भाग खनिज व वनों से युक्त है । छोटा नागपुर का क्षेत्रफल सम्पूर्ण राज्य के क्षेत्रफल का लगभग 45•80 प्रतिशत है ।[1] इसका कुल क्षेत्रफल 79,700 वर्ग कि0मी0 है ।

भारत के औद्योगिक विकास में बिहार राज्य की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है । कोयले की कुल आपूर्ति का लगभग आधा भाग बिहार राज्य से प्राप्त होता है । भारत के कुल खनिज सम्पदा के उत्पादन में बिहार राज्य

1- रोल आफ वाटर डेवलपमेन्ट कारपोरेशन इन दि एग्रीकल्चरल डेवलपमेन्ट थिसिस सब्मिटेड बाई बीना सिन्हा, एल0एन0 मिथिला यूनिवर्सिटी, डिपार्टमेन्ट आफ इकोनामिक्स, 1991, पृ0-4•

का योगदान 40·57 प्रतिशत है । बिहार राज्य में कुल भूमि के 35 प्रतिशत भाग पर वनों का अस्तित्व है ।[1] कुछ खनिजों के मामले में बिहार राज्य की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है । राज्य में निम्नलिखित खनिज पदार्थ पाये जाते हैं- कोयला, आयरन ओर, मैंगनीज ओर, माइका, स्टील, लाइम स्टोन, फायर क्ले, चाइना क्ले, काइनाइट, कापर ओर, एसबेस्टस, डोलोमाइट, फलस्पर, ग्लास एपेटाइट आदि ।[2] इन खनिजों का देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है और इसके निर्यात से देश को विदेशी मुद्रा की प्राप्ति भी होती है ।

भारत के कुल खनिज सम्पदा के उत्पादन में बिहार राज्य का योगदान लगभग 41 प्रतिशत बैठता है तथा कुल खनिज के मूल्य का 31 प्रतिशत भाग का उत्पादन अकेले बिहार राज्य करता है । कापर और काइनाइट का 100 प्रतिशत, अपेटाइट का 90 प्रतिशत, कोयले ,बाक्साइट और चाइना क्ले का 51 प्रतिशत तथा आयरन ओर का 41 प्रतिशत भाग बिहार राज्य से प्राप्त होता है । माइका का 90 प्रतिशत भाग देश को प्राप्त होता है ।

मुंगेर जिले में माइका खान का विस्तार 147 कि0मी0 में है जो 25 कि0मी0 तक चौड़ा है । बिहार में माइका की खानों की संख्या 60 है । ये खाने मुख्य रुप से कोडरमा (हजारीबाग) तथा गया जिले में है । यह निर्यातपरक उद्योग है ।

1-डा0केदारनाथ प्रसाद- दि इकोनामिक्स आफ ए बैकवर्ड रीजन इन दि बैकवर्डनेस आफ इकोनामी-पृ0- 100-101·

2- वही ।

जियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया के अनुसार राज्य में 172000 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में यूरेनियम और कापर का भण्डार है। बिहार में सोना भी पाया जाता है यह कोनार-कोछ जो सिंहभूम जिले में है, पाया जाता है। इसी प्रकार हजारीबाग, सिंहभूम, पलामू और राँची में चाँदी भी पायी जाती है।[1]

बिहार राज्य में वर्तमान समय में 485 से भी अधिक संख्या में कोयले की खाने हैं जिसमें 137 खानों से कुकिंग कोयले की उत्पत्ति होती है[2]। इस प्रकार छोटा नागपुर क्षेत्र खनिज सम्पदा की दृष्टि से भारत का सबसे धनी क्षेत्र है और विश्व में सर्वाधिक खनिज सम्पदा रखने वाला क्षेत्र है। माइका, आयरन ओर, कोयला, कापर, बाक्साइड, लाइम स्टोन, कायनाइट, क्रोमाइट एसवेस्टस आदि के मामले में यह अद्वितीय है।[3]

राज्य की आर्थिक स्थिति पर एक विहंगम दृष्टि समीचीन प्रतीत होती है। अर्द्ध विकसित भारतीय अर्थव्यवस्था में बिहार, उड़ीसा, असम, आंध्र प्रदेश प्रमुख रूप से पिछड़े राज्य हैं। इन राज्यों में प्रति व्यक्ति निम्न आय, प्राकृतिक संसाधनों का अछूता एवं अल्प प्रयोग, कृषि का पिछड़ापन, जनसंख्या दबाव, बड़े पैमाने की बेरोजगारी, साक्षरता दर का निम्न होना, पूंजी निर्माण की अत्यधिक निम्न दर प्रमुख विशेषताएं हैं। बिहार राज्य में इन

1-बिहार थ्रू फीगर्स, 1972, पृ0-147-49

2- केदारनाथ प्रसाद- इकोनामिक्स आफ वैकवर्ड रीजन इन दि बैकवर्ड इकोनामी, पृ0-107.

3- वही।

विशेषताओं को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । औद्योगीकरण की दृष्टि से बिहार राज्य अत्यन्त पिछड़ा हुआ है । अत्यधिक जनसंख्या के दबाव के कारण कृषि में अतिरिक्त श्रम का समावेश बना हुआ है जो कृषि को अनुत्पादक ठहराता है। राज्य में भूमि का वितरण अत्यधिक असमान होने के कारण बेरोजगारी की समस्या और भी जटिल है । इसी संदर्भ में कुछ राज्यों में प्रति व्यक्ति आय का विवरण अधोलिखित तालिका द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

सारिणी संख्या-1:1

भारतीय राज्यों में प्रति व्यक्ति आय
(1984-85)

राज्य	प्रति व्यक्ति आय (रू0)
पंजाब	3835
हरियाणा	3296
महाराष्ट्र	3232
गुजरात	2997
पश्चिम बंगाल	2485
हिमाचल प्रदेश	2316
केरल	2196
जम्मू व कश्मीर	2075
तमिलनाडु	2075
कर्नाटक	2047

(क्रमशः अगले पृष्ठ पर)

आंध्र प्रदेश	1996
राजस्थान	1838
असम	1821
उत्तर प्रदेश	1764
उड़ीसा	1534
बिहार	1385

(स्रोत: नेशनल एकाउण्ट स्टेटिस्टिक्स, 1987)

सारिणी से स्पष्ट है कि प्रति व्यक्ति आय के परिप्रेक्ष्य में बिहार राज्य सबसे पिछड़ा है । भारत के संघ के राज्यों में पंजाब राज्य के प्रति व्यक्ति आय की तुलना में बिहार राज्यकी प्रति व्यक्ति आय लगभग 2•5 गुना कम ठहरती है । गरीबी और निर्धनता तथा बेरोजगारी का जो दृश्य बिहार राज्य में देखा जा सकता है वह भारत के अन्य विकसित प्रान्तों में मुश्किल से ही उपलब्ध होगा ।

कृषि की दृष्टि से बिहार एक पिछड़ा हुआ राज्य है । लगभग 80 प्रतिशत कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित कार्यों में संलग्न है । 1981 की जनगणना के अनुसार बिहार को सबसे बड़ा ग्रामीण राज्य घोषित किया गया । बिहार राज्य में ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वालों की संख्या का 87•5 प्रतिशत है जब कि भारत की कुल ग्रामीण जनसंख्या 76•7 प्रतिशत है । राज्य में कृषि पर निर्भर करने वाले लोगों की संख्या 79•2 प्रतिशत है जबकि भारत का यह

प्रतिशत 63·7 है । राज्य की सम्पूर्ण आय में कृषि का योगदान 44·5 प्रतिशत है जबकि सम्पूर्ण भारत में यह प्रतिशत 35·5 प्रतिशत है । महाराष्ट्र की आय में कृषि का योगदान 26·7 प्रतिशत, गुजरात में 27·8 प्रतिशत और तमिलनाडु में 27·7 प्रतिशत है ।[1]

किसी भी राज्य,क्षेत्र अथवा देश की सम्पूर्ण आय में कृषि क्षेत्र का अत्यधिक योगदान वहां की कृषि की प्रधानता का द्योतकमाना जाता है और उसे औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा माना जाता है । यह बात बिहार राज्य के सन्दर्भ में शत-प्रतिशत सही उतरती देखी जा सकती है । औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार के अभाव में बिहार राज्य की अधिकांश श्रम शक्ति कृषि कार्य में संलग्न हो जाती है और मौसमी रोजगार ही प्राप्त कर पाती है । फलस्वरूप कृषि से इन्हें अत्यल्प रोजगार ही प्राप्त होता है और आय भी अत्यल्प ही प्राप्त हो पाती है जिसके कारण इनकी निर्धनता बनी हुई है और इनके रहन-सहन का स्तर भी अत्यन्त निम्न है । बिहार राज्य देश के सम्पूर्ण खाद्यान्न का 6·7 प्रतिशत का उत्पादन करता है ।

राज्य के विभिन्न जिलों में जनसंख्या का घनत्व 330 से 950 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0मी0 है । पूरे राज्य में जनसंख्या का घनत्व 610 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0मी0 है । इस प्रकार जनसंख्या के दबाव के चलते हुए जोतों के आकार छोटे होते जा रहे हैं ; बिहार राज्य में कुल जोतों का 74 प्रतिशत भाग एक हेक्टेयर से छोटा है । जोतों की यह दयनीय स्थिति आधुनिक कृषि

1- सेन्सस आफ इण्डिया, 1981·

के लिए अनुपयुक्त प्रतीत होती है । राज्य में जोतों के आकार को निम्न-लिखित सारिणी द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है :-

सारिणी संख्या-1:2

बिहार राज्य में जोतों का आकार

जोतों का आकार	जोतों की संख्या		कुल क्षेत्रफल		औसत जोत आकार
	मिलियन	प्रतिशत	मि0हेक्टे0	प्रतिशत	
1 हेक्टे0 से कम	8•3	75•4	3•0	26•7	0•4
1-2 हेक्टेयर	1•2	11•11	1•6	14•9	1•4
2-4 हेक्टेयर	0•9	8•6	2•6	23•4	2•7
4-10 हेक्टेयर	0•5	4•3	2•7	24•5	5•7
10 हेक्टेयर और अधिक	0•1	0•6	1•2	10•5	17•1
योग	11•0	100	11•1	100	1•0

(स्रोत: डाकूमेण्ट आफ वर्ल्ड बैंक, वर्ष 1986,पृ0-6)

बिहार में 1•5 हेक्टेयर वाले 26•7 प्रतिशत जोतों का आकार घटकर 1976-77 में 1•1 हेक्टेयर का रह गया और 1981 में सम्पूर्ण भारत में 12•3 प्रतिशत जोतों का आकार एक हेक्टेयर से भी घट गया । ये तथ्य

इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जनसंख्या वृद्धि तथा पारिवारिक विघटन के कारणजोतों का विभाजन तथा अपखण्डनजारी है जो आधुनिक कृषि के लिए अत्यधिक चिन्ताजनक है ।

भूमि किसी भी राज्य का प्राथमिक संसाधन है । यह मानव के लिए मकान, संचार, रेलवे लाइन, सड़कें, फैक्टरियां, चारागाह तथा वन आदि की सुविधा प्रदान करता है । भूमि का उपयोग स्वरूप किसी राज्य के सम्पूर्ण क्षेत्रफल को निर्धारित करता है । कृषि भूमि पर आधारित प्राथमिक उद्योग है । राज्य में कुल कृषि योग्य भूमि लगभग 17•4 मिलियन हेक्टेयर है जिसमें से 9•4 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर कृषि कार्य होता है और 2•1 मिलियन हेक्टेयर बिना कृषि के रह जाता है । वनों का क्षेत्रफल 2•8 मिलियन हेक्टेयर है जो 16 प्रतिशत है, यह स्वस्थ पारिस्थितिकी सन्तुलन की आवश्यकता से कम है । राज्य में भूमि उपयोग के स्वरूप को निम्नलिखित सारिणी द्वारा प्रस्तुत किया गया है :-

सारिणी संख्या-1:3

बिहार में भूमि उपयोग का स्वरूप

विवरण	भूमि उपयोग हजार हेक्टेयर (1980-81)	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
(1)कुल क्षेत्रफल ग्रामीण अभिलेख अभिलेख के अनुसार	17,350	
(2)जुताई के लिए अनुपलब्ध भूमि		

(सारिणी क्रमशः)

(अ) वन	2826	1624
(ब) बंजर भूमि	1044	604
(स) गैर कृषि कार्यों में उपयोग	1716	953
(3) कृषि अयोग्य भूमि		
(अ) स्थायी चारागाह व अन्य खाली भूमि	447	2·71
(ब) कृषि योग्य खाली भूमि के अतिरिक्त भूमि	144	0·91
(स) विभिन्न वृक्षों व जंगलों के अन्तर्गत भूमि	222	1·28
(द) अन्य खाली भूमि	939	5·20
(य) वर्तमान खाली भूमि	1729	09·34
योग	3481	19·44
(4) बोया गया क्षेत्र		
(अ) शुद्ध बोया गया क्षेत्र	8465	48·84
(ब) एक बार से अधिक बार बोया गया क्षेत्र	2834	16·28
योग	11299	65·12

(स्रोत: बिहार थ्रू फीगर्स, 1981, पृ0-76-77)

सारिणी से स्पष्ट है कि 31•9 प्रतिशत भाग बिना कृषि कार्य किये ही खाली रह जाता है जिसमें बंजर,भूमि ,वन व चारागाह हैं । केवल 48•8 प्रतिशत शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल है । क्षेत्रवार भूमि का विवरण अधोलिखित सारिणी से स्पष्ट है :-

सारिणी संख्या-1:4

बिहार में कुल भूमि

(हे0)

	उत्तरी बिहार	दक्षिणी बिहार	छोटा नागपुर व संथाल परगना	कुल भूमि
भौगोलिक क्षेत्र	51•0	92•5	79•8	223•3
कृषि योग्य क्षेत्र	41•3	30•3	45•2	116•8
बोया गया शुद्ध क्षेत्र	34•4	24•0	26•3	84•7
कुल बोया गया क्षेत्र	49•4	34•0	29•6	113•0
जोतों का घनत्व	1•44	1•40	1•12	1•32

(स्रोत: ड्राफ्ट परसपेक्टिव प्लान,1978-79,बिहार स्टेट प्लानिंग बोर्ड,पटना)

सारिणी से स्पष्ट है कि उत्तरी बिहार में 67•5 प्रतिशत, दक्षिणी बिहार में 56•5 प्रतिशत और छोटा नागपुर व संथाल परगना क्षेत्र में 32•6 प्रतिशत भू-भाग में कृषि कार्य होता है ।

भूमि के उपयोग, जोतों के स्वरूप आदि का विवरण प्रस्तुत करने पश्चात राज्य में वर्षा और जलवायु की स्थिति पर भी एक विहंगम दृष्टि आवश्यक एवं प्रासंगिक है । बिहार राज्य में कुल 50" से 53" तक वर्षा होती है । लगभग 80 से 90 प्रतिशत वर्षा दक्षिण-पश्चिमी मानसून से होती है । बिहार राज्य में वर्षा का विवरण अधोलिखित सारिणी में दिया गया है:-

सारिणी संख्या-1:5

बिहार में वर्षा का विवरण

वर्षा का नाम	अवधि	अधिकतम वर्षा मि0मी0	न्यूनतम वर्षा मि0मी0	औसत वर्षा मि0मी0
1-मुख्य मानसून	15 जून से 7 अक्टूबर	1651.0	736.0	1016.0
2-मानसून के बाद	अक्टूबर के अंत से नवम्बर के तृतीय सप्ताह तक	—	—	97.8
3-रबी की वर्षा	8 अक्टूबर से 31 दिसम्बर तक	—	—	64.9
4-जाड़े की वर्षा	जनवरी से फरवरी	80.3	9.1	40.6
5-मानसून पूर्व वर्षा	मार्च से मई	—	—	635

बिहार में जलवायु तीन प्रकार की पायी जाती है जो इस प्रकार है:-

(1) जाड़े का मौसम- नवम्बर से फरवरी

(2) गर्मी का मौसम-मार्च से जून के मध्य तक

(3) गर्म-नम मौसम- मध्य जून से मध्य अक्टूबर तक

राज्य में मौसम का स्वभाव उत्तर प्रदेश राज्य के मौसम से बिल्कुल मेल खाता देखा जा सकता है और तीन मौसम के कारण विविध प्रकार की फसलों का उत्पादन आसानी से किया जा सकता है और देश को खाद्यान्न तथा अन्य कृषि उत्पादन के क्षेत्र में भारी योगदान राज्य द्वारा किया जा सकता है।

बिहार भारतीय संघ का सर्वाधिक जनसंख्या वाला दूसरा राज्य है। बिहार राज्य की जनसंख्या का विवरण अधोलिखित तालिका द्वारा प्रस्तुत किया गया है :-

सारिणी संख्या-1:6

जनगणना वर्ष	कुल जन० करोड़	पुरुष	महिलाएं	प्रतिशत वृद्धि
1951	3•88	19189303	19200259	6•16
1961	4•6	23301449	23154161	19•79
1971	5•66	28846944	27506425	21•31
1981	6•99	35930560	33984174	24•06
1991				

(स्रोत: सेन्सस आफ इण्डिया, 1981)

सारिणी से स्पष्ट है कि 1951 से 1961 की अवधि में बिहार की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। 1951 से 1961 के बीच जनसंख्या में 72 लाख की वृद्धि हुई है। 1961 से 1971 के मध्य 1•06 करोड़ और 1971 से 1981 के मध्य 1•32 करोड़ की वृद्धि हुई।[1] इस प्रकार 1951 से 1981 के मध्य 30 वर्षों की अवधि में बिहार की जनसंख्या में दो गुनी से भी ज्यादा वृद्धि हुई है। 1951 में बिहार की जनसंख्या 3•88 करोड़ थी जो 1981 में बढ़कर 6•98 करोड़ हो गयी।[2] 1951 से 1981 की अवधि में जनसंख्या में कुल वृद्धि 3•1 करोड़ की हुई। 1971 से 1981 की अवधि में पुरुषों और स्त्रियों की संख्या में क्रमशः 7 करोड़ और 0•64 करोड़ की वृद्धि हुई। इस प्रकार 1961 से 1971 और 1971 से 1981 के मध्य जनसंख्या में प्रतिशत वृद्धि क्रमशः 21 प्रतिशत और 24 प्रतिशत हुई। इसी अवधि में सम्पूर्ण भारत की जनसंख्या में 24•8 प्रतिशत की वृद्धि हुई।[3]

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में यह देखा जा सकता है कि बिहार राज्य की जनसंख्या भारत की जनसंख्या की तुलना में 8 प्रतिशत कम रही है। सारिणी से यह भी स्पष्ट होता है कि पुरुषों की जनसंख्या स्त्रियों की जनसंख्या से अधिक रही है। प्रति एक हजार पुरुष पर स्त्रियों की संख्या 954 है।

1- इकोनामिक टाइम्स, 20 मार्च, 1981, पृ0-3

2- वही

3- बिहार स्टेट -स्टेटिस्टिकल हैण्ड बुक-1982, पृ0-1

जहाँ तक जनसंख्या के घनत्व का प्रश्न है बिहार जनसंख्या की दृष्टि से दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य होते हुए भी तीसरे स्थान पर है । 1971 की जनगणना के अनुसार बिहार राज्य केरल और पश्चिम बंगाल की जनसंख्या के घनत्व के बाद तीसरे स्थान पर आता है । 1971 में बिहार में प्रति वर्ग कि0मी0 जनसंख्या का घनत्व 324 था जब कि केरल और पश्चिम बंगाल का जनसंख्या का घनत्व क्रमशः 594 और 504 प्रति वर्ग कि0 मी0 था । 1981 की जनगणना के अनुसार यह घनत्व 402 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0मी0 हो गया जबकि इसी अवधि में केरल और पश्चिम बंगाल की जनसंख्या का घनत्व 655 और 615 प्रति वर्ग कि0मी0 रहा ।[1]

साक्षरता दर राज्य के आर्थिक और सामाजिक विकास का दूसरा महत्वपूर्ण कारक है । साक्षरता दर को निम्नलिखित सारिणी द्वारा प्रस्तुत किया गया है:-

सारिणी संख्या-1:7

	जनसंख्या	पुरुष	स्त्री
ग्रामीण	17•2	27•6	6•4
नगरीय	44•9	55•4	31•9

(स्रोत: बिहार थ्रू फीगर्स, 1975, पृ0-168-69)

1-बिहार थ्रू फीगर्स, 1981, पृ0-2-4 एवं सेन्सस आफ इण्डिया, 1981 .

सारिणी से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित है कि बिहार राज्य में साक्षरता दर में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में भारी अन्तर है । इससे यह भी स्पष्ट होता है कि स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत पुरूषों की अपेक्षा बहुत ही निम्न है । ग्रामीण क्षेत्र में साक्षरता का प्रतिशत पुरूषों में स्त्रियों की अपेक्षा 21•4 प्रतिशत अधिक है । नगरीय क्षेत्र में यह अन्तर 23•5 प्रतिशत है । ग्रामीण और नगरीय साक्षरता में अन्तर 27•7 प्रतिशत का है । नगरीय क्षेत्र की साक्षरता ग्रामीण क्षेत्र की साक्षरता की अपेक्षा 27•7 प्रतिशत अधिक है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि नगरीय क्षेत्र की साक्षरता ग्रामीण क्षेत्र की साक्षरता से 2•5 गुना अधिक है ।

1971 की जनगणना के अनुसार बिहार में साक्षरता का प्रतिशत 19•9 रहा जबकि सम्पूर्ण भारत में साक्षरता का प्रतिशत 29•4 रहा । इसी प्रकार 1981 की जनगणना के अनुसार बिहार में साक्षरता का प्रतिशत बढ़कर 26 हो गया फिर भी यह भारत की साक्षरता प्रतिशत 36•2 से कम रहा । 1981 की जनगणना के अनुसार बिहार राज्य की साक्षरता का प्रतिशत निम्नलिखित सारिणी द्वारा प्रस्तुत किया गया है

सारिणी संख्या-1:8

(1981)

साक्षरों की संख्या (लाख में)			साक्षरता (सैकड़ा)		
कुल	पुरूष	महिला	कुल	पुरूष	महिला
183	137	46	262	381	136

(बिहार इन फीगर्स, 1981, पृ0-56)

इस प्रकार 1981 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता दर बिहार की साक्षरता दर की तुलना में 10·2 प्रतिशत अधिक रही । इसी प्रकार 1971 से 1981 की अवधि में साक्षरता की तुलना भारतीय संघ और बिहार राज्य के मध्य की जाय तो यह स्पष्ट होता है कि अवधि में भी बिहार की साक्षरता दर भारत की साक्षरता दर से 6 प्रतिशत कम रही ।

1981 की जनगणना यह प्रदर्शित करती है कि हमारे शिक्षित वर्ग का अधिकांश भाग गैर कृषि कार्यों और नगरीय क्षेत्रों में रोजगार में लगे रहे। सारिणी द्वारा पेशेवार विवरण प्रस्तुत किया गया है :-

सारिणी संख्या-1:9

जनसंख्या का पेशेवार वितरण

(1981)

व्यवसाय	पुरुष	महिला	योग
1-कृषि कार्यों में संलग्न	80,93,819	778,450	88,72263
2-कृषि-श्रमिक	1,10,965	84,491	1,95,465
3-कुटीर उद्योग	15,834	7,514	23,348
4-निर्माण,सेवा व अन्य	28,818	151246	108064
5-कार्य न करने वाले	4,22,706	6,36,802	10,59,508

(स्रोत: बिहार थ्रू फीगर्स,1982,पृ0-14-15)

सारिणी से स्पष्ट है कि राज्य में लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है । जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि कार्यों में लगा हुआ है । कुल जनसंख्या का 3 चौथाई भाग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि कार्य में लगा हुआ है । मात्र एक चौथाई भाग उद्योग अथवा अन्य व्यवसायों में लगा हुआ है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राज्य की अर्थव्यवस्था में सुधार कृषि क्षेत्र के विकास द्वारा ही सम्भव है । यद्यपि बिहार खनन व प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण एक धनी राज्य है किन्तु औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े होने के कारण रोजगार के अवसरों की न्यूनता आज भी बनी हुई है । सिंचाई सुविधाओं का विस्तार कृषि के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं । आधुनिक तकनीकों के प्रयोग द्वारा कृषि में तकनीकी परिवर्तन उपस्थित कर कृषि का विकास किया जा सकता है । स्वतंत्रता के चार दशक के उपरान्त भी राज्य में करोड़ों रू0 के मूल्य की फसलों का नुकसान सूखा और बाढ़ से होता है । आज भी राज्य में कृषि का एक बड़ा भाग मानसून पर आश्रित है ।

बिहार में विभिन्न कर्मकरों की संख्या का आर्थिक वर्गीकरण रोजगार के सन्दर्भ में प्रस्तुत करना समीचीन जान पड़ता है । विभिन्न कर्मकरों की संख्या का आर्थिक वर्गीकरण सारिणी संख्या-1:10 द्वारा प्रस्तुत किया गया है:-

(सारिणी अगले पृष्ठ पर)

सारिणी संख्या-1:10

बिहार में विभिन्न कर्मकरों की संख्या का

आर्थिक वर्गीकरण(1981)

(हजार में)

जिले का नाम	कुल कर्मकर	कृषक	कृषि श्रमिक	अन्य
(1)पटना	834	238	259	337
(2)नालन्दा	494	197	207	90
(3)गया	966	416	375	175
(4) औरंगाबाद	343	159	123	61
(5)नवादा	341	168	123	50
(6)भोजपुर	607	254	226	127
(7)रोहतास	659	290	245	124
(8)सारन	486	261	135	124
(9)सीवान	410	254	92	64
(10)गोपालगंज	353	224	92	37
(11)पूर्वी चम्पारन	734	314	337	83
(12)प०चम्पारन	648	265	273	26
(13)मुजफ्फरपुर	664	256	273	26
(14)वैशाली	420	207	144	60
(15)सीतामढ़ी	561	221	264	66
(16)दरभंगा	550	205	216	100

(17) समस्तीपुर	585	236	248	101
(18) मधुबनी	656	277	303	76
(19) मुंगेर	990	407	398	185
(20) बेगूसराय	411	135	195	88
(21) भागलपुर	777	300	322	155
(22) संथालपरगना	1228	732	256	240
(23) सहरसा	1017	415	492	110
(24) पूर्णिया	1232	447	633	152
(25) कटिहार	469	160	232	77
(26) हजारीबाग	627	313	108	206
(27) गिरिडीह	478	270	70	138
(28) धनबाद	596	109	45	442
(29) राँची	1060	652	151	257
(30) पलामू	620	300	228	92
(31) सिंहभूम	936	384	202	350
सम्पूर्ण बिहार	20753	9042	7466	4345

(स्रोत: बिहार थ्रू फीगर्स, 1981 एवं बिहार राज्य में कृषिगत तकनीकी परिवर्तन का कृषि उत्पादकता पर प्रभाव-वीरेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा प्रस्तुत अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, 1986, काशी विद्यापीठ, वाराणसी)

पूर्व तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि बिहार राज्य में एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की समस्त विशेषताएं विद्यमान हैं। प्रति व्यक्ति निम्न आय, कृषि का पिछड़ापन, अछूते एवं अल्प प्रयुक्त प्राकृतिक संसाधन, प्रौद्योगिकी का निम्न स्तर, व्यापक स्तर पर बेरोजगारी, कृषि में अतिरिक्त श्रम का समावेश आदि के संदर्भ में बिहार की अर्थव्यवस्था की दयनीय स्थिति देखी जा सकती है। विकास के लिए योजनाबद्ध प्रयास के बावजूद भी अभी भी बिहार में व्यापक स्तर पर बेरोजगारी व निर्धनता देखी जा सकती है। सत्यता तो यह है कि बिहार प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से धनी होते हुए भी एक निर्धन राज्य है। राज्य की बेरोजगारी से सम्बन्धित विवरण अगले अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय-2

बेरोजगारी-अर्थ तथा प्रकार

बेरोजगारी-अर्थ तथा प्रकार

सामान्यतया देश की सारी जनसंख्या रोजगार में लगी नहीं होती, अपितु उसका कमोवेश भाग बेरोजगार होता है । बेरोजगारी की यह मात्रा अल्पविकसित देशों में आम तौर से बहुत अधिक होती है, विशेष रूप से, ऐसे देशों में जहाँ जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है । भारत के साथ यह बात विशेष रूप से लागू होती है । ऐसी ही स्थिति बिहार राज्य में भी बेरोजगारी की देखी जा सकती है, बल्कि इससे भी बदतर । बेरोजगारी की समस्या सम्पूर्ण देश में फैली हुई है और समय के साथ यह बढ़ती भी रही है । कोई भी क्षेत्र या वर्ग इससे मुक्त नहीं है । बेरोजगारी गांवों में भी नजर आती है और शहरों में भी । इसी प्रकार यह शिक्षित वर्गों के बीच भी देखने को मिलती है और अशिक्षित वर्गों के भी बीच । काफी बड़ी संख्या में देश के श्रमिक बेरोजगार हैं अथवा अल्प बेरोजगार हैं । कुछ श्रमिक तो ऐसे हैं जो वर्ष के कुछ महीनों में तो कार्य में लगे होते हैं और शेष महीनों में बेकार रहते हैं । ऐसी स्थिति कृषि क्षेत्र में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है ।

बेरोजगारी के अनेक आर्थिक एवं आर्थिकेतर परिणाम होते हैं जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए घातक साबित होते हैं । व्यापक बेकारी की दशा में राष्ट्रीय उत्पादन में कमी आ जाती है जिसका पूंजी-निर्माण, व्यापार-व्यवसाय और प्रगति आदि पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । गरीबी इसका प्रत्यक्ष परिणाम है । शिक्षित बेरोजगारी के सम्बन्ध में य

अतिरिक्त बर्बादी उन संसाधनों की भी होती है जो उनके कौशल और प्रशिक्षण में लगे होते हैं । बेरोजगारी के अधिकतर परिणाम कम हानिकारक व गंभीर नहीं हैं । सामाजिक सुरक्षा के अभाव में बेरोजगार व्यक्ति प्राय: चोरी, डकैती, बेईमानी, शराबखोरी आदि बुराइयों के शिकार हो जाते हैं । उनके जीवन का कोई अर्थ एवं महत्व नहीं रह जाता। अत: लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने तथा देश की बहुमुखी प्रगति और समृद्धि के लिए बेरोजगारी की समस्या का हल ढूढ़ना नि:संदेह एक आवश्यक शर्त है ।

भारत एक विकासशील किन्तु अल्पविकसित देश है । इस कारण यहाँ बेरोजगारी का स्वरूप औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों की अपेक्षा कुछ भिन्न है । जे०एम०कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "रोजगार, मुद्रा और ब्याज का सामान्य सिद्धान्त" में यह विश्लेषण प्रस्तुत किया है कि बेरोजगारी का मूल कारण समर्थ मांग की कमी है । इसका अर्थ यह है कि ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में मशीनें बेकार हो जाती हैं और श्रम की मांग उद्योगों के उत्पादन की मांग कम हो जाने से गिर जाती है । अत: बेरोजगारी दूर करने के लिए समर्थ मांग के स्तर को ऊंचा रखना होगा ।

साधारणतया बेरोजगारी का अर्थ बिना काम के होने से लगाया जाता है, किन्तु इस दृष्टि से आलसी व्यक्ति जो काम करना नहीं चाहता, उसे भी बेकार कहना पड़ेगा लेकिन वस्तुत: बेकार तो वह है जिसे सामर्थ्य और इच्छा के बावजूद भी प्रचलित मजदूरी की दर पर काम नहीं मिल पाता है और व्यक्ति काम की तलाश में इधर-उधर घूमता रहता है । वास्तव में, यह हमारी वर्तमान आर्थिक प्रगति का नकारात्मक पहलू है क्योंकि व्यक्ति अपनी योग्यता, इच्छा एवं काम ढूढ़ने के लिए प्रयत्न के बावजूद परिस्थितिवश

कार्य से अलग रहने के लिए विवश कर दिया जाता है।
वर्तमान पूंजीवादी संगठन है। वर्तमान पूंजीवादी संगठन में बीमार वृद्ध, जख्मी, पागल तथा अपाहिज व्यक्ति होते हैं जो काम करने योग्य नहीं होते अतः उन्हें बेरोजगार नहीं कहा जा सकता।

अर्थशास्त्र की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि बेरोजगारी श्रम बाजार की वह स्थिति है जिसमें श्रम-शक्ति की पूर्ति कार्य करने के लिए उपलब्ध सुविधाओं तथा अवसरों की अपेक्षा अधिक होती है। प्रो० पीगू के अनुसार, एक व्यक्ति केवल उसी समय बेकार होता है जब उसमें काम करने की इच्छा होती है और वह काम पर लगा हुआ नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, पीगू के अनुसार, बेकार श्रमिक वह है जिसमें कार्य करने की इच्छा तो है किन्तु उसे काम नहीं मिलता है। काम करने की इच्छा का आर्थिक दृष्टि से तात्पर्य काम करने के घण्टे, काम करने के वातावरण एवं मजदूरी की दर एवं मजदूर के स्वास्थ्य आदि से है। यदि किसी व्यक्ति को किसी व्यवसाय में केवल 6 घण्टे ही काम करना पड़ता है जबकि उसकी इच्छा 8 घण्टे काम करने की है तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह दो घण्टे प्रतिदिन बेकार रहता है। इसके अतिरिक्त काम करने की इच्छा इस बात से भी जानी जा सकती है कि एक व्यक्ति मजदूरी की चालू दर पर काम करने को तैयार है या नहीं। बेरोजगारी मापने के प्रायः दो आधार हैं :-

(1) काम करने की इच्छा
(2) बिना काम का होना।

बेरोजगारी वह स्थिति है जिसमें कोई व्यक्ति बिना काम के रहने के लिए विवश होता है। बेरोजगार केवल वही व्यक्ति है जो काम करने

की योग्यता अथवा क्षमता रखता हो और प्रचलित मजदूरी दर पर कार्य करने को इच्छुक हो, फिर भी उसे काम न मिल पाये । ऐसे व्यक्तियों को बेरोजगार नहीं कहा जा सकता जो या तो कार्य करने योग्य नहीं हैं अथवा उनमें कार्य करने की इच्छा नहीं है ।

देश के आर्थिक विकास का रोजगार की स्थिति तथा मानव-शक्ति के उपयोग से घनिष्ट सम्बन्ध होता है । भारत जैसे अनेक विकासशील देशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग बेरोजगार होता है फलस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन प्रभावित होता है और आर्थिक प्रगति में बाधा उपस्थित होती है । बेरोजगारी की समस्या भारत के लिए नयी नहीं है । आर्थिक उच्चावचन के कारण भारत में 1929 में घोर मन्दी के फलस्वरूप बेरोजगारी उत्पन्न हुई जिससे देश में भारी विपत्ति आयी।

बेरोजगारी की परिभाषा के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचारों को प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार है:-

वार्थिंग गार्डेन, एस एण्ड डाड पाल, ए के अनुसार- कार्य प्राप्त करने में असफल व्यक्ति को रोजगार से अलग माना जा सकता है तथा उसके कार्य न प्राप्त कर सकने तथा कार्य प्राप्त करने के मध्य की समयावधि में उसे बेरोजगार कहा जायेगा ।[1]

1-वार्थिंग गार्डेन, एस0 एण्ड डा पाल, ए0-लेबर प्राब्लम्स, 1977, पृ0-173-74.

उपर्युक्त विचार बेरोजगारी की समस्या का उचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में असमर्थ है । कीन्स से पहले के आर्थिक साहित्य में बेरोजगारी की समस्या की ओर विद्वानों का कुछ ध्यान गया किन्तु इस समस्या पर कीन्स के समय से अधिक ध्यान दिया जाने लगा । इनकी प्रसिद्ध पुस्तक "रोजगार,मुद्रा और ब्याज का सामान्य सिद्धान्त" जो 1936 में प्रकाशित हुई थी, के प्रकाशन के बाद से बेरोजगारी को आर्थिक मन्दी का परिणाम समझा जाने लगा । कीन्स ने प्रभावपूर्ण माँग की कमी को बेरोजगारी का मुख्य कारण माना ।

पीगू के अनुसार बेरोजगारी मजदूरी प्राप्त करने वाले वर्ग में होती है ।[1] उन्होंने एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया कि यदि मजदूरी पर कार्य करने वाला कोई व्यक्ति अपने सामान्य कार्यों को करने के पश्चात फुरसत के समय में कुछ अन्य कार्य करता है तो उसे बेरोजगार व्यक्तियों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है क्योंकि इन व्यक्तियों पर बेरोजगारी का प्रभाव किसी अन्य ऐसे व्यक्ति से भिन्न होगा जो किसी अन्य वैकल्पिक कार्य को नहीं करता । इस भिन्नता का व्यावहारिक महत्व है । मजदूरी पर किये जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में ही बेरोजगारी हो सकती है । इसलिए बेरोजगारी प्राप्त कर सकने योग्य व्यक्ति को ही बेरोजगार कहा जा सकता है ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार ऐसे सभी व्यक्तियों को बेरोजगार माना जायेगा जो कार्य की खोज में लगे हैं, ऐसे व्यक्ति कार्य न

1-पीगू,ए०सी०-अनइम्प्लायमेण्ट,1913,पृ०-14.

मिलने के कारण रोजगार में संलग्न नहीं होते, परन्तु यदि उन्हें कार्य उपलब्ध हो तो उसे करने के योग्य होते हैं।[1]

अर्द्ध बेरोजगारी के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के द्वारा जो परिभाषा दी गयी है उसके अनुसार ऐसे व्यक्तियों को अर्द्ध बेरोजगार कहा जायेगा जो पूर्ण समय कार्य नहीं कर रहे हैं। वे जितना कार्य वास्तव में कर रहे हैं उससे अधिक कार्य करने की उनकी इच्छा एवं योग्यता होती है अथवा यदि व्यक्ति की आय व उत्पादकता अधिक सुधरे हुए उत्पादन शर्तों के कारण या दूसरे किसी उद्योग में स्थानान्तरित हो जाने पर विशेष योग्यता के कारण पहले की अपेक्षा बढ़ जाय तो पहले वाली स्थिति में उसे अर्द्ध बेकार कहा जायेगा।

इस सम्बन्ध में दृश्य एवं अदृश्य अर्द्ध बेरोजगारी को भी स्पष्ट किया गया है। दृश्य बेरोजगारीके अन्तर्गत व्यक्ति सामान्य से कम समय तक कार्य करता है। अदृश्य बेकारी के अन्तर्गत कार्य का समय तो पूरा रहता है परन्तु व्यक्ति की उत्पादकता तथा आय सामान्य से कम होती है अर्थात कार्य के अन्तर्गत व्यक्ति के कौशल तथा योग्यता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता, इसे छिपी हुई बेरोजगारी भी कहते हैं।

केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन के अनुसार वे सभी बेरोजगार हैं जिनके पास कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसके बदले में उन्हें भुगतान होता है। ऐसे व्यक्ति कार्य खोजते रहते हैं। इसके अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति भी हो सकते हैं

1.-इम्प्लायमेंट एण्ड अनइम्प्लायमेंट, लेबर फोर्स स्टैटिस्टिक्स स्टडीज, स्टडी आफ मेथड, आई०एल०ओ०, जेनेवा, 1948.

जिनका रोजगार किसी कारण से अवरूद्ध हो गया है, चाहे यह स्थायी रहा हो या अस्थायी तथा ऐसे व्यक्ति भी हो सकते हैं जो पहली बार कार्य की तलाश में हों। परन्तु इसके अन्तर्गत ऐसे व्यक्तियों को नहीं रखा जा सकता है जिनकी आयु या तो 14 वर्ष से कम हो अथवा 60 वर्ष से अधिक।[1]

डा0राजकृष्ण ने भारतीय सन्दर्भ में बेरोजगारी का अर्थ व इसके मापन के लिए चार सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।[2] इनके आधार पर किसी व्यक्ति के बेरोजगार होने की पहचान की जा सकती है। ये सिद्धान्त हैं:-

(1) समय का सिद्धान्त
(2) आय का सिद्धान्त
(3) इच्छा का सिद्धान्त
(4) उत्पादकता का सिद्धान्त

प्रत्येक राष्ट्र के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वर्तमान समय में उत्पादक कार्यों के लिए कितने व्यक्तियों की आवश्यकता है, इसकी गणना रखे। ऐसे व्यक्ति जो वर्तमान समय में कार्य की खोज में लगे हैं अथवा जो अधिक कार्य करने योग्य होने के कारण अधिक कार्य करना चाहते हैं उन्हें बेरोजगार या अर्द्धबेकार कहा जा सकता है। ऐसे व्यक्तियों का श्रम-शक्ति में रहना आवश्यक

1-स्टैण्डर्ड फार सर्वे आन लेबर फोर्स-इम्प्लायमेण्ट एण्ड अनइम्प्लायमेण्ट, सेन्ट्रल स्टैटिस्टिकल आर्गनाइजेशन, कैबिनेट सेक्रेटरियट, 1961.

2-डा0राजकृष्ण- रूरल अनइम्प्लायमेण्ट पोलिसीज फार फिफ्थ प्लान, इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, मार्च 3, 1973.

है । श्रम-शक्ति के अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति आते हैं जो पारिश्रमिक ,वेतन, मजदूरी आदि के बदले में अपनी सेवाओं को देने के लिए उपलब्ध होते हैं । श्रम-शक्ति की वृद्धि दर, जनसंख्या में कार्यशील आयु तथा कार्य में भाग लेने वालों की दर पर निर्भर होती है ।

विकासशील देशों में श्रम-शक्ति को सही अर्थ में प्रस्तुत करने के कारण इसके आधार पर बेरोजगारी को प्रस्तुत करना कठिन हो जाता है । कोई व्यक्ति तभी बेरोजगार माना जाता है जबकि वह श्रम-शक्ति का सदस्य हो परन्तु ऐसी स्थिति में जबकि यही निश्चय नहीं है कि श्रम-शक्ति में कौन से व्यक्ति सम्मिलित होते हैं, यह भी अस्पष्ट होगा कि कौन से व्यक्ति बेरोजगार हैं तथा किसे बेरोजगार नहीं माना जा सकता है ।[1]

वर्तमान समय में बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ एक सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न बेरोजगारी का है । बेरोजगारी की समस्या भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे गंभीर समस्या है । मानवीय साधनों का इतना बड़ा अपव्यय शायद ही किसी देश में दिखाई देता है । हमारे देश में श्रम शक्ति का तीव्र गति से विस्तार हो रहा है । बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए हम उचित मात्रा में

1- माउली, जे0 एण्ड कोस्टा- इम्प्लायमेण्ट पालिसीज इन डेवलपिंग कन्ट्रीज एडिटेड बाई लर्माटिन एल्स पी0, पब्लिश्ड आन बिहाफ आफ द इण्टरनेशनल लेबर आफिसेज, जेनेवा, लन्दन जार्ज एलेन एण्ड आल्विन लिमिटेड, पृ0-31।

रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं करा पाते है । कृषि क्षेत्र में भी बेरोजगारी की समस्या अति चिन्तनीय प्रकरण है । एक व्यक्ति जो काम करने योग्य है और काम करना चाहता है, उसे देश में प्रचलित मजदूरी की दर पर काम न मिलने की अवस्था में उसे बेरोजगार कहेंगे ।[1] ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी के संदर्भ में सरकार को विशेष ध्यान देना चाहिए ।[2]

बोल-चाल की भाषा में बेरोजगारी का अर्थ है, बिना किसी काम के, बेकार में, बिना कुछ किये हुए समय व्यतीत करने से है ।[3] अर्थशास्त्र पारिभाषिक शब्दावली में, बेरोजगारी श्रम की बरबादी के रूप में साधारणतया विवेचित किया गया है ।[4] पीगू के अनुसार वह व्यक्ति बेरोजगार है जो कि रोजगार प्राप्त नहीं है और रोजगार प्राप्त करना चाहता है ।[5]

1- लांग, ओ0 - प्राब्लम्स आफ पोलिटिकल इकोनामी आफ सोशलिज्म, पृष्ठ संख्या-1.
2- बोस, वी.के0- एप्रोच टू इम्प्लायमेण्ट प्राब्लम्स इन रूरल एरियाज आफ इण्डिया, पृ0-82.
3- रोनाल्ड, जी0 रीडकर एण्ड होराल्ड लुबेल - इम्प्लायमेण्ट एण्ड अनइम्प्लायमेण्ट प्राब्लम्स आफ द नीयर ईस्ट एण्ड साउथ एशिया, 1977, पृ0-274.
4- गुन्नार मिर्डल-एशियन ड्रामा, पृ0-160
5- सक्सेना, आर0सी0- लेबर प्राब्लम्स एण्ड सोशल वेलफेयर, 1974, पृ0-151.

जे0ई0मीड के अनुसार- व्यवसायों में श्रम के माँग में कमी होने से व्यक्ति बेरोजगार हैं, इसलिए नहीं कि वे किसी अन्य कार्य में नहीं जा सकते, बल्कि किसी भी व्यवसाय में श्रम की माँग नहीं होती ।[1]

कमेटी आफ एक्सपर्ट ऑन इम्प्लायमेण्ट इस्टीमेट, जिसके अध्यक्ष श्री एम0एल0दन्तवाला थे, ने बेरोजगारी को इस प्रकार परिभाषित किया है- "एक व्यक्ति जो पूरे सप्ताह रोजगार में रहता है और उसे भविष्य में लाभप्रद काम मिलने की आशा नहीं रहती, बल्कि वह काम की खोज में रहता है या इसके योग्य होता है, उपर्युक्त रूप में वास्तव में बेरोजगार समझा जायेगा ।"[2]

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार, बेरोजगारी में वे काम चाहने वाले व्यक्ति शामिल किये जा सकते हैं जो वास्तव में रोजगार प्राप्त नहीं हैं बल्कि यदि उन्हें काम दिया जाय तो वे काम के योग्य होते हैं ।[3]

डा0ई0एफ0 सुमैचर ने बेरोजगारी को निर्धनता की समस्या के एक पहलू और भाग के रूप में परिभाषित किया है जो प्राप्य श्रम के उपयोग न

1-मीड, जे0ई0-ऐन इण्ट्रोडक्शन टू इकोनामिक एनलिसिस एण्ड पालिसी, आक्सफोर्ड प्रेस लन्दन, 1937, पृ0-61।

2-रिपोर्ट आफ दि कमेटी आफ एक्सपर्ट आन इम्प्लायमेंट इस्टीमेट्स, प्लानिंग कमीशन, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, न्यू देलही, 1970, पृ0-17।

3-सीतापति, पी0- अनइम्प्लायमेण्ट एण्ड इम्प्लायमेण्ट एण्ड फुल इम्प्लायमेण्ट, कौमर्स पम्पलेट नं0-51, 1972, पृ0-7।

करने से उत्पन्न होती है । इसमें उपभोग किये जा रहे या उपभोग हुए अप्रतिरक्षणीय निम्न स्तर का उत्पादन सम्मिलित है ।[1]

प्रधान हरिशंकर प्रसाद का मत है कि बेरोजगारी शब्द वर्तमान मजदूरी दर पर कार्यविहीन दशा का द्योतक है । जब अर्थव्यवस्था अक्षम होती है, यह अनैच्छिक बेरोजगारी कहलाती है । अर्थशास्त्रीय विश्लेषण के अन्तर्गत बेरोजगारी शब्द अनैच्छिक बेरोजगारी के अर्थ में आता है ।[2]

इस प्रकार बेरोजगारी को एक ऐसी कार्य दशा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जबकि एक राष्ट्र में कार्य करने वाले योग्य व्यक्तियों की बड़ी संख्या वर्तमान मजदूरी की दर पर कार्य करना चाहती है किन्तु उसे काम नहीं मिलता है । दूसरे शब्दों में, वह व्यक्ति बेरोजगार है यदि उसे पूरे समय तक काम नहीं मिलता, जबकि वह सक्रिय रूप से कार्य करना चाहता है या प्रचलित मजदूरी पर कार्य के योग्य है ।जो व्यक्ति शारीरिक या मानसिक रूप से कार्य करने योग्य नहीं है या काम नहीं करना चाहते हैं, उन्हें बेरोजगारी के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है।

1- सुमेश्वर, डी० एम० - अन-इम्प्लायमेण्ट फार वर्कर्स अन इम्प्लायमेण्ट इन इण्डिया, एलाइड पब्लिकेशन ,बाम्बे, पृ०-43.

2- प्रधान, हरिशंकर प्रसाद - अन-इम्प्लायमेण्ट इन इण्डिया,इण्डियन इकोनामिक जर्नल, बाम्बे, पृ०-107.

बेरोजगारी को परिभाषित करने के पश्चात अब यह समीचीन जान पड़ता है कि इसके विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या प्रस्तुत की जाय। बेरोजगारी के विभिन्न प्रकारों को अधोलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखकर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है :-

(1) संरचनात्मक बेरोजगारी

भारत में बेरोजगारी का विशेष पहलू यह है कि इसकी प्रकृति संरचनात्मक किस्म की है। यह देश के पिछड़े आर्थिक ढाँचे के साथ सम्बन्धित है और इस कारण यह दीर्घकालिक है। इसका अर्थ यह है कि देश में श्रमिकों की संख्या की तुलना में रोजगार की मात्रा न केवल कम है, वरन् यह कमी देश की अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के साथ गंभीर रूप से जुड़ी हुई है। चूंकि देश में पूंजी निर्माण की दर नीची है इसलिए रोजगार की मात्रा भी कम है। रोजगार के अवसर इतने पर्याप्त नहीं हैं कि सभी को उनकी क्षमता और योग्यता के अनुसार काम मिल जाय।

इस प्रकार जब अल्पविकसित देश के सन्दर्भ में काम-काज या नौकरियाँ उतनी ही रहती हैं अथवा उनमें नाम-मात्र की वृद्धि होती है, तब रोजगार की मात्रा लगभग स्थिर रहती है और वह भी निम्न स्तर पर क्योंकि हर व्यक्ति को पूरा काम नहीं मिल पाता। दूसरी ओर श्रमिकों की संख्या उपलब्ध रोजगार के अवसरों से न केवल अधिक ही होती है बल्कि वृद्धिमान जनसंख्या के कारण तेजी से बढ़ती भी है। स्पष्ट है कि यह बेरोजगारी दीर्घकालिक या स्थायी है। यह बेरोजगारी इस किस्म की नहीं

है जो अल्पकालिक हो और कुछ समय बीतने पर अपने आप हल हो जाये । इस दृष्टि से भारत में बेरोजगारी का हल तेजी से आर्थिक विकास द्वारा ही सम्भव है । यद्यपि मूलतः देश और बिहार राज्य में बेरोजगारी का स्वरूप इसी प्रकार का है, तथापि इसके अनेक रूप या कोटियाँ देखने को मिलते हैं जैसे प्रच्छन्न बेरोजगारी, अल्प-रोजगार, खुली बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी आदि ।

(2) प्रच्छन्न बेरोजगारी या छिपी हुई बेरोजगारी

देश में बेरोजगारी का एक रूप ऐसा है जिसके अन्तर्गत श्रमिकों का बड़ा भाग आता है । इसे प्रच्छन्न बेरोजगारी कहा जाता है । बेरोजगारी का यह स्वरूप अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में देखा जा सकता है । ऊपरी तौर पर वे काम में लगे होते हैं लेकिन वास्तव में बेरोजगार होते हैं । इनकी यह बेरोजगारी छिपी होती है । दूसरे शब्दों में, काम में लगे होने के बावजूद ऐसे श्रमिक उत्पादन में कोई योगदान नहीं दे रहे हैं । कृषि में अतिरिक्त श्रम का समावेश इसका सबसे अकाट्य और ज्वलन्त उदाहरण है ।

प्रो0 आर0 नर्क्से की विचारधारा के अनुसार अल्पविकसित देशों में कृषि-क्षेत्र में लगे हुए बहुत से श्रमिक ऐसे होते हैं जिन्हें यदि खेती से हटा लिया जाए तो कृषि उत्पादन में कोई कमी नहीं होगी अर्थात उत्पादन में इनका योगदान नहीं के बराबर है । आर्थिक भाषा में इसे इस प्रकार कहा जायेगा कि इन श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता शून्य है । ऐसे श्रमिक

आर्थिक दृष्टि से बेकार ठहरेंगे, क्योंकि ये उत्पादक कार्य में नहीं लगे हुए हैं। इस बेरोजगारी के सम्बन्ध में यह कहना बहुत कठिन है कि कितने लोग इस रूप में बेरोजगार हैं लेकिन इस बात से इन्कार भी नहीं किया जा सकता कि ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है और यह भी कि यदि ऐसे लोगों को कृषि से निकाल लिया जाए तो कृषि उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(3) खुली बेरोजगारी

इससे अभिप्राय बेरोजगारी की ऐसी स्थिति से है जिसमें श्रमिक बिल्कुल बिना काम-काज के होता है, उसे थोड़ा-बहुत भी काम नहीं मिलता। दूसरे शब्दों में, काम न मिलने से श्रमिक पूरी तरह बेरोजगार रहते हैं। इस प्रकार की बेरोजगारी अधिकतर शहरी क्षेत्रों में देखने को मिलती है। बहुतायत संख्या में लोग ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों में रोजगार की तलाश में आते हैं लेकिन काम न मिल पाने के कारण बेरोजगार पड़े रहते हैं। जब ऐसे लोगों को काम नहीं मिलता तब उन्हें खुली बेरोजगारी की कोटि में रखना होगा। इसमें शिक्षित बेरोजगार श्रमिक भी शामिल हैं लेकिन अधिकतर साधारण श्रमिक, जो कारखानों आदि में मजदूरी करना चाहते हैं, इस कोटि के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

(4) अल्प-रोजगार

देश में पायी जाने वाली एक अन्य प्रकार की बेरोजगारी को अल्प-रोजगार का नाम दिया जाता है। इसके अन्तर्गत ऐसे श्रमिक आते हैं

जिनको थोड़ा-बहुत काम मिलता है और जिनके द्वारा वे उत्पादन में थोड़ा बहुत योगदान तो करते हैं लेकिन जिनको अपनी क्षमतानुसार काम नहीं मिलता या पूरा काम नहीं मिलता । उदाहरण के तौर पर एक इंजीनियर द्वारा कार्यालय के एक सामान्य लिपिक का कार्य किया जाना । ऐसे श्रमिक उत्पादन में तो योगदान करते हैं लेकिन उतना नहीं जितना वे कर सकते हैं । इसमें कृषि में लगे श्रमिक भी आते हैं जिन्हें करने के लिए कम काम मिलता है । शहरों में भी ऐसे लोग हैं जो कुछ न कुछ काम करते हैं औरउत्पादन कार्य में हाथ बंटाते हैं लेकिन काम कम होने के कारण वे पूरी तरह रोजगार में लगे नहीं समझे जा सकते । ऐसे लोगों की भी बेरोजगारी एक तरह से छिपी हुई होती है क्योंकि वे अपनी क्षमतानुसार पूरा उत्पादन नहीं कर सकते । इस तरह से यह बेरोजगारी भी प्रच्छन्न बेरोजगारी का ही एक भाग है ।

(5) <u>मौसमी बेरोजगारी</u>

देश में कृषि-क्षेत्र में लगे बहुत से श्रमिक ऐसे हैं जिन्हें वर्ष के कुछ समय में काम उपलब्ध नहीं होता लेकिन जो कृषि को छोड़कर काम की तलाश में बाहर भी नहीं जा सकते । कृषि का क्षेत्र ऐसा है कि वर्ष के कुछ भाग में काम बहुत होता हैजैसे बुआई और फसलों की कटाई के समय । दूसरी ओर इसके विपरीत वर्ष का कुछ भाग ऐसा भी होता है जबकि काम बिल्कुल कम हो जाता है, जैसे फसल की कटाई के बाद और अगली बुवाई के पहले । अतः कृषि में लगे हुए बहुत से श्रमिक वर्ष के कुछ मौसम में तो पूरी तरह काम पे लगे होते हैं और कुछ मौसम में काम से बिल्कुल बेकार हो जाते हैं । इस प्रकार की बेरोजगारी को मौसमी अथवा ऋतुपरक बेरोजगारी के नाम से जाना जाता है । भारत तथा भारत के अन्य राज्यों में, जो कृषि प्रधान हैं,

बेरोजगारी का यह स्वरूप व्यापक रूप से दिखाई देता है । इसका कारण यह है कि कृषि यहाँ का मुख्य व्यवसाय है जिसमें मौसमी रोजगार होता है । साधारणतया कृषि में 7 या 8 माह का ही कार्य होता है और वर्ष के शेष महीनों में कृषि-श्रमिकों को बेकार बैठना पड़ता है ।

(6) चक्रीय बेरोजगारी

व्यापार चक्र सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण चक्रीय बेरोजगारी उत्पन्न होती है । पानी में उठने वाली ऊँची और नीची तरंगों के समान ही व्यवसाय में भी मन्दी और तेजी की स्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं । इन व्यवसाय-चक्रों का रोजगार की मात्रा पर व्यापक प्रभाव पड़ता है । जब व्यवसाय में तेजी की स्थिति आती है तो श्रमिकों की माँग बढ़ जाती है । इसके विपरीत जब व्यवसाय मन्द हो जाता है तो श्रमिकों की माँग कम हो जाती है और उनकी छंटनी तथा अनिवार्य छुट्टी कर दी जाती है जिससे बेरोजगारी बढ़ जाती है । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में इस प्रकार की बेरोजगारी का उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है ।

(7) अनैच्छिक बेरोजगारी

अनैच्छिक बेरोजगारी वह है जिसमें श्रमिक कार्य करना चाहता है किन्तु प्रचलित मजदूरी दर पर उसे काम नहीं मिल पाता है । इस प्रकार की बेरोजगारी को प्रकाश में लाने का श्रेय कीन्स को दिया जाता है । कीन्स ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि अनैच्छिक बेरोजगारी वह दशा है

जिसमें एक व्यक्ति प्रचलित मजदूरी की अपेक्षा न्यूनतम वास्तविक मजदूरी पर काम करना चाहता है,यद्यपि वह न्यूनतम मजदूरी को ग्रहण नहीं करना चाहता। इस प्रकार की बेरोजगारी समाज की सम्पूर्ण मांग की प्रभावोत्पादकता की कमी के कारण उत्पन्न होती है । वास्तव में इस प्रकार की बेरोजगारी का का मूल कारण उत्पादन की विभिन्नता,श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण की अधिकता तथा बाजार मूल्य एवं साख प्रणाली तथा वितरण की व्यवस्था में दोष आदि हैं ।

(8) सामान्य या स्थायी बेरोजगारी

इस प्रकार की बेरोजगारी श्रमिकों की स्वतंत्र गतिशीलता के कारण उत्पन्न होती है जो प्रत्येक समय तथा प्रत्येक समाज में पायी जाती है । श्रमिक सदा एक स्थान से दूसरे स्थान को, एक उद्योग से दूसरे उद्योग को जाने के लिए स्वतंत्र होते हैं । साधारणतया एक स्थान से नौकरी छोड़कर दूसरे स्थान पर जाने से शीघ्र ही नौकरी नहीं मिल जाती । अतएव जब तक उन्हें काम नहीं मिलता, वे बेरोजगार होते हैं । एक सीमा तक इस प्रकार की बेरोजगारी समाज में सदैव बनी रहती है जिसे कम नहीं किया जा सकता । प्रो०पीगू ने इसे न मालूम होने वाली न्यूनतम सीमा कहा है जिससे नीचे बेकारी का प्रतिशत कभी नहीं गिरता ।[1]

1-प्रो०पीगू,ए०सी०-अनइम्प्लायमेण्ट,1913,पृ०-15.

(9) अस्थिर बेरोजगारी

ऐसी बेरोजगारी श्रम बाजार की त्रुटियों के कारण उत्पन्न होती है। श्रमिकों में पूर्ण गतिशीलता या परस्पर परिवर्तनशीलता का अभाव पाया जाता है क्योंकि या तो मजदूर मांग के अनुसार नहीं मिलते या अपेक्षित स्थानों पर नहीं मिलते। जब कभी उत्पादन तकनीकों व विधियों या उपभोक्ताओं की आदतों में परिवर्तन होते हैं तो ऐसी ही बेकारी उत्पन्न होती है। इसमें कुछ उद्योगों में तो आवश्यकता से अधिक मजदूर लगे होते हैं और कुछ में श्रम-पूर्ति का अभाव दिखाई देता है। दूसरी श्रेणी के उद्योगों में काम करने वालों को श्रम बाजार की त्रुटियों के कारण कुछ समय तक ही नहीं मिलता। इस प्रकार की बेरोजगारी का प्रमुख कारण श्रमिकों की गतिशीलता काम की अस्थायी प्रकृति, साधनों का अभाव, मशीनरी एवं प्रशासन का गतिरोध और कार्य के सुअवसरों के सम्बन्ध में जानकारी का अभाव आदि है।

(10) औद्योगिक ढांचे सम्बन्धी बेरोजगारी

देश के औद्योगिक ढांचे में विभिन्न उद्योगों का आकार अलग-अलग होता है तथा उनमें रोजगार सृजन की क्षमता में भी अन्तर पाया जाता है। ऐसी बेरोजगारी का प्रधान कारण विनियोजन में अन्तर माना जाता है। यदि एक उद्योग समाप्त या क्षीण होता है तो दूसरा उद्योग उसका स्थान ले लेता है। क्षीण होने वाले उद्योगों में कार्यरत श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं क्योंकि उन्हें दूसरा काम सीखने या ढूढ़ने में समय लगता है। कुछ व्यक्ति जो बहुत पुराने होते हैं उन्हें नयी मशीनों तथा नये वातावरण में कार्य करना

कठिन हो जाता है । इस प्रकार क्षीण होने वाले उद्योगों में अधिक श्रमिक बेरोजगार होंगे जबकि दूसरे उद्योगों में कम । ऐसी बेरोजगारी प्रायः सभी समाजों में पायी जाती है । इस प्रकार की बेरोजगारी को औद्योगिक ढांचे सम्बन्धी बेरोजगारी के नाम से जाना जाता है ।

(ii) <u>शिक्षित बेरोजगारी</u>

शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी एक अलग किस्म की बेरोजगारी है । शिक्षित बेरोजगार ऐसे श्रमिक हैं जिन्हें शिक्षित करने के लिए संसाधन इस्तेमाल किये जाते हैं और इनके काम करने की क्षमता दूसरे श्रमिकों से अधिक होती है । इन श्रमिकों की काम के प्रति प्रत्याशाएं भी अलग सी हैं और ये विशेष कर विशेष प्रकार के कार्यों के ही योग्य होते हैं । इनमें कुछ लोग तो ऐसे हैं जो अल्परोजगार की स्थिति में हैं । इनको थोड़ा-बहुत काम तो मिला होता है लेकिन यह काम या तो इनकी शिक्षा के अनुसार नहीं होता या फिर इनकी क्षमता से कम होता है । इस रूप में इनकी बेकारी छिपी होती है । कुछ शिक्षित व्यक्ति ऐसे भी हैं जिनको कुछ भी काम नहीं मिला होता अर्थात वे खुले रूप में बेरोजगार होते हैं । भारत में शिक्षित बेरोजगारी अधिकतर शहरों में पायी जाती है किन्तु इसका आशय यह नहीं लेना चाहिए कि ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी है ही नहीं । शिक्षा व प्रशिक्षण के प्रसार व विस्तार के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी ऐसे बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है । बिहार राज्य में भी पिछले कुछ दशकों में ऐसे बेरोजगारों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है । आज देश के प्रत्येक प्रान्त में ऐसी बेरोजगारी बढ़ रही है जो देश के समक्ष एक कड़ी चुनौती है जिसके लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता है ।

देश में बेरोजगारी के स्वरूप में भिन्नता

विकसित देशों और विकासशील देशों की बेरोजगारी की स्थिति में भिन्नता पायी जाती है। विकसित देशों में बेरोजगारी की इस भिन्नता को ध्यान में रखते हुए, देश में बेरोजगारी के स्वरूप और स्थिति को, संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है। भारत में बेरोजगारी का फैलाव बहुत अधिक है। यह दीर्घकालिक स्वरूप की है। मूल रूप में यहाँ की बेरोजगारी पूर्ति पक्ष से जुड़ी हुई है। इसका सम्बन्ध देश की अपर्याप्त उत्पादन क्षमता, विशेष रूप से पूँजी के साथ है। इस प्रकार देश में रोजगार के अवसरों के सृजन का प्रश्न मूलत: पूँजी-निर्माण की दर को तीव्रतर करने एवं उत्पादन क्षमता को बढ़ाने का है।

भारत में बेरोजगारी का प्रमुख रूप प्रच्छन्न बेरोजगारी, अल्प-रोजगार एवं ऋतुपरक बेरोजगारी का है। यह इस बात से स्पष्ट है कि देश की अर्थव्यवस्था बहुत बड़ी सीमा तक कृषि अर्थव्यवस्था है। यहाँ का औद्योगिक क्षेत्र बहुत ही छोटा है। कार्यशील जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि की ओर बढ़ता रहता है। पिछड़ी हुई दशा में होने के कारण कृषि क्षेत्र में काम-काज का विस्तार तेजी से नहीं होने पाता। फलस्वरूप इस क्षेत्र में उपलब्ध काम अधिकाधिक लोगों में बंटा रहता है। बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जिन्हें थोड़ा ही काम मिल पाता है और वह भी कुछ समय केलिए ही। बाकी समय वे बेकार रहते हैं। इसका कारण यह भी है कि देश में कृषि एक ऋतुपरक व्यवसाय है और मोटे तौर पर पारिवारिक आधार पर की जाती है।

खुली बेरोजगारी देश में बेरोजगारी की समस्या का एक बहुत छोटा अंश है । देश में ऐसे लोगों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है जो पूरे साल बेकार रहते हैं । चूंकि अधिकांश कार्यशील जनसंख्या कृषि से जुड़ी रहती है इसलिए समय-समय पर श्रमिकों को थोड़ा-बहुत काम मिलता ही रहता है । ऐसी स्थिति में खुली बेरोजगारी का होना स्वाभाविक है । ऐसी बेरोजगारी भारत के सभी प्रान्तों के ग्रामीण क्षेत्रों में पायी जाती है । देश में बेरोजगारी की एक अन्य विशेषता यह है कि अधिकांश बेरोजगार व्यक्ति ग्रामवासी हैं । इस प्रकार देश में बेरोजगारी की समस्या प्रमुखत: ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या है । ऐसा होना इसलिए स्वाभाविक है क्योंकि यहाँ के अधिकांश लोग गाँवों में निवास करते हैं और कृषि में लगे हुए हैं । बिहार राज्य में भी ऐसी स्थिति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है ।

भारतीय सन्दर्भ में रोजगार सिद्धांतों का मूल्यांकन

कोई भी सिद्धान्त एक निश्चित परिप्रेक्ष्य में जन्म पाता है जिसके आधार पर ही विभिन्न प्रकार की नीतियों की रचना की जाती है ताकि समाज में विभिन्न प्रकार की मानवीय क्रियाओं को सुनिश्चित उद्देश्य की ओर ले लाया जा सके तथा उनमें इस प्रकार का सामंजस्य स्थापित किया जा सके जिससे समाज का वैज्ञानिक संगठन आदर्श हो जाए, व्यक्ति तथा समुदाय के उत्कर्ष के अधिकतम बिन्दु को प्राप्त कर सके । ऐसी ही दशा में कार्यक्षमता, उत्पादकता और सहकारिता की भावना बलवती हो जाती है । जब तक यह वातावरण सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक व राजनीतिक रूप में बना रहता

है तब तक यह नीति अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ कार्य करती है । अतः सिद्धांतों के प्रतिपादन में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं को स्थिर मान लिया जाता है । सिद्धान्तों की रचना के लिए गत्यात्मकता परिस्थिति से उन आंकड़ों और विचारों को पृथक कर लिया जाता है जिनका अध्ययन करना होता है । हमारा अध्ययन स्थैतिक हो जाता है परन्तु वस्तुस्थिति निरन्तर परिवर्तनशील रहती है जिसके फलस्वरूप एक अच्छा सिद्धान्त भी ऐसी जटिलताओं को उत्प्रेरित करता है जिसका निराकरण करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता है । यदि सामाजिक संस्थाओं और सामाजिक संगठनों में कोई परिवर्तन नहीं होता तो ऐसी दशाएं उत्पन्न हो जाती हैं जो पुराने विचारों का प्रतिस्थापन करने का प्रयास करेंगे ताकि नये मूल्यों की स्थापना हो सके ।

निरन्तर संघर्ष का क्रम नये और पुराने मूल्यों के बीच चलता रहता है जब तक कि विशिष्ट सिद्धान्त के अनुसार मूल्य स्थापित नहीं हो जाते तब तक उनके आधार पर नई नीतियों का उपयोग ठीक ढंग से नहीं किया जा जा सकता है । नियोजन में सफलता तभी मिल पाती है जब उसके अनुरूप मूल्यों की स्थापना की जाती है और उसे प्रभावी बनाने हेतु नीतियों का निर्धारण किया जाता है । नये मूल्य नई दिशा की पृष्ठभूमि का कार्य करते हैं जो विकास की गति को नये परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करते हैं ।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने जिन विचारों का विकास किया, वह एक तो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर तथा एक निश्चित प्रकार के उत्पत्ति के साधनों पर निर्भर है जिसमें सरकार के कार्यों को न्यूनतम सीमा पर निश्चित किया गया और निजी साहस को प्रोत्साहित करने के लिए हस्तक्षेप न करने की

नीति, स्वतंत्र और पूर्ण प्रतियोगिता को स्वीकार किया । सभी साधनों के विभिन्न उपयोगों और स्थानों में वितरण की आदर्श स्थिति की कल्पना प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने की थी । जब उत्पत्ति के सभी साधनों को अपनी सेवाएं बेचने की स्वतंत्रता होती है तब वे अपनी सम्पूर्ण योग्यता तथा क्षमता के अनुसार सेवाएं प्रदान करते थे । अधिक से अधिक व्यक्तियों का अधिक से अधिक कल्याण हुआ करता था । सामाजिक कल्याण तथा सन्तुष्टि भी अधिक हो जाती थी । उपर्युक्त दशाओं का विकास और विकासक्रम तभी तक न्यायपूर्ण होता रहा जब तक एक निश्चित प्रकार के मूल्य और सामाजिक दशाएं विद्यमान रहती रहीं ।

स्थैतिक अध्ययन के आधार पर निर्मित किये गये सिद्धान्तों का उपयोग यदि नवीन परिस्थितियों में किया जाता है तो इसके बड़े भयंकर परिणाम निकलते हैं । 19वीं शताब्दी में उपनिवेशवाद अपनी चरम सीमा को छू रहा था और साम्राज्यवादी शक्तिशाली देशों ने इन उपनिवेशों का अधिकाधिक शोषण किया और अपने देश की अतिरिक्त उत्पत्ति को बेचने हेतु उपनिवेशों को बाजार के रूप में प्रयुक्त किया । इसके साथ ही प्रभुता सम्पन्न देश उपनिवेशों से कच्चा माल अपने देश ले जाते थे और बदले में निर्मित माल इन देशों में विक्रय हेतु प्रस्तुत करते थे । उनकी व्यापारिक नीति इस प्रकार की थी कि उनका भुगतान सन्तुलन सदैव उन्हीं के पक्ष में रहा ।

साम्राज्यवादियों का विकास इसी शोषण नीति पर निर्भर करता था । साहस, बचत तथा विनियोग में वृद्धि की स्थिति उत्पन्न हुई । 19वीं शताब्दी में प्रभावपूर्ण माँग या बाजार का विस्तार अधिक तीव्र गति से हुआ।

एक ओर जनसंख्या की वृद्धि तीव्र गति से हो रही थी, दूसरी ओर बिना विकास हुआ क्षेत्र जिसमें प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध था तथा तीसरे आविष्कार के कारण पूंजी का उपयोग विस्तृत तथा गहन होने लगा, तकनीकी ज्ञान का विकास तथा पूंजी की मात्रा में वृद्धि अधिक तीव्र गति से हो रही थी । इन्हीं कारणों से निवेश अधिक प्रोत्साहित हुआ जिसके फलस्वरूप इन साम्राज्यवादियों ने अपने उपनिवेशों का भरपूर उपयोग अपने विकास में किया । इन साम्राज्यवादी देशों में केवल वास्तविक राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई और साथ ही उपभोग के स्तर में, कार्य कुशलता तथा उत्पादन में, व्यापार में और रोजगार के उच्चतम स्तर को स्थापित किया जा सका । रोजगार के अवसरों का विकास तीव्रता और शीघ्रता से होता चला गया । आर्थिक प्रणाली में समय-समय पर उतार-चढ़ाव आने लगे जिसके कारण बेरोजगारी को कम करना इन देशों के लिए कठिन हो गया । पूंजीवादी प्रणाली दीर्घकालीन दृष्टि के अनुसार विकासोन्मुख रही । विकास के इसी क्रम में समय-समय पर व्यापार चक्र आने लगे थे जिसके कारण मानवीय श्रम तथा संसाधनों का समय-समय पर अपव्यय भी हुआ । मुख्य रूप से श्रम सम्बन्धी तथा रोजगार की समस्या गहन होती चली गयी । इसका मुख्य कारण यह था कि 20वीं शताब्दी में उपनिवेश स्वतंत्र होते चले गये । इन देशों ने विदेशी पूंजी, राजनीति तथा विदेशी सहायता पर अंकुश लगाना अनिवार्य समझा और विदेशी कूटनीति से बचने का प्रयास किया । क्योंकि आर्थिक और राजनीतिक विस्तार का महत्वपूर्ण अंग आदर्शहीन और मानवताविहीन कूटनीति थी जो उपनिवेश को स्वतंत्र आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संरचना के लिए बहुत घातक थी । अतएव लाभदायक स्रोतों में संकुचन आया ।

पूंजीवादी सिद्धान्तों का विकास स्वतंत्र प्रतियोगिता को बनाये

रखने की दृष्टि से हुआ । इसके पीछे यह अवधारणा छिपी हुई थी कि ज्यों-ज्यों समाज सम्पन्न होता जायेगा, ज्यों-ज्यों उत्पत्ति तथा राष्ट्रीय आय बढ़ती जायेगी, त्यों-त्यों श्रमिकों की वास्तविक आय भी बढ़ती जायेगी । उपभोक्ताओं को आराम मिलेगा एवं उनका कल्याण होगा तथा धरा पर स्वर्ग उतारा जा सकेगा । परन्तु इन आधारभूत अवस्थाओं में ही परिवर्तन हो गया। उत्पत्ति राष्ट्रीय आधार पर सुनिश्चित उद्देश्यों के अनुसार नहीं हो पाती थी, अपितु व्यक्तिगत रूप में की जाती थी । इसका परिणाम यह होता था कि कभी उत्पत्ति उपभोग से अधिक हो जाती थी और कभी कम । फलस्वरूप निवेश अनिश्चित हो जाता था । इसी के कारण पूर्ण प्रतियोगिता का आधार समाप्त होने लगा ।

प्रारंभ में श्रमिकों को अधिक कल्याणकारी सुविधाएं नहीं प्राप्त थीं । उनके रहन-सहन का निम्न स्तर, निम्न आय तथा असुरक्षा को देखते हुए सरकार ने श्रमिक संगठनों को केवल वैधानिक मान्यता ही प्रदान नहीं की अपितु बेरोजगारी, वृद्धावस्था, पंगुता, गन्दगी तथा अभाव से छुटकारा दिलाने का भी कार्य आरंभ कर दिया ताकि कल्याणकारी समाज की स्थापना हो सके । उत्पत्ति के साधनों का इस प्रकार उपयोग करने का प्रावधान किया जाने लगा जिससे बेरोजगारी दूर हो, उत्पादन अधिकतम हो, राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हो तथा धन के वितरण को अधिक न्यायपूर्ण और समान बनाया जा सके ।

समाजवादी आर्थिक प्रणाली में आर्थिक शक्तियों को स्वतंत्र नहीं छोड़ा जाता है, बल्कि उन्हें निश्चित दिशा और उद्देश्य प्रदान किया जाता है । माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ प्रतिबन्धित रहती हैं । सरकार किसी वस्तु

की बिक्रय की जाने वाली मात्रा को कठोरता से निश्चित कर देती है। जिसके अनुरूप मांग का रखना आवश्यक हो जाता है। यदि मांग कम हो जाती है तो उस वस्तु की उत्पत्ति कम कर दी जाती है और जब तक उस वस्तु की सम्पूर्ण मात्रा बिक नहीं जाती तब तक प्रयत्न चलता रहता है। उत्पत्ति के साधनों में फेर-बदल द्वारा मांग -पूर्ति में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।

समाजवादी और पूंजीवादी विकास के सिद्धान्त एक दूसरे के विकल्प के रूप में मिलते हैं। पूंजीवाद में जबकि स्वतंत्रता (असमानता के साथ) रहती है जो अन्तिम विश्लेषण की दशा में केवल सतही रह जाती है परन्तु समाजवाद में नियंत्रण होते हुए भी (उद्देश्यों की पूर्ति निर्धारित होती है) स्वतंत्र रहती है। पूंजीवाद में रोजगार का पूर्ण स्तर या साम्य को बनाये रखना कठिन होता है। बेरोजगारी की समस्या विशेष रूप से अधिक कठोर रहती है क्योंकि प्रभावशील मांग के विभिन्न अंगों में सन्तुलन रखना संभव नहीं होता है। पूंजीवाद में विकास का क्रम कभी सुचारू रूप से नहीं रहा जबकि समाजवाद में विकास की प्रक्रिया की दर स्वयं सरकार अपने नियंत्रण और उद्देश्य के अनुसार करती है। अतः पूंजीवादी सिद्धान्त समाजवादी अर्थव्यवस्था के उसी प्रकार मृत्यु के समान है जिस प्रकार से समाजवादी आर्थिक विकास की प्रक्रिया पूंजीवाद के लिए अनुपयुक्त और निरर्थक है। विश्व के समस्त देशों में दो प्रकार के सिद्धान्त के अनुसार विकास की प्रक्रिया चल रही है जिनकी मान्यताएं और परिकल्पनाएं अलग-अलग हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है जिसमें पूंजीवाद और समाजवाद दोनों के गुण-दोषों का सम्मिश्रण है। भारतीय अर्थव्यवस्था

विकासशील अवस्था में है क्योंकि अभी तक आर्थिक प्रणाली में किसी ऐसी प्रक्रिया का जन्म नहीं हुआ है जिससे आर्थिक प्रणाली गतिहीन, पिछड़ी और निम्न कोटि की अवस्था से निकलकर स्वयंस्फूर्तिदायक बनकर रोजगार और राष्ट्रीय आय के उच्चतम स्तर को प्राप्त कर सके। भारतीय अर्थव्यवस्था निर्धनता के दुष्चक्र में फंसी हुई है। जनसंख्या अवश्य अधिक है किन्तु आय का स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का है। पूंजी के विनियोजन के लिए मांग भी कम है। कमजोरी मांग और पूर्ति दोनों पक्षों में देखी जा सकती है। भारत में जनसंख्या केवल अधिक ही नहीं अपितु उसमें और सापेक्षित वृद्धि की प्रवृत्ति भी है जो कुछ वास्तविक आय बढ़ती है उसकी दर से जनसंख्या की दर बढ़ जाती है और बढ़ी हुई आय का उपभोग कर लेती है और पूंजी निर्माण के लिए साधन नहीं बन पाता है। अर्थशास्त्रियों का ऐसा विचार है कि एक प्रतिशत जनसंख्या के वर्तमान रहन-सहन के स्तर को बनाये रखने के लिए राष्ट्रीय आय केतीन से चार प्रतिशत का विनियोजन आवश्यक होता है। भारत के पास आन्तरिक साधनों से बचत पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाती है जब कि सरकार काफी समय से घाटे की वित्त व्यवस्था का उपयोग करती रही है।

अत: अब विभिन्न रोजगार सिद्धान्तों का विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है जो इस प्रकार है :-

रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की परिभाषा करते हुए कीन्स ने कहा है कि यह परम्परागत आर्थिक सिद्धान्तोंका वह समूह है जो रिकार्डो के समय

से पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा है । प्रतिष्ठित सिद्धान्तों को अनुवर्ती अर्थशास्त्रियों द्वारा समय-समय पर विस्तृत,संशोधित,परिवर्तित एवं परिवर्द्धित किया गया था तथापि इनका मुख्य स्वरूप ज्यों का त्यों ही बना रहा । ये सिद्धान्त स्वयं में ही आर्थिक विचारधारा की एक सुस्पष्ट प्रणाली है । अनेक उन अर्थशास्त्रियों को जिन्होंने इन सिद्धान्तों को विकसित परिवर्तित एवं संशोधित किया है, क्लासिकल अर्थशास्त्री की संज्ञा दी जाती है । "क्लासिकल अर्थशास्त्री" शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कार्ल मार्क्स[1] ने रिकार्डो एवं उनके उन पूर्वगामी अर्थशास्त्रियों के संदर्भ में किया था जिनमें एडम स्मिथ भी शामिल थे । कीन्स ने इन शब्दों का प्रयोग विस्तृत रूप में रिकार्डो के उन अनुयायियों के लिए भी किया है जिनमें जेम्स स्टुअर्ट मिल, अल्फ्रेड मार्शल और ए०सी०पीगू के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । दूसरे शब्दों में जब कभी कीन्स " क्लासिकल सिद्धान्त" शब्द का प्रयोग करते थे तो उनका अभिप्राय नव प्रतिष्ठित सिद्धांत से होता था । इस सिद्धांत को विशिष्ट रूप में मार्शल अथवा पीगू से सम्बन्धित माना जाता है ।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की मान्यता यह थी कि श्रम एवं उत्पादन के अन्य साधन सदैव ही पूर्ण रोजगार की स्थिति में रहते हैं । वास्तव में, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के लिए पूर्ण रोजगार सामान्य दशा थी और उसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन असामान्य दशा माने जाते थे । यदि किसी समय पूर्ण रोजगार की वास्तविक दशा नहीं होती है तो भी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूर्ण रोजगार की प्रवृत्ति सदैव विद्यमान रहती है ।

1-जे०एम०कीन्स- रोजगार,मुद्रा और ब्याज का सामान्य सिद्धान्त,पृ०-3.

प्रतिष्ठित विचारधारा के अनुसार आर्थिक शक्तियों की निर्बाध क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप श्रम सहित समस्त आर्थिक साधनों का स्वयं ही पूर्ण प्रयोग होता रहता है । यदि बाजार की शक्तियों की क्रियाशीलता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया गया तो उससे पूर्ण रोजगार की दशा उत्पन्न नहीं हो सकेगी । इसी प्रकार क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का मत था कि श्रम एवं अन्य साधनों को पूर्ण रोजगार प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार आर्थिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करे । प्रो० जे०बी० से द्वारा प्रतिपादित "बाजार का नियम" क्लासिकल अर्थशास्त्र की इसी मान्यता की पुष्टि करता है कि निर्बाध व्यापार के अन्तर्गत सभी साधनों को सदा ही पूर्ण रोजगार प्राप्त होता रहता है । वास्तव में,यह नियम क्लासिकल अर्थशास्त्र का मूलभूत सिद्धान्त है ।

प्रो०जे०बी०से के अनुसार सामान्य अति उत्पादन असंभव है । उनके मतानुसार, चूंकि सामान्य अति उत्पादन नहीं हो सकता इसलिए सामान्य बेरोजगारी का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । प्रतिष्ठित अर्थशा--स्त्रियों का दृढ़ विश्वास था कि किसी भी समय बेरोजगारी नहीं हो सकती अथवा सदैव पूर्ण रोजगार की दशा बनी रहती है । वास्तव में, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की पूर्ण रोजगार सम्बन्धी इस धारणा में कुछ सीमा तक ऐच्छिक बेरोजगारी भी सम्मिलित है । ऐच्छिक बेरोजगारी की दशा तभी उत्पन्न होती है जबकि मजदूर चालू मजदूरी से कुछ कम मजदूरी लेना अस्वीकार कर देते हैं । मजदूरी की ऊंची दर पाने के लिए मजदूरों द्वारा हड़तालों का किया जाना ऐच्छिक बेरोजगारी का ही उदाहरण है । इसी प्रकार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की पूर्ण रोजगार सम्बन्धी धारणा में किसी सीमा तक संघर्षात्मक बेरोजगारी विद्यमान रहती थी । संघर्षात्मक बेरोजगारी

विद्यमान रहती थी । संघर्षात्मक बेरोजगारी एक ऐसी बेरोजगारी है जो विशुद्धतः श्रम बाजार सम्बन्धी अपूर्णताओं आदि जैसे संघर्षात्मक कारणों से उत्पन्न होती है । ऐसी बेरोजगारी का एक मुख्य कारण यह है कि श्रमिकों को रोजगार सम्बन्धी अवसरों के बारे में पूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं होती । बहुत से श्रमिक इसी अज्ञानता के कारण बेरोजगार होते हैं । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार वास्तविक समाज में अनैच्छिक आर्थिक प्रणाली की स्वतंत्र क्रियाशीलता में हस्तक्षेप का परिणाम होता है । यदि इन हस्तक्षेपों को समाप्त कर दिया जाय और आर्थिक प्रणाली को स्वतंत्र रूप से कार्य करने दिया जाय तो बेरोजगारी निश्चय ही अदृश्य हो जायेगी और प्रत्येक काम चाहने वाला व्यक्ति काम पा सकेगा । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि अनैच्छिक बेरोजगारी मजदूरी के ढांचे की बेलोचता के कारण ही उत्पन्न होती है । उनका विश्वास है कि बेरोजगारी के समय में यदि मजदूरी की दर को पर्याप्त मात्रा में घटा दिया जाय तो समस्त अनैच्छिक बेरोजगारी अदृश्य हो जायेगी । इस प्रकार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार बेरोजगारी को समाप्त करने का उपचार यह है कि सभी प्रकार के हस्तक्षेपों को समाप्त करने के लिए आर्थिक प्रणाली को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए छोड़ दिया जाय ।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि माँग और पूर्ति में कभी भी असन्तुलन अथवा असामंजस्य नहीं हो सकता । अतः न तो कभी अति उत्पादन और न ही न्यून उत्पादन हो सकता है । प्रो० से का नियम यह था कि पूर्ति और माँग सदा एक दूसरे के साथ सन्तुलित रहते हैं और आगे चलकर सन्तुलन की यह प्रक्रिया स्वचालित एवं स्वयं समायोजित हो जाती है ।

प्रो० से का विचार था कि पूर्ति स्वयं अपने लिए मांग उत्पन्न करती है। कीन्स ने प्रो० से के नियम को मानने से इन्कार नहीं किया बल्कि उस पर डटकर प्रहार किया।[1] कीन्स अपनी प्रसिद्ध पुस्तक समान्य सिद्धान्त में प्रो० से के नियम की कटु आलोचना की है। उन्होंने केवल "से" के नियम का ही नहीं बल्कि प्रो० "से" के उस नियम की भी विशेष रूप से आलोचना की है जिसे पीगू ने प्रतिपादित किया था।

पीगू का विचार था कि यदि श्रमिक अपनी इच्छा से मजदूरी कटौती को स्वीकार कर लेते हैं तो बेरोजगारी दूर हो जायेगी, किन्तु कीन्स ने इस मत पर तीव्र प्रहार किया। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि मंदी के समय में लोचपूर्ण मजदूरी रोजगार वृद्धि का साधन नहीं बन सकती। इसके विपरीत, वे मानते थे कि रोजगार की वृद्धि एवं विस्तार के लिए मजदूरी की बेलोचता का होना अत्यन्त आवश्यक है अर्थात मजदूरी में कटौती नहीं होनी चाहिए। कीन्स का कथन था कि मजदूरी कटौती से श्रमिकों की क्रय शक्ति कम हो जायेगी जिससे उद्योगों के उत्पादन में उनकी प्रभावपूर्णमांग घट जायेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सभी उद्योगों में सामान्य मजदूरी कटौती के परिणामस्वरूप वस्तु लागत तो अवश्य ही घट जायेगी किन्तु क्रय शक्ति के कम हो जाने से प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि नहीं हो सकेगी। सामान्य मजदूरी कटौती के कारण श्रमिक अब उतनी वस्तुएं नहीं खरीद सकेंगे जितनी वे कटौती से पूर्व खरीद सकते थे। इस प्रकार कुल प्रभावपूर्ण मांग में कमी आ जायेगी और रोजगार की मात्रा बढ़ने के बजाय वास्तव में कम हो जायेगी। पीगू का मत

1-पाल,एम०स्वीजी इन द न्यू इकोनामिक्स,सेन्योर ई० हरीस(एडी०)पृ०-105

यह था कि बेरोजगारी के समय मजदूरी की सामान्य कटौती से रोजगार में वृद्धि होती है, किन्तु कीन्स के मतानुसार सामान्य मजदूरी कटौती के परिणामस्वरूप क्रय शक्ति घट जाती है और प्रभावपूर्ण मांग कम हो जाती है। प्रभावपूर्ण मांग में कमी से उत्पादन में कमी आ जाती है फलत: रोजगार की मात्रा में भी कमी आ जाती है। मजदूरी लागत ही नहीं बल्कि आय भी प्रभावित होती है। मजदूरी का प्रभाव लागत पर नहीं बल्कि आमदनी पर भी पड़ता है। प्रो०पीगू केवल प्रथम पहलू अर्थात लागत पर ही बल देते थे जब कि कीन्स ने आय पर ही पूर्ण रूप से बल दिया है।

कीन्स यदि मजदूरी कटौती का विरोध करते थे तो मजदूरी बढ़ोत्तरी को भी वे पसन्द नहीं करते थे। मन्दी के समय बेरोजगारी का उपचार करने हेतु वे मजदूरी वृद्धि के पक्ष में नहीं थे। श्रम संघवादियों का तर्क तो यह था कि मन्दी का केवल एक यही उपचार है कि ऐसे अवसर पर नकद मौद्रिक मजदूरी स्तर को ऊँचा करना चाहिए क्योंकि मौद्रिक मजदूरी की वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रमिकों की क्रय शक्ति बढ़ेगी और उसके कारण कुल प्रभावपूर्ण मांग में भी वृद्धि होगी। इस सन्दर्भ में श्रीमती जोन राबिन्सन[1] का मत है कि यदि उद्यमी अपने श्रमिकों को अधिक मजदूरी देने को तैयार होते हैं तो माल की मांग बढ़ जायेगी और उत्पादन में भी वृद्धि होगी किन्तु मांग की यह वृद्धि ऊँची मजदूरी के फलस्वरूप लागत में होने वाली वृद्धि को तटस्थ कर देती है। दूसरे शब्दों में, मन्दी के समय में कीन्स का मजदूरी वृद्धि के विरोध में तर्क यह था कि इससे लागतों में वृद्धि होगी और ऊँची

1-श्रीमती जोन राबिन्सन-इन्ट्रोडक्शन टू दि थियरी आफ इम्प्लायमेण्ट, पृ०-80.

मजदूरी के कारण होने वाली यह वृद्धि कुल प्रभावपूर्ण मांग में होने वाली वृद्धि से अधिक मात्रा में होगी अर्थात बढ़ी हुई मांग उत्पादन की बढ़ी हुई लागत की तुलना में कम होगी जिससे रोजगार की मात्रा में नगण्य वृद्धि होगी ।

कीन्स मंदी के समय न तो मजदूरी कटौती के ही पक्ष में थे और न ही मजदूरी वृद्धि के । वे नकद मजदूरी को यथास्थिर बनाये रखने का ही समर्थन करते हैं । कीन्स मजदूरी वृद्धि के विरोधी थे, अतः उन्होंने श्रमसंघ-वादियों के कई विरोध का सामना किया ।[1]

प्रो० पीगू स्वतंत्र व्यापार प्रणाली की ओर लौटना चाहते थे । वे यही तर्क देते थे कि पूर्ण प्रतियोगिता प्रणाली ही रोजगार वृद्धि का एक मात्र साधन होती है किन्तु कीन्स के अनुसार संसार की परिवर्तित दशाओं में पीगू का यह विचार उचित नहीं था । प्रो० पीगू आर्थिक प्रणाली की स्वतंत्र कार्यशीलता में विद्यमान राज्य हस्तक्षेप को अच्छा नहीं समझते थे । उनके अनुसार हस्तक्षेप से आर्थिक प्रणाली की स्वतंत्र कार्यशीलता में बाधा उपस्थित होती है जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है । उनका कहना था कि इन हस्तक्षेपों के समाप्त होते ही आर्थिक प्रणाली सुचारु रूप से कार्य करने लगेगी और श्रम एवं अन्य साधनों को पूर्ण रोजगार प्राप्त होगा ।

1- मार्क एगेन्टस-कीन्सियन बाई जोहन एटन, पृ०-41 ·

पीगू के मतानुसार श्रम संघों की सामूहिक सौदेबाजी मजदूरी को गिरने नहीं देती है और मजदूरी न गिरने से बेरोजगारी की मात्रा में वृद्धि होती है । प्रत्येक न्यायप्रिय व्यक्ति यह स्वीकार करेगा कि श्रमसंघ आधुनिक समाज के अभिन्न अंग बन गये हैं और उनको समाप्त नहीं किया जा सकता तथा उनका अस्तित्व बना ही रहेगा और भविष्य में सामूहिक सौदेबाजी और भी अधिक होती चली जायेगी । प्रो० पीगू के अनुसार "न्यूनतम मजदूरी विधान" आर्थिक प्रणाली की स्वतंत्र कार्यशीलता में एक प्रकार का राजकीय हस्तक्षेप है परन्तु पीगू के इस विचार से कोई भी विचारशील व्यक्ति सहमत नहीं हो सकता ।

आज शायद ही ऐसी कोई प्रगतिशील सरकार होगी जिसने न्यूनतम मजदूरी निर्धारण सिद्धान्त को स्वीकार एवं क्रियान्वित न किया हो और न ही हम आधुनिक सरकारों से यह आशा करते हैं कि मन्दी और बेरोजगारी के समय में लोगों को बेरोजगारी से राहत देने सम्बन्धी अपने वचन से विचलित हो जाये, संक्षेप में सम्पूर्ण प्रतिष्ठित सिद्धान्त अयथार्थ, असामयिक एवं अप्रचलित है तथा इस बात की कोई आशा नहीं है कि वर्तमान अथवा आने वाले दिनों में वह अपनाया जा सकेगा ।

कीन्स का रोजगार सिद्धान्त

कीन्स से पूर्व भी रोजगार के दो सिद्धान्त प्रचलित थे- (1) अबन्ध नीति सिद्धान्त और (2) प्राकृतिक आवेग सिद्धान्त ।[1] प्रथम सिद्धान्त के अनुसार बेरोजगारी इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि बाजार की शक्तियों की स्वतंत्र क्रियाशीलता में सरकार अनावश्यक हस्तक्षेप करती

है । इस सिद्धान्त के अनुसार, बेरोजगारी इस कारण भी होती है कि इससे समूचे बाजार पर लोगों का एकाधिकार स्थापित हो जाता है । यदि सरकार आर्थिक क्रियाओं में सामाजिक कानूनों, उपादानों, करों आदि द्वारा हस्तक्षेप न करे और निजी व्यवसाय एवं स्वतंत्र सौदेबाजी को बाजार में स्वतंत्र रूप से क्रियान्वित होने दे तो रोजगार स्वतः ही अधिक मात्रा में प्राप्त होगा । यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित था कि पूर्ण रोजगार पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की एक सामान्य दशा होती है । इस सिद्धान्त के अनुसार बेरोजगारी, राज्य हस्तक्षेप एवं कारखानेदारों अथवा श्रमसंघवादियों की एकाधिकारात्मक कार्यवाही के ही कारण होती है । यदि इस प्रकार के हस्तक्षेप समाप्त कर दिये जाय तो बेरोजगारी तत्काल अदृश्य हो जायेगी । तात्पर्य यह है कि जैसे ही ये प्रतिबन्ध हटा लिये जायेंगे वैसे ही स्पर्धा उत्पन्न हो जायेगी । यह स्पर्धा मजदूरी को उस स्तर तक नीचे गिरा देगी जहाँ पर उद्यमियों को अधिक मजदूरी से लाभ होने लगेगा, किन्तु इस प्रकार का दृष्टिकोण अयथार्थ एवं अवास्तविक है तथा आज अथवा कल की परिस्थितियों में इसे मुश्किल से अपनाया जा सकेगा ।[1]

प्राकृतिक आवेग सिद्धान्त के अनुसार बेरोजगारी व्यापारचक्र की क्रियाशीलता के कारण उत्पन्न होती है । यह सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि व्यावसायिक उतार-चढ़ाव प्राकृतिक होते हैं और यदि सीमित हों तो लाभदायिकतापूर्ण होते हैं । प्राकृतिक आवेग सिद्धान्त के प्रतिपादक व्यापार चक्र की क्रियाशीलता का कोई एक निश्चित कारण नहीं बताते ।

1- एफ० ए० इवर्ट - दि काज आफ अनइम्प्लायमेंट, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1948, पृ०-17.

इसके विपरीत,उनमें व्यापार-चक्रों के कारणों के प्रश्न पर भी मतभेद है । इस सम्बन्ध में जिन मुख्य कारणों को प्रस्तुत किया गया है उनमें से कुछ मुख्य हैं- फसलों की मात्रा में परिवर्तन, उद्यमियों की आशावादिता और निराशावादिता,समय-समय पर होने वाली बैंक नीति में परिवर्तन, नवीन आविष्कार आदि । इनमें से कोई भी कारण ऐसा नहीं है जो बेरोजगारी के स्वरूप की व्यापक एवं विस्तृत व्याख्या कर सके । यही कारण है कि बेरोजगारी की सही व्याख्या करने के लिए प्राकृतिक आवेग सिद्धान्त भी असन्तोषजनक सिद्ध हुआ है ।

कीन्स द्वारा प्रतिपादित रोजगार सिद्धान्त प्रथम क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक रोजगार सिद्धान्त है । इस सिद्धान्त को प्रायः न्यून मांग सिद्धान्त कह कर भी पुकारा जाता है । इस सिद्धान्त के अनुसार बेरोजगारी प्रभावपूर्ण मांग की कमी अथवा उपभोग एवं निवेश पर किये गये व्यय की कमी के कारण होती है । यहां केवल न्यून मांग सिद्धान्त का ही अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । कीन्स ने न्यून मांग सिद्धान्त की विवेचना करने से पूर्व इसकी कतिपय मान्यताओं को प्रस्तुत किया गया है जो अधोलिखित हैं:-

(i) कीन्स का सिद्धान्त केवल अल्पकाल से सम्बन्धित है । कीन्स का कथन था कि दीर्घकाल में तो हम सभी मृत हो जाते हैं । अल्पकाल में पूंजी तथा उत्पादन की मात्रा स्थिर रहती है । यह कीन्स के सिद्धान्त की महत्वपूर्ण मान्यता है ।

(2) कीन्स के सिद्धान्त की यह मान्यता थी कि बाजारमें पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है अथवा कम से कम बाजार में एकाधिकार के अंश में कोई परिवर्तन नहीं होता है ।

(3) कीन्स यह मानकर चले थे कि उत्पादन में उत्पत्ति ह्रास नियम अथवा बढ़ती हुई लागत का नियम कार्यशील होता है ।

(4) कीन्स का सिद्धान्त "बन्द अर्थव्यवस्था" की मान्यता पर निर्मित किया गया है । कीन्स ने रोजगार की मात्रा पर पड़ने वाले विदेशी व्यापार के प्रभावों को अपने सिद्धान्त में कोई स्थान नहीं दिया है ।

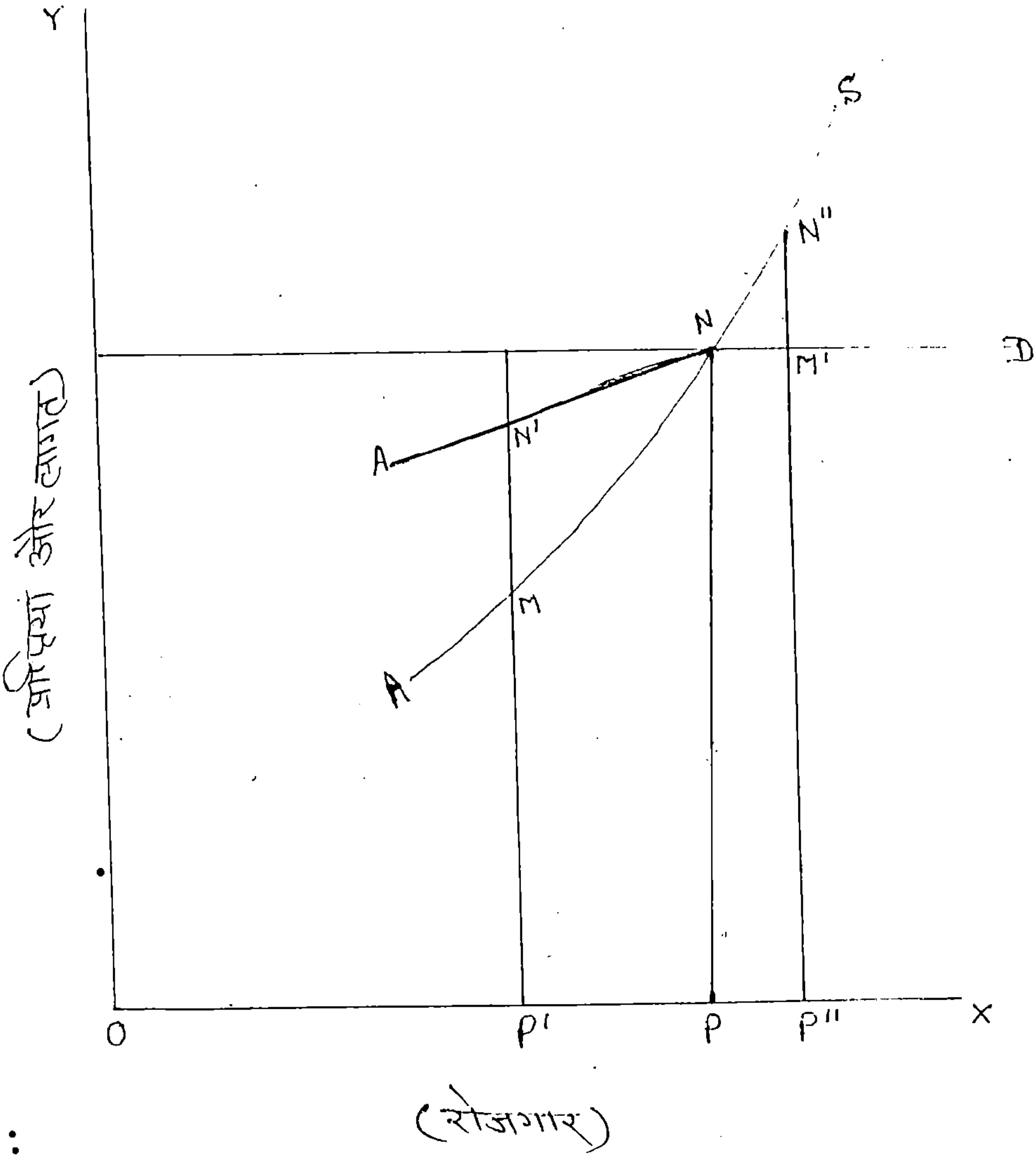
(5) कीन्स का सिद्धान्त सापेक्षिक मजदूरियों और कीमतों जैसे सापेक्षिक धारणाओं के द्वारा व्यवहार नहीं करता । यह तो पूर्णतः योगात्मक धारणाओं से ही सम्बन्धित है ।

रोजगार मापन की अन्य किसी उत्तम इकाई के अभाव में कीन्स राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में रोजगार की मात्रा को कुल उत्पादन के माध्यम से ही मापते हैं । कीन्स की यह मान्यता थी कि जितना ही अधिक उत्पादन होगा, रोजगार की मात्रा उतनी ही अधिक होगी और जितना कम उत्पादन होगा, रोजगार की मात्रा भी उतनी ही कम होगी । दूसरे शब्दों में रोजगार की मात्रा में कमी -वृद्धि उत्पादन की मात्रा में कमी-वृद्धि से सम्बन्धित है । कीन्स ने रोजगार की मात्रा को प्रभावपूर्ण मांग की मात्रा पर आधारित माना है । प्रभावपूर्ण मांग के दो अंग हैं- उपभोग मांग और विनियोग मांग । चूंकि रोजगार प्रभावपूर्ण मांग पर निर्भर करता है अतः यह स्पष्ट है कि प्रभावपूर्ण मांग की कमी से ही बेरोजगारी उत्पन्न होती है और यदि बेरोजगारी का उपचार करना है तो प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि की जानी चाहिए।

प्रभावपूर्ण मांग कुल मांग क्रिया तथा कुलपूर्ति क्रिया द्वारा निर्धारित होती है । जिस प्रकार मार्शल के विश्लेषण में पूर्ति एवं मांग की बाजार शक्तियों से कीमत का निर्धारण होता है, ठीक उसी प्रकार से कीन्सियन

विश्लेषण में प्रभावपूर्ण मांग का निर्धारण कुल मांग एवं कुल पूर्ति की शक्तियों से किया जाता है । कुल मांग क्रिया द्रव्य की उन भिन्न-भिन्न राशियों की अनुसूची की बिक्री से प्राप्त होने की आशा रहती है । यह वह कुल प्राप्ति होती है जिसे सभी उद्यमी मिलकर अपने उत्पादन की बिक्री से प्राप्त होने की आशा करते हैं । इसके विपरीत, कुल पूर्ति क्रिया किसी अर्थव्यवस्था में, उद्यमियों की कुल लागतों का और कुल मांग क्रिया उनकी कुल प्राप्तियों का प्रतिनिधित्व करती है । यदि रोजगार के किसी विशेष स्तर पर उद्यमियों को यह पता लगता है कि लागत की अपेक्षा उनकी प्राप्तियां कम हैं तो वे उत्पादन को स्थगित करके मजदूरों को काम देने से इन्कार कर देंगे, फलस्वरूप बेरोजगारी बढ़ जायेगी । कहने की आवश्यकता नहीं कि जब तक लागतें प्राप्तियों से कम रहती हैं उद्यमी उत्पादन बढ़ाकर रोजगार में वृद्धि करते चले जाते हैं। यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक लागत और प्राप्तियां समान नहीं हो जातीं । स्मरणीय है कि यदि लागतें प्राप्तियों से अधिक हो जाती हैं तो उद्यमी किसी भी दशा में मजदूरों को काम पर नहीं लगायेगा और बेरोजगारी की मात्रा में वृद्धि हो जायेगी ।

प्रभावपूर्ण मांग का निर्धारण अधोलिखित चित्र द्वारा प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है । चित्र अगले पृष्ठ पर अंकित किया गया है । रेखा-चित्र में कुल मांग क्रिया को ए डी वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है अर्थात यह वक्र उद्यमियों की कुल प्राप्तियों को प्रकट करता है जिनकी वे रोजगार के विभिन्न स्तरों पर कल्पना करते हैं । ए एस वक्र कुल पूर्ति क्रिया को प्रकट करता है अर्थात यह वक्र उद्यमियों की कुल लागत को प्रदर्शित करता है जिनका रोजगार के भिन्न-भिन्न स्तरों पर उद्यमियों द्वारा प्राप्त कर लेना अनिवार्य है । दोनों वक्र एक दूसरे को एन बिन्दु पर काटते हैं । यही बिन्दु कुल मांग


Y
S
N''
N
D
M'
N'
A
M
A
(मजदूरी और लागत)
O
P'
P
P''
X
(रोजगार)

क्रिया और कुल पूर्ति क्रिया का सन्तुलित विन्दु है ।

कीन्स ने अपने सामान्य सिद्धान्त में दोनों शक्तियों में से कुल पूर्ति क्रिया पर अधिक ध्यान नहीं दिया । वे पूर्ति क्रिया को स्थिर मानते हैं क्योंकि उनका मत है कि अल्पकाल में पूर्ति क्रिया स्थिर रहती है । कीन्स के अनुसार लागतों में अल्पकाल के अन्तर्गत फेर-बदल नहीं की जा सकती । यदि युक्तीकरण और औद्योगीकरण के द्वारा लागतों में फेर-बदल की जाती है तो बेरोजगारी घटने के बजाय बढ़ जाती है । इसी कारण कीन्स ने कुल पूर्ति क्रिया को अछूता ही छोड़ दिया । भारतीय परिस्थितियों में इस प्रकार का विचार प्रासंगिक प्रतीत होता है। भारत की वर्तमान बेरोजगारी के प्रसंग में युक्तिकरण की बात कीन्सियन विश्लेषण की दृष्टि से असंगत होगी।

कीन्स का रोजगार सिद्धान्त और भारत एवं अन्य विकासशील देश

कीन्स के रोजगार सिद्धान्त का उपयोग ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों तक ही सीमित है । यह प्रणाली सार्वभौम रूप से लागू नहीं होती । जे०ए० शुम्पीटर ने कीन्स के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए लिखा है कि व्यावहारिक कीन्सवाद एक ऐसा पौधा है जो विदेशी भूमि में ही फल-फूल सकता है । यदि इस पौधे को अन्यत्र लगाया जाता है तो यह वहां सूख जाता है और विषाक्त भी हो जाता है ।[1]

1-जे०ए०शुम्पीटर-टेन ग्रेट इकोनामिस्ट, पृ०-275.

कीन्स ने अपने रोजगार सिद्धान्त को व्यापार चक्र की मन्दी की अवस्था में उत्पन्न बेरोजगारी तक ही सीमित रखा है । इसलिए इसे मंदी का अर्थशास्त्र भी कहा जाता है । प्रभावपूर्ण माँग की कमी के कारण ही व्यापार की यह मन्दी उत्पन्न होती है जब कि देश की राष्ट्रीय उत्पादन क्षमता बढ़ रही होती है । अर्द्धविकसित अथवा विकासशील देशों की बेरोजगारी से भिन्न होती है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि अर्द्धविकसित देशों में चक्रीय बेरोजगारी होती ही नहीं । ऐसे देशों में अधिकांश में चिर कालीन बेरोजगारी होती है जिसका प्रभावपूर्ण माँग की कमी कारण न होकर पूँजीसाधनों की कमी है । अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते समय कीन्स ने अर्द्धविकसित देशों की उपेक्षा की है और उनकी बेरोजगारी की समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया ।[1] विकसित देशों की समस्या आर्थिक अस्थिरता को नियंत्रित करने की होती है अर्थात उन्हें व्यावसायिक उतार-चढ़ावों का नियमन एवं नियंत्रण करना पड़ता है । कीन्स ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन मुख्य रूप से इसी अस्थिरता को ध्यान में रखकर किया है ।

कीन्स के रोजगार सिद्धान्त का प्रयोग भारत में कहाँ तक सम्भव है ? इस सम्बन्ध में सारांश रूप में प्रो0दास गुप्ता का कथन है कि कीन्स ने अपने ग्रन्थ सामान्य सिद्धान्त में "सामान्य" शब्द की "सामान्यता" का अर्थ चाहे जो भी लिया हो, उसमें प्रतिपादित सिद्धान्तों के प्रयोग का क्षेत्र अर्द्धविकसित देशों में अति सीमित है ।[2] फिर भी प्रो0दास गुप्ता ने स्वीकार किया है

1- फिलिप कोटनी- द फिलासफी आफ लार्ड कीन्स, पृ0-209

2- कीन्सियन इकोनामिक्स इन अण्डरडेवलप्ड कन्ट्रीज-बी0वी0सिंह, पृ0-15।

कि कीन्सियन सिद्धान्त भारतीय अर्थव्यवस्था के उस छोटे एवं सीमित संगठित क्षेत्र में लागू हो सकता है जिसमें पश्चिमी देशों की सभी विशेषताएं विद्यमान हैं किन्तु उक्त क्षेत्र का हमारी अर्थव्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है, क्योंकि जहां तक रोजगार की मात्रा का सम्बन्ध है, उस क्षेत्र का अंशदान लगभग नगण्य है । यद्यपि राष्ट्रीय आय में इसका योगदान निश्चय ही उल्लेखनीय है । ऐसी स्थिति में रोजगार वृद्धि एवं उच्च जीवन स्तर की प्राप्ति के लिए अर्द्धविकसित देशों को बढ़े हुए अवसरों की प्राप्ति के लिए बड़े पैमाने पर सरकारी निवेश करना चाहिए ।

डा0वी0के0आर0वी0 राव का कथन है कि प्रो0कीन्स ने पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए घाटे के बजट एवं उपभोग व्यय के समर्थन सहित जिस आर्थिक नीति का प्रतिपादन किया है वह अर्द्धविकसित देशों में लागू नहीं होता है । प्रो0 राव के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में उत्पादन का पूर्ति वक्र बेलोचदार होता है और ऐसी अर्थव्यवस्था के घाटे के बजट से स्फीतिकारी शक्तियों का प्रबल होना अनिवार्य ही है । प्रो0 राव कीन्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के अधिकाधिक प्रयोग के पक्ष में न थे और अर्द्धविकसित देशों में आर्थिक विकास के उस नीति को अपनाना अधिक उपयुक्त होगा जिसे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने प्रतिपादित किया था ।

उपर्युक्त विचारों के अन्तर्गत अर्द्धविकसित देशों की आर्थिक समस्या मुख्य रूप से वित्तीय है । इसके विपरीत डा0मौरिस[1] डाब एक अन्य वैकल्पिक

1-डा0मौरिस डाब-सम आस्पेक्ट्स आफ इकोनामिक डेवलपमेन्ट, पृ0-13

उपाय को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि अर्द्ध विकसित देशों का विकास आवश्यक रूप से आर्थिक संगठन का ही विषय है यदि लोग आर्थिक विकास और रोजगार की वृद्धि के लिए कृत संकल्प हैं तो इनको एक ऐसी विधि द्वारा प्राप्त किया जा सकता है जिसमें न तो विदेशी पूंजी, न घाटे के बजट और न ही घरेलू उपभोग की कटौती की आवश्यकता पड़ती है। इस विधि का सारांश यह है कि अर्द्धविकसित देशों की गुप्त बेरोजगारी में निहित शक्तियों एवं अतिरिक्त कृषि श्रम को गतिशील बनाकर पूंजी संचय किया जाय। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार लोगों को, जो गुप्त बेरोजगारी के शिकार होते हैं, बड़े पैमाने पर किये जाने वाले सार्वजनिक निर्माण कार्यों में लगाया जाय। इससे स्वभावतः ही देश में बिक्री योग्य अतिरिक्त उत्पादन बढ़ जायेगा तथा उसका उपयोग विदेशों से पूंजीगत वस्तुओं एवं शक्ति उत्पादक यंत्रों के आयात के लिए किया जायेगा। यहाँ यह उल्लेख्य है कि साम्यवादी चीन ने यही मार्ग अपनाया और अब वह आर्थिक संवृद्धि एवं बढ़ते हुए रोजगार के मार्ग पर अग्रसर है।

यहाँ एक तथ्य यह भी उल्लेखनीय है कि कीन्स द्वारा प्रतिपादित रोजगार सिद्धान्त साम्यवादी देशों में कहाँ तक लागू होता है ? यदि साम्यवाद पनपता है तो कीन्स का अस्तित्व उसी प्रकार समाप्त हो जायेगा जिस प्रकार से रिकार्डो का हुआ। इस कथन का आशय यह है कि कीन्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रयोग साम्यवादी देशों में हो ही नहीं सकता। कीन्स का किसी ऐसी अर्थव्यवस्था में दखल नहीं है जिसमें निजी व्यवसाय का अन्त करके सभी उद्योगों को सरकार अपने स्वामित्व में ले लेती है। निवेश की अस्थिरता निजी व्यवसाय की अर्थव्यवस्था का प्रतीक होती है क्योंकि निवेश सम्बन्धी निर्णय उद्यमियों के उस समूह द्वारा लिये जाते हैं जो विशुद्धतः लाभ उद्देश्य से ही प्रेरित होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण

कीन्सियन रोजगार सिद्धान्त का उद्देश्य इन अस्थिर तत्वों को स्थिर बनाना होता है । इसका अर्थ है कि राजकोषीय एवं मौद्रिक उपायों को अपना कर निवेशीय उतार-चढ़ावों को नियंत्रित किया जाता है । कीन्स का मत है कि मन्दीकाल में सस्ती मुद्रा नीति ही निजी निवेशकों को अधिक निवेश के लिए प्रेरित करती है ।

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि कीन्स के सिद्धान्तों एवं विश्लेषणों का प्रयोग केवल उन्हीं देशों में किया जा सकता है जो अपेक्षाकृत अधिक विकसित, धनी तथा औद्योगिक दृष्टि से उन्नत होते हैं और जिनमें निजी व्यवसाय आज भी बड़े पैमाने पर प्रचलित है । कीन्स के सिद्धान्तों को भारतीय परिप्रेक्ष्य में पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह सिद्धान्त विकसित देशों की बेरोजगारी समस्या के सन्दर्भ में तैयार किया गया था । कीन्स के सिद्धान्तों पर उस पर्यावरण का व्यापक प्रभाव पड़ा है जिसमें कीन्स ने उन्हें तैयार किया । अत: ये सिद्धान्त केवल उन्हीं परिस्थितियों में फलीभूत हो सकते हैं जिनमें कीन्स ने इन्हें प्रतिपादित किया। कीन्स के सिद्धान्तों के कुछ उपकरणों को औजार के रूप में आर्थिक विकास के सन्दर्भ में ही विकासशील देश अपना सकते हैं । इसका अर्थ यह नहीं है कि कीन्स का सिद्धान्त बिल्कुल अप्रासंगिक और अनुपयुक्त है बल्कि सत्यता तो यह है कि कीन्स का सिद्धान्त उन परिस्थितियों में पूर्ण रूप से प्रभावी सिद्ध होता है जिन परिस्थितियों के अन्तर्गत यह प्रतिपादित किया गया है ।

अध्याय-3

मानव पूंजी और आर्थिक विकास

मानव पूंजी और आर्थिक विकास

आर्थिक विकास में मानव पूंजी के योगदान को विश्व के समस्त अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार किया गया है । यदि किसी देश में जनशक्ति संगठित, सचेष्ट व सक्रिय हो तो विरल प्राकृतिक सम्पदा होने पर भी वहां वांछित दर से विकास करना सम्भव होता है । इसी क्रम में गांधी जी का कथन द्रष्टव्य है । गांधी जी ने कहा था कि जनसंख्या एक मुंह और दो हाथ लेकर पैदा होती है । इसका अर्थ यह है कि जनसंख्या अपने उपभोग से ज्यादा उत्पादन कर सकती है । लेकिन यदि श्रम शक्ति दुर्बल, निष्क्रिय, विश्रृंखल और अकुशल हो तो आर्थिक जड़ता बनी रहती है । जनसंख्या उत्पादन का साध्य एवं साधन दोनों है । जहां तक मानव पूंजी के परिमाण का प्रश्न है, किसी भी देश के अर्थतंत्र के स्वतंत्र ,सतत एवं समग्र विकास के लिए मानव पूंजी की अभीष्ट मात्रा आवश्यक है । मानव ही अपनी बौद्धिक और शारीरिक शक्ति के द्वारा प्राकृतिक साधनों का उचित शोषण कर सकता है । नये परिवर्तनों तथा स्रोतों के द्वारा उत्पादन प्रक्रिया को संवारने , सजाने तथा आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करने का कार्य मानव ही करता है ।

फ्रेडरिक हेरिसन एवं चार्ल्स ए० मेयर के अनुसार - " मानवीय साधनों का विकास ज्ञान,योग्यता व समाज के व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने वाली एक प्रक्रिया है । आर्थिक अर्थों में यह कहा जा सकता है कि यह मानवीय पूंजी संचय है जिसका जनसंख्या के विकास में प्रभावशाली विनियोग किया जाता है । राजनैतिक अर्थों में मानवीय साधन विशेषकर जनतंत्रीय राज्य के नागरिकों

राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने, को तैयार करता है । सामाजिक व कार्मिक अर्थों में - मानवीय साधनों के विकास से जनता को उच्च जीवन स्तर प्राप्त करने में सफलता मिलती है जिसमें परम्परा का कम महत्व हो ।"[1]

स्पेंगलर एवं डंकन के अनुसार- " यदि कोई राष्ट्र मानवीय साधनों का विकास करने में असमर्थ है तो वह दूसरे क्षेत्रों में भी अधिक विकास नहीं कर सकता, चाहे राजनैतिक और सामाजिक ढांचा हो या राष्ट्रीय एकता या आर्थिक कल्याण का उच्चतर स्तर ही क्यों न हो ।"[2]

मानव पूंजी और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण सह-सम्बन्ध होता है । विकास, जनसंख्या की जन्म व मृत्यु दरों में जीवन काल या आय में, जनसंख्या की संरचना दर, जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण,घनत्व आदि पर प्रभाव डालता है । उसी तरह जनसंख्या के शिक्षा,स्वास्थ्य के स्तर,उन्नत तकनीकी के प्रति मनोवृत्ति,परिवार नियोजन के प्रति मनोवृत्ति,जन्म व मृत्यु दर आदि का, पूंजी निर्माण,विनियोजन,तकनीकी आदि का राष्ट्रीय आय या विकास पर महत्वपूर्ण असर होता है ।

मानव पूंजी और आर्थिक विकास का यह सह-सम्बन्ध सदैव धनात्मक ही नहीं होता । ऐसी भी स्थिति देखने को मिलती है कि विकास की दर अधिक होने पर भी जन्म-दर में परिवर्तन नहीं आता या कई ऐसे विकसित देश

1-फ्रेडरिक हैरिसन एवं चार्ल्स ए०मेयर - एजूकेशन, मेन पावर एण्ड इकोनामिक ग्रोथ, लन्दन,1964,पृ०-2.

2-वही,पृ०-13.

हैं, जहाँ जनसंख्या वृद्धि दर, कम विकसित देशों से कम होते हुए भी विकास की दर कहीं अधिक है ।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि जनसंख्या विकास का एक घटक है और यह विकास में सहायक व बाधक दोनों हो सकती है । लेकिन विकसित या विकासशील देशों की पृष्ठभूमि में जनसंख्या व आर्थिक विकास के सम्बन्ध में पर्याप्त अन्तर हो जाता है ।

विकसित देशों में आर्थिक विकास और जनसंख्या वृद्धि साथ-साथ होती है, क्योंकि इन अर्थव्यवस्थाओं के विकास का कारण सक्रिय जनसंख्या वृद्धि रही है । जनसंख्या वृद्धि ने इन देशों के आर्थिक विकास को उत्पादन के विकास और वृद्धि के लिए आवश्यक श्रम प्रदान किया है । देश में उत्पादित वस्तुओं की माँग में वृद्धि की है और इस प्रकार बाजार के विस्तार में सहायता दी है । परोक्ष रूप से जनसंख्या ने पूंजी निर्माण में भी योगदान दिया है । 19वीं शताब्दी में पश्चिमी देशों की प्रगति जनसंख्या वृद्धि से इतनी अधिक प्रभावित हुई कि माल्थस व रिकार्डो के जनसंख्या अनुमान झूठे सिद्धान्त हो गये । प्रो० हैन्सन जनसंख्या वृद्धि को आर्थिक विकास की पूर्ण आवश्यकता मानते हैं । प्रो० लेविस ने अपने एक मॉडल द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ऐसी अर्थव्यवस्था में जिसमें एक ओर पूंजीवादी क्षेत्र को विकसित किया जाय तो दूसरा क्षेत्र स्वतः विकसित हो जायेगा । परिणामतः पूंजीवादी क्षेत्र जीवन निर्वाह क्षेत्र से अधिक श्रम, ऊँची मजदूरी दर पर आकर्षित करेगा । अतः स्पष्ट है कि विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास में सहायक है ।

1- बियर्ड- द पापुलेशन आब्सटेकिल आफ इकोनामिक डेवलपमेण्ट ।

गिल के अनुसार- जनसंख्या में वृद्धि आर्थिक विकास में सहायक भी हो सकती है एवं बाधक भी । यह इस बात पर निर्भर करता है कि कब, कहाँ और कैसे वृद्धि हो रही है ? इसको स्पष्ट करने के लिए गिल ने आर्थिक विकास का सहारा लिया है । उनका कहना है कि 18वीं और 19वीं शताब्दी में विश्व में बहुत बड़ा क्षेत्र मानव आवास के लिए खाली था । इस अवधि में जनसंख्या वृद्धि ने आर्थिक विकास को उत्तेजित किया अर्थात आर्थिक विकास में इस अवधि में होने वाली जनसंख्या वृद्धि ने धनात्मक कारक के रूप में सहायता प्रदान की।[1] वर्तमान समय में भारत में स्थिति ठीक इसके विपरीत है ।

विश्व में आर्थिक विकास की दृष्टि से समृद्धशाली देशों ने विगत दो शताब्दियों से जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ मृत्यु दर में कमी हुई है जो आर्थिक विकास से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है । आर्थिक विकास ने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाया है, अच्छे आहार की व्यवस्था की है, पर्याप्त रूप में वस्त्र एवं आवासीय सुविधा प्रदान किया है । साथ ही प्राकृतिक बीमारियों, अकाल व सूखा से रक्षा भी की है । सामान्य रूप में यह कहा जा सकता है कि यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका में आधुनिक काल में हुई जनसंख्या वृद्धि ने लोगों के रहन-सहन को उच्च किया है एवं औद्योगीकरण में सहायता प्रदान की है ।

दूसरी ओर, दुनिया के विकासशील देशों में आज जनसंख्या विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो गयी है । इन देशों के आर्थिक विकास की गति बहुत मन्द रही है जबकि जनसंख्या वृद्धि बहुत तेजी से हुई है । ये देश पाश्चात्य देशों से उन तकनीकों का आयात तो कर लेते हैं जिनसे बीमारियों इत्यादि पर नियंत्रण

1-गिल, रिचर्ड टी0-इकोनामिक डेवलपमेन्ट-पास्ट एण्ड प्रजेन्ट, पृ0-5-7.

प्राप्त करके मृत्यु दर को घटाया गया है किन्तु रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करने में सफल नहीं हुए हैं।

विकासशील देशों में जनसंख्या और उसके दबाव की विशेषता भिन्न-भिन्न होती है। इन देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर विकसित देशों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। जनसंख्या वृद्धि के कारण अतिरिक्त उत्पादन का अधिकांश भाग बढ़ी हुई जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति में ही प्रयुक्त हो जाता है। इसलिए कठिन परिश्रम के बाद भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं हो पाती। विकासशील देशों में ऊँची जन्म दर आर्थिक विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है। वस्तुस्थिति यह है कि विकासशील देशों की आर्थिक वृद्धि जनसंख्या वृद्धि के अनुपात से नहीं हो पा रही है। ऐसे देशों की अर्थव्यवस्था उस लारी के समान है जो फिसलवां चढ़ाई पर चढ़ रही हो। पहिये घूमते हैं लेकिन लारी एक ही जगह जमी खड़ी रहती है और कभी-कभी तो पीछे भी खिसक जाती है।[1] जनसंख्या वृद्धि से विकास के निर्धारकों का अनुकूल परिवर्तन अवरूद्ध हो जाता है। यही नहीं, यदि जनसंख्या वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय के लगभग होगी तो विकास नगण्य होगा। उदाहरण के लिए यदि प्रति व्यक्ति आय में 2 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हो और जनसंख्या में वृद्धि की दर 2 प्रतिशत वार्षिक हो तो प्रति व्यक्ति आय में वास्तविक वृद्धि 0 प्रतिशत वार्षिक होगी। विकासशील देशों के संदर्भ में जनसंख्या वृद्धि को विकास के अनुरूप नहीं माना जा सकता क्योंकि इन देशों में एक ओर आर्थिक साधनों की न्यूनता है तो दूसरी ओर सामाजिक दशाएं प्रतिकूल हैं। अतः जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास में तभी सहायक सिद्ध हो सकती है, जब

1-कूरियर, यूनेस्को, विश्व जनसंख्या वर्ष 1975-76, वोरिस उरनालिस, निर्णय का क्षण, पृ० - 26-27.

सामाजिक अभिरूचियों तथा सामाजिक मूल्यों में आर्थिक विकास के अनुरूप परिवर्तन हो ।

किसी भी अर्थव्यवस्था में विकास की गति प्रायः जनांकिकी चरों- जनसंख्या का आकार, जनसंख्या बृद्धि दर और आयु संरचना से प्रभावित होती है । जनसंख्या विकास की गति का प्रति व्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभावों के अन्तर्गत कोल एवं हूवर[1] ने इन्हीं कारकों को जिम्मेदार ठहराया है । ये घटक उत्पादन,उपभोग,शुद्ध विनियोग आदि को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करते ही रहते हैं जिससे विकास की गति पर नियंत्रण रहता है । वास्तविक विनियोग की मात्रा किसी भी अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तीव्रतर गति उसी अवस्था में प्रदान कर सकते हैं जब जनसंख्या की विकास दर तथा उसका गुणात्मक एवं परिमाणात्मक दोनों ही पक्ष इसके अनुरूप हो ।

बिहार में बढ़ती हुई जनसंख्या के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति उपलब्ध भूमि की मात्रा में कमी हुई है, कुल कृषित भूमि एवं खाद्यान्नों के प्रति व्यक्ति मात्रा में कमी हुई है । राज्य के कुल 174 लाख हेक्टेयर भौगोलिक क्षेत्र में से 85 लाख अर्थात 48•27 प्रतिशत क्षेत्र में खेती होती है । कृषि का कुल क्षेत्र 116 लाख हेक्टेयर है । इस प्रकार कृषि की सघनता 135 प्रतिशत है । कुल 116 लाख हेक्टेयर में से 104 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में खाद्यान्नों की फसलें बो यी जाती हैं तथा 12 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में अन्य फसलों की खेती की जाती है ।[2]

1-कोल,जे0 अन्सले एवं हूवर,एम0एडगर-पापुलेशन ग्रोथ एण्ड इकोनामिक डेवलपमेण्ट इन लो-इनकम कन्ट्रीज-ए केस स्टडी आफ इण्डियाज प्रास्पेक्ट्स-1958,पृ0-18•

2-उपलब्धियों का वर्ष,1986-87,सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग,बिहार,पृ0-1•

प्रति व्यक्ति बोया गया क्षेत्र केवल 0.14 हेक्टेयर है । यह औसत क्षेत्रीय स्तर पर भिन्न-भिन्न है । उत्तरी बिहार में जनसंख्या की सघनता के कारण प्रति व्यक्ति शुद्ध बोया गया क्षेत्र सबसे न्यूनतम है । दक्षिणी बिहार की समतली एवं पठारी भूमि का स्थान क्रमशः दूसरे और तीसरे नम्बर पर है । कुल कृषि योग्य भूमि का 42 प्रतिशत लघु एवं सीमांत कृषि कर्म करने वालों के बीच उपलब्ध है जबकि उनका प्रतिशत 87 है । इस प्रकार राज्य में भूमि वितरण की असमानता स्वतः स्पष्ट है ।

राज्य में प्रमुख कृषि क्षेत्र तीन हैं - (1) उत्तरी बिहार की समतली भूमि (2) दक्षिण बिहार की समतली भूमि (3) छोटा नागपुर एवं संथाल परगना का पठारी क्षेत्र । इन तीनों क्षेत्रों की मिट्टी, जलवायु, वर्षा की स्थिति फसलोत्पादन के तरीके, वन क्षेत्र एवं सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति बिल्कुल भिन्न है । उत्तरी बिहार की मिट्टी साधारणतः हल्की है तथा भूगर्भ जल स्तर काफी ऊँचा है । उत्तरी-पश्चिमी हिस्से की मिट्टी कलकेरियस होने के साथ-साथ क्षारीय भी है । उत्तरी पूर्वी क्षेत्र की मिट्टी सामान्य से आम्लिक की ओर इंगित करती है । दक्षिण बिहार की समतली क्षेत्र की मिट्टी भारी एवं सामान्य है । ये मिट्टियाँ उपजाऊ हैं और रासायनिक स्तर पर आम्लिक पायी गयी हैं ।

बिहार में बढ़ती हुई जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि यह बचत और विनियोग की क्षमता को घटा देती है, आर्थिक विकास की सबसे बड़ी कसौटी पूँजी निर्माण का पक्ष है । सारे साधनों का उपयोग, प्रदेश की बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण में होता जा रहा है । परिणामतः परिवार एवं राज्य गरीबी की स्थिति में हैं । प्रति व्यक्ति आय इतनी कम है कि इसमें से बचत करके उत्पादकीय कार्यों विनियोग करना कठिन ही प्रतीत

होता है,पूरी आय तो उपभोग में ही खर्च कर दी जाती है, यह आम लोगों की क्रय शक्ति को भी घटा देती है । परिणामस्वरूप प्रभावपूर्ण मांग कम हो जाती है जो अन्य रूपों में उत्पादन को प्रभावित करता है ।

पिछले दो दशकों में प्रदेश के दोनों ही क्षेत्रों- कृषि एवं उद्योग में उल्लेखनीय प्रगति हुई है । यह अनुमान लगाया गया है कि इस अवधि में वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा में लगभग ढाई गुनी वृद्धि हुई, लेकिन प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं हो सकी । इसका कारण जनसंख्या में वृद्धि रही है । एक तरफ तो जनसंख्या में अधिक वृद्धि तथा समाज के एक छोटे वर्ग (समृद्ध वर्ग) में विशिष्ट उपभोग की प्रवृत्ति,ऐसी स्थिति उत्पन्न कर चुकी है कि गरीबी ज्यों की त्यों बनी हुई है । जनसंख्या वृद्धि ने आर्थिक गतिहीनता को नेतृत्व प्रदान किया है - गरीबी एवं लाखों लोगों के निम्न रहन-सहन के स्तर के रूप में ग्रामीण एवं नगरीय दोनों क्षेत्रों में । ऐसी ही स्थिति हमारे देश की भी है । इस सन्दर्भ में आशिश बोस का कथन है कि भारत में पुनरोत्पादक पैटर्न,अपव्ययपूर्ण,अनार्थिक एवं देश की सम्पत्ति तथा स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक प्रतिकूल है । इसके अतिरिक्त आकार,घनत्व,विकास की दर एवं जनसंख्या की आयु संरचनाएं सभी आर्थिक विकास में बाधक हैं । हमारी भूमि सीमित है, पूंजी का अभाव है एवं संगठन अकुशल है । प्रचुर प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधन ही आर्थिक विकास नहीं कर सकते, वे केवल आदिम अर्थव्यवस्था को बनाये रख सकते हैं और यही इस समय भारत में घटित हो रहा है ।[1]

1-आशिश बोस- द पापुलेशन प्राब्लम इन इण्डिया-इकोनामिक डेवलपमेण्ट एण्ड कल्चरल चेंज,वाल्यूम-7,पृ0-235- 1959.

बिहार राज्य में जनसंख्या वृद्धि ने आर्थिक विकास को चार प्रकार से प्रभावित किया है :-

(1) इससे भूमि एवं प्राकृतिक साधनों पर दबाव बढ़ा है ।

(2) इससे प्राकृतिक-साधनों का ह्रास हुआ है, लेकिन उत्पादन आशाजनक रूप में नहीं बढ़ सका है ।

(3) इससे बचतें एवं पूँजी निर्माण कम हुई है ।

(4) बहुत सा विनियोग को प्रदेश को यथास्थिति में रखने में निकल जाता है । प्रदेश में न्यूनतम 2 प्रतिशत विकास की दर इसी वृद्धि के कारण आवश्यक हो जाती है ।

ए०सी०बोल्क[1] ने ऐसे चार कारक सुझाये हैं जिनसे जनसंख्या एवं आर्थिक विकास के सम्बन्ध व प्रभावों को स्पष्ट किया जा सकता है । ये कारक अधोलिखित हैं :-

1- जनसंख्या व पूँजी निर्माण

2- जनसंख्या व प्रति व्यक्ति ,राष्ट्रीय आय

3- जनसंख्या व विनियोग तथा तकनीकी

4- जनसंख्या में वृद्धि हो, स्थिर हो अथवा घटे ।

उपर्युक्त चार घटक ऐसे हैं जिनको बिहार के संदर्भ में विवेचित किया जाय तो समस्या मूलभूत रूप में उभर आती है ।

1-बोल्क,ए०बी०-दि पापुलेशन प्राब्लम सिंस द वर्ल्ड वार फर्स्ट ,पृ०-12.

जनसंख्या व पूंजी निर्माण

किसी भी अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण को राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है । जिस देश में जितना ही अधिक पूंजी - निर्माण होगा उस देश में उतना ही अधिक उच्च स्तर जनसंख्या को दिया जा सकता है । अधिक पूंजी निर्माण से जो विकास होता है वह स्वयं ही जन्म-दर को घटा देता है और जनसंख्या वृद्धि में कमी आने लगती है । जनसंख्या का पूंजीनिर्माण पर क्या प्रभाव होगा अथवा कितनी मात्रामें पूंजी निर्माण की आवश्यकता होगी, यह जन्म व मृत्यु दर की अवस्थाओं पर इस प्रकार निर्भर करता है:-

उंची जन्म-दर व उंची मृत्यु-दर

अधिकांश विकासशील देशों में जन्म व मृत्यु दरें उंची होती हैं । कम आय और निम्न जीवन स्तर, पिछड़ी व कम मात्रा में स्वास्थ्य व शिक्षा सुविधाओं के कारण आय कम होती है । ऐसी स्थिति में पूंजी निर्माण कम होता है । अधिक जनसंख्या से प्रति व्यक्ति आय व बचतें कम होती हैं, पिछड़ेपन के कारण बहुत सी बचतें अनार्थिक रूप में रहती हैं या फिजूल खर्चों में उपभोग कर ली जाती हैं । दूसरी ओर एक अल्प पूंजी निर्माण का भी प्रयोग नहीं हो पाता, बहुत से बच्चे जवान होने से पूर्व ही मर जाते हैं और वे उपभोगता के रूप में जीवित रहकर अर्थात बगैर उत्पादनकर्ता बने ही संसार से चले जाते हैं । यह समस्त विनियोग बेकार जाता है । ऐसी अवस्था से निकलने के लिए पूंजी निर्माण अधिक होना चाहिए और जन्म व मृत्यु दरों को नीचे लाना चाहिए ।

उंची जन्म-दर व कम मृत्यु-दर

जब विकासशील देशों में जन्म व मृत्यु दरों को घटाने के प्रयास किये जाते हैं तो पहले मृत्यु दर घट जाती है । स्वास्थ्य सुविधाओं में विस्तार से तो मृत्यु दर शीघ्र गिर जाती है, परन्तु जन्म-दर के नीचे गिरने में समय लगता है । यह समय संक्रमण काल का होता है । इस काल में बहुत अधिक मात्रा में पूंजी निर्माण की जरूरत होती है ।

नीची जन्म-दर व मृत्यु-दर

काफी उन्नति के प्रयास के बाद ही कोई देश इस अवस्था को प्राप्त कर पाता है । इस अवस्था में स्वयं ही अधिक पूंजी निर्माण, विनियोजन व उपभोग सम्भव होता है । यह अवस्था उन्नत देशों में देखी जा सकती है ।

नीची जन्म-दर व उंची मृत्यु -दर अथवा नीची मृत्यु-दर व उससे भी नीची जन्म-दर

ऐसे समाज में पूंजी निर्माण की समस्या पैदा नहीं होती । इस समाज की मुख्य समस्या तो अपनी जाति या जनसंख्या को समाप्त होने से बचाना है । ऐसी स्थिति अत्यन्त दुर्लभ होती है ।

अधिक घनत्व व पूंजी निर्माण

बिहार राज्य में जनसंख्या का घनत्व अधिक है । यहाँ खाद्य सामग्री पैदा करने, ज़मीन की उत्पादकता बढ़ाने, नयी जमीन पाटने व उसमें कृषि की उन्नत व्यवस्था करने, शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाएं बढ़ाने, सामाजिक व आर्थिक सुविधाएं प्रदान करने तथा आवास व उद्योग की सुविधाएं प्रदान करने के लिए अधिकाधिक पूंजी की आवश्यकता होती है ।

बिहार के संदर्भ में विचार का विन्दु यह है कि जनसंख्या उर्वरता (प्रजननता) में किस तरह कमी करके जनसंख्या वृद्धि को रोका जाय, जिससे राज्य में अधिकाधिक पूंजी निर्माण हो सके और उत्पादन के स्तर में वृद्धि की जा सके । उर्वरता (जनसंख्या प्रजननता) में कमी लाने का प्रभाव यह होगा कि प्रति मजदूर पर निर्भरता में कमी होगी और इससे वह अपनी आय का अधिक भाग बचा सकेगा । इस रास्ते पर ही चलकर रूस व अन्य कम्युनिस्ट देश आगे बढ़े हैं ।

कोल एवं हूवर ने स्पष्ट किया है कि किस तरह विक्षेपित 50 प्रतिशत उर्वरता में कमी कुल पूंजी निर्माण को प्रभावित करती है । कुल पूंजी का वह भाग जो उत्पादकता बढ़ाने में प्रयुक्त होता है, प्रति व्यक्ति उपभोक्ता की आय में वृद्धि करता है । इसके अनुसार विनियोग की योजना को दो वर्गों में बांटा जा सकता है (क) वह, जिससे अर्थव्यवस्था का प्रत्यक्ष विकास हो और (ख) वह, जिससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि हो । कल्याणात्मक विनियोग को भी दो वर्गों में रखा जा सकता है -(अ) वे, जो विद्यमान जनसंख्या की वर्तमान आवश्यकता को पूरा करें और (ब) वे, जो अतिरिक्त जनसंख्या की

सुविधाओं के लिए किया जाय । ऊँची उर्वरता की दर 40 व्यक्ति प्रति हजार के साथ, अतिरिक्त जनसंख्या के लिए भोजन व्यय का 25 प्रतिशत खर्च हो जाता है । यदि प्रजननता में 50 प्रतिशत कमी अगले 10 वर्षों में हो जाय तो यह अनुपात नीचे चला जायेगा । इसके अतिरिक्त श्रमिक वर्ग का प्रतिशत कुल जनसंख्या में वर्तमान 40 प्रतिशत से बढ़कर 1986 तक 45 प्रतिशत हो गया । यदि दूसरी तरफ जनसंख्या में वृद्धि वर्तमान दर से होती रही तो जनसंख्या में श्रम शक्ति का अनुपात 40 प्रतिशत से घटकर 37 प्रतिशत रह जायेगा, क्योंकि निर्भर जनसंख्या का अनुपात बढ़ेगा ।[1]

मुख्य बात यह है कि इस प्रदेश में जनांकिकी अस्थिरता में आर्थिक विनियोजन इस तरह से हो कि वर्तमान उपभोग से साधनों को भविष्य की उत्पादकता में वृद्धि में विकेन्द्रित किया जा सके अर्थात् शुद्ध विनियोगकी सुविधाओं के साथ ही शिक्षा एवं प्रशिक्षण जो कि आर्थिक विकास की कसौटी है, बढ़ाया जाय । साधनों का संवर्द्धन भी उत्पादकीय कार्यों में किया जाय ।

यदि जनसंख्या उर्वरता में कोई कमी नहीं होती तो इसमें भारी वृद्धि जारी रहती है । यहाँ वृद्धि का तात्पर्य निर्भर जनसंख्या में वृद्धि से है । जनसंख्या उर्वरता में कमी लाये बिना आर्थिक विकास के वांछित दर को प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि पूंजी का अधिकांश भाग उपभोग पदार्थों पर ही व्यय हो जायेगा एवं उत्पादकता में वृद्धि हेतु पूंजी का

1- कोल एवं हूवर - पूर्वोक्त ग्रन्थ- पृ०- 27।

अत्यन्त अल्प अंश ही विनियोजित किया जा सकेगा । कोल[1] का कथन है कि ऊंची प्रजननता निजी बचतों को दो रूपों में दबाती है अथवा नीचे गिराती है :-

(1) व्यक्तिगत परिवारों द्वारा बचतों की मात्रा में कमी जब ये बचतें राष्ट्रीय समग्र का महत्वपूर्ण अंश न हों ।

(2) राष्ट्रीय आय के अनुपातों में वृद्धि जिससे बचत न करने वालों की संख्या में वृद्धि हो, यदि उपभोग के स्तर की भूमिका, कम आय वाले परिवारों की आय के निर्धारण में हो ।

उच्च उर्वरता विनियोग के स्तर को प्रभावित करती है । इसके प्रभाव से सरकार करों में वृद्धि कर देती है जिससे मुद्रा बढ़ायी जा सके । इससे स्पष्ट है कि जनसंख्या उर्वरता की नीची दर से शुद्ध विनियोग के ऊँचे स्तर को प्राप्त किया जा सकता है । उर्वरता में कमी का प्रभाव तुरन्त जनसंख्या की प्रथम सीढ़ी पर पड़ता है- बच्चों की निर्भरता का भार कम हो जाता है, दीर्घकाल में यह आर्थिक रूप से क्रियाशील जनसंख्या में वृद्धि करती है, फलतः उत्पादन में वृद्धि होती है तथा पूंजी निर्माण में विनियोग द्वारा क्रमिक वृद्धि होती है । वर्तमान उपभोग में नहीं, अपितु भविष्य की उत्पादकता में वृद्धि होती है । प्रदेश की बेकारी व अर्द्ध बेकारी की समस्या कम उत्पादकता का ही परिणाम है । व्यापक गरीबी को दूर करने के लिए जनसंख्या उर्वरता

1- कोल एवं हूवर - पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृ0-54.

में कमी एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रदेश में विनियोजन का होना अनिवार्य है । साथ ही यह भी आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि उसी दर पर हो, जिस दर पर जनसंख्या बढ़ रही हो जिससे वास्तविक प्रति व्यक्ति आय को बनाये रखा जा सके । जार्ज सी०ज्यदन[1] ने प्रति व्यक्ति आय को स्थिर रखने के लिए कुल राष्ट्रीय उत्पाद के कितने अंश का विनियोग हो, अनुमान लगाया है, विकसित देशों में इस उद्देश्य के लिए कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 5 प्रतिशत से भी कम अंश लिया जाता है- विकासशील देशों जैसे - भारत,कोलम्बिया, मोरक्को,ब्राजील एवं ट्यूनिशिया में 10 प्रतिशत से भी ऊपर । भारत में जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान दर 2·5 प्रतिशत वार्षिक है, प्रति व्यक्ति वास्तविक आय को स्थिर रखने के लिए राष्ट्रीय आय में 2·5 प्रतिशत वृद्धि वार्षिक होनी चाहिए । इसको प्राप्त करने के लिए पूंजी निर्माण आवश्यक है ।

यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि हमारे देश की स्थिति भी प्रदेश की ही तरह है । यहाँ मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या स्वयं मनुष्य है । एस०एन०अग्रवाल[2] ने मत व्यक्त किया है कि भारत की वर्तमान जनसंख्या अगले तीस वर्षों में दुगुनी हो जायेगी । इसका प्रभाव अर्थव्यवस्था पर क्या होगा,इन्हीं के शब्दों में एक अनुमान के अनुसार भारत में 15-20 मिलियन

1-जार्ज,सी०ज्यदन-पापुलेशन एण्ड इकोनामिक ग्रोथ,मार्च,1989

2-एस०एन० अग्रवाल- मेक स्टरलाइजेशन कम्पल्सरी नाउ - द इल्यूस्ट्रेटेड वीकली आफ इण्डिया, फरवरी 22-28,1976,पृ०-6·

लोग बेकार हैं और करीब 65 मिलियन विद्यालय जाने योग्य बच्चे विद्यालय नहीं जाते। प्रति व्यक्ति आहार के उपभोग में वृद्धि नहीं हुई है एवं करीब एक मिलियन आवासों की कमी है। यह अनुमान लगाया गया है कि 13 मिलियन लोग प्रतिवर्ष हमारी जनसंख्या में जुड़ जाते हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि एक तरफ तो हमारे उत्पादन क्षमता की मात्रा में वृद्धि हो, जिससे अधिक जनसंख्या का जीवन यापन हो सके, जो पूंजी निर्माण द्वारा ही सम्भव है। दूसरी ओर प्रजननता की दर को कम किया जाय, जिससे अतिरिक्त जनसंख्या का फैलाव रुक सके एवं जनसंख्या वृद्धि को निम्न स्तर पर स्थिर किया जा सके।

जनसंख्या तथा प्रति व्यक्ति आय व आर्थिक स्थिति

जनसंख्या में परिवर्तन से प्रति व्यक्ति आय व आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर निश्चितता से कुछ कहा नहीं जा सकता। इसमें पाया जाने वाला सह-सम्बन्ध जटिल है। वास्तव में जनसंख्या परिवर्तन से दूसरे घटकों में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष परिवर्तन होते हैं और इससे भी पुनः जनसंख्या प्रभावित होती है। यदि जनसंख्या का अनुपात अन्य उत्पादकीय अंगों के मुकाबले बढ़ता है और अन्य बातें यदि समान रहें तो प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन व आय घट जायेगी। इसका मूल कारण यह है कि श्रम, पूंजी तथा संगठन का पूर्ण प्रतिस्थापक नहीं है। विकासशील देशों में पूंजी की मात्रा उतनी ही रहने के कारण जनसंख्या के बढ़ने से हर व्यक्ति के पास पहले

से कम पूंजी रह जाती है । जनसंख्या बढ़ने पर प्रति व्यक्ति उत्पादन पर प्रभाव उस समय अधिक होता है जबकि मुख्य तथा भूमि या बढ़ाये न जा सकने वाले प्राकृतिक साधनों पर निर्भर करता है । जहाँ भूमि व प्राकृतिक साधनों का योगदान कम रहता है, वहाँ जनसंख्या वृद्धि का उत्पादन पर कम बुरा प्रभाव पड़ता है ।

बिहार राज्य में जनसंख्या वृद्धि का प्रति व्यक्ति आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है । यह तीन तरह से प्रति व्यक्ति आय पर प्रभाव डाल रही है :-

(1) भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ रहा है ।
(2) उपभोग वस्तुओं की लागतें बढ़ रही हैं क्योंकि उनकी पूर्ति बढ़ाने के लिए सहयोगी साधनों की दुर्लभता है ।

(3) यह पूंजी संचय दर में कमी कर रही है क्योंकि परिवार में सदस्यों के बढ़ जाने से खर्च में वृद्धि होती जा रही है ।

संयुक्त राष्ट्र संघ का अनुमान है कि किसी भी देश में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर एक प्रतिशत होने पर वहाँ वर्तमान प्रति व्यक्ति आय बनाये रखने के लिए उस देश में 2 से 5 प्रतिशत तक बचतें आवश्यक हैं । बिहार में जनसंख्या वृद्धि दर लगभग 2 प्रतिशत है इसलिए वर्तमान आर्थिक स्तर बनाये रखने के लिए 12 प्रतिशत बचतों की आवश्यकता होगी । इस प्रदेश के आर्थिक विकास के स्पष्टीकरण के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि यहाँ की आर्थिक स्थिति को देखा जाय । हम यह जानते हैं कि आर्थिक विकास का सर्वोत्तम सूचकांक घरेलू उत्पादन है । विकास की दर का मापक आधार वर्ष

पर आधारित राज्य के घरेलू उत्पाद के वार्षिक उतार-चढ़ाव से देखा जा सकता है । इस आधार पर वार्षिक वृद्धि दर लगभग 15 प्रतिशत है ।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक अनुमान लगाया है कि अगर देश की प्रति व्यक्ति आय 100 डालर से कम है तो वह अत्यधिक गरीब है । इस दृष्टि से हमारे प्रदेश में प्रति व्यक्ति आय 45 डालर एवं देश की प्रति व्यक्ति आय 60 डालर के लगभग आती है । अतः यह स्वतः स्पष्ट है कि यह प्रदेश आर्थिक विकास के क्षेत्र में कितना पीछे है । भारत एवं बिहार की समग्र विकास की दर एवं प्रति व्यक्ति आय (1950-51 से 1980-81 तक) अधोलिखित सारिणी द्वारा देखा जा सकता है:-

सारिणी संख्या-3:1

भारत एवं बिहार में विकास की दरें

(प्रतिशत में)

योजनावधि	सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय/ राज्य आय		प्रति व्यक्ति आय	
	भारत	बिहार	भारत	बिहार
1-प्रथम योजना	3•4	1•7	1•6	01•3
2-द्वितीय योजना	4•0	1•5	1•8	1•5
3-तृतीय योजना	2•2	1•3	0•0	- 0•2
4-वार्षिक योजनाएं	4•0	0•5	1•8	- 0•1
5-चतुर्थ योजना	3•3	2•1	1•1	0•2
6-पांचवीं योजना	3•3	0•5	2•8	2•9

(क्रमशः अगले पृष्ट पर)

7-छठीं योजना	—	0·5	2·8	2·9
8-सातवीं योजना	4·3	2·7	4·8	2·3

सारिणी से स्पष्ट है कि भारतवर्ष की तुलना में बिहार राज्य की प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त दयनीय स्थिति की सूचक है । ऐसी ही स्थिति राष्ट्रीय आय और प्रदेश की आय के सन्दर्भ में भी देखी जा सकती है ।यह इस बात का संकेत है कि राज्य में विकास कार्यों को अभी बहुत दूर तक ले जाना होगा । बिहार राज्य में कार्यरत व्यक्तियों का प्रतिशत 29·68 है जिसमें पुरुषों और महिलाओं का प्रतिशत क्रमशः 49·19 तथा 9·16 प्रतिशत है । ग्रामीण क्षेत्रों में 25·82 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में 30·23 प्रतिशत लोग कार्यरत हैं । जनसंख्या के इतने अल्प भाग का कार्यरत होना ही सम्भवतः प्रति व्यक्ति आय और प्रत्येक दिशा में प्रदेश की निम्न आय का परिणाम है । इसमें वृद्धि किये जाने हेतु सरकार को युद्ध स्तर पर प्रयास करना होगा ।

प्रदेश की कुल जनसंख्या में बच्चों की प्रतिशतता अधिक है । इससे प्रति व्यक्ति आय पर जनसंख्या वृद्धि के प्रतिकूल प्रभाव और भी कठोर होते जा रहे हैं । प्रदेश के कुल उत्पादन में होने वाली प्रत्येक वृद्धि के साथ उपभोक्ताओं की संख्या भी बढ़ती जा रही है जो वास्तव में अनुत्पादक हैं । यह प्रमुख कारक है कि राज्य में जीवन प्रत्याशा भी कम है जिसका सीधा अर्थ है कि पालन-पोषण के लिए बच्चों की संख्या अधिक है और कमाने वालों की संख्या कम जिसके परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय घट जाती है । प्रदेश

के उत्पादन में जो भी वृद्धि होती है, उसे जनसंख्या में हुई वृद्धि शून्य कर देती है। इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय घट जाती है।

बिहार एक कृषि-प्रधान राज्य है, इसमें विनियोग होने पर भी उत्पादन में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। साथ ही साथ जनसंख्या में वृद्धि के प्रभावस्वरूप प्रदेश की प्रति व्यक्ति आय वांछित स्तर तक नहीं उठ पा रही है।

<u>जनसंख्या का रहन-सहन स्तर</u>

बिहार में बढ़ती हुई जनसंख्या व्यक्ति के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयास को निष्फल कर देती है। किसी भी देश में व्यक्ति के रहन-सहन का स्तर कई कारकों से प्रभावित होता है,लेकिन सर्वाधिक प्रमुख कारक प्रदेश के प्राकृतिक संसाधनों एवं औद्योगिक विकास की तुलना में जनसंख्या में अधिक वृद्धि होना है। अधिकांश विकासशील देशों में जिनमें जनसंख्या का आकार बहुत बड़ा है एवं जनसंख्या विकास की दर भी ऊँची है, में व्यक्ति के रहन-सहन का स्तर भी निम्न है। रहन-सहन का स्तर एक मिश्रित अवधारणा है जिसके अन्तर्गत किसी भी समाज में व्यक्ति की आवश्यकताओं की संतुष्टि की योग्यता से हटले[1] ने रहन-सहन के स्तर के के स्पष्टीकरण के लिए एक समीकरण प्रस्तुत किया है-

---

1-हटले- पापुलेशन-क्वांटिटी वर्सेज क्वालिटी, पृ0-213-214.

$$S = \frac{RQ\,(TASt) + ES + Tr + FW}{P}$$

उपरोक्त समीकरण में-

S = रहन-सहन का स्तर

P = व्यक्तियों की संख्या

R = संसाधनों की मात्रा

Q = संसाधनों के प्राकृतिक गुण का कारक

T = प्रशासनिक तकनीकी कारक

A = संसाधन स्थिरता कारक

St = आर्थिक तत्वों की स्केल (देश की सीमा इत्यादि)

Tr = व्यापार के लिए अतिरिक्त संसाधन

W = अपव्यय या प्रयोग की तीव्रता

F = संस्थागत लाभ एवं प्रतिरोध।

परम्परागत एवं आधुनिक संस्कृतियों में भी व्यक्ति रहन-सहन के स्तर को अधिकतम सुविधाओं से जोड़ देते हैं। परम्परागत संस्कृतियों जैसे भारत में एवं बिहार में भी कार्य एक दण्ड के रूप में लिया जाता है, क्षमता या सामर्थ्य के रूप में नहीं। नियम यह था कि उतना ही काम करो, जो जीवित रहने के लिए आवश्यक हो। व्यक्ति कम से कम काम करता था, साथ ही वस्तुओं का उपभोग भी कम करता था। यह प्रवृत्ति आज भी प्रदेश के अधिकांश लोगों में देखने को मिलती है। यद्यपि आधुनिक समाजों में भी जीवन स्तर को अधिकतम सुविधाओं से सम्बन्धित कर दिया गया लेकिन परम्परागत संस्कृतियों के विरोध में आधुनिक समाज में सुविधाओं का तात्पर्य अधिकतम वस्तुओं के उपभोग से है।

रहन-सहन के स्तर को आहार, आवास, मनोरंजन, धार्मिक व अन्य क्रियाओं पर किये गये बजट व्ययों के द्वारा समझा जाता है। यदि पारिवारिक बजट में भोजन पर सर्वाधिक खर्च कर दिया जा रहा है जैसा कि औसत भारतीय परिवारों व इस प्रदेश के औसत परिवारों में है तो बहुत कम धन जीवन की अन्य आवश्यकताओं एवं सामाजिक तथा मनोरंजक क्रियाओं के लिए बच जाता है जो निम्न जीवन स्तर का संकेत है। यद्यपि ऐसे भी कुछ अमौद्रिक कारक हैं, जिनका परिवार के जीवन स्तर में योगदान होता है जो भौतिक मापकों में तो कोई वृद्धि नहीं करते, विश्वसनीय परम्पराओं, आध्यात्मिक गुणों आदि द्वारा उनमें विश्वास व सुरक्षा का भाव पैदा हो जाता है।[1] कुछ ऐसे भी आधारभूत भौतिक आधार हैं जिनसे विभिन्न देशों के व्यक्तियों के रहन-सहन के स्तर की तुलना की जा सकती है। इन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :-

(1) मनुष्य की भौतिक आवश्यताओं के गुणात्मक व संख्यात्मक आधारों पर जैसे भोजन, ताजी हवा, ताजा पानी, आवास, वस्त्र आदि।

(2) मनुष्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं की गुणात्मक एवं संख्यात्मक पक्ष यथा शैक्षिक स्तर, रोजगार के अवसर, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य की सुविधाएं, कार्य की दशाएं, सुरक्षा, यातायात, व्यक्ति की स्वतंत्रता, मनोरंजन, रचनात्मक विकास के अवसर आदि।

1-जान, एच0कोल्व एण्ड एडमण्ड ब्रेस वर्नर- ए स्टडी आफ रूरल सोसाइटी, न्यूयार्क, 1952, पृ0-289.

बिहार में, रहन-सहन के महत्वपूर्ण निश्चायकों में से प्रति व्यक्ति आय एक है। इसलिए जनसंख्या वृद्धि के संदर्भ में प्रति व्यक्ति आय को प्रभावित करने वाले साधन रहन-सहन के स्तर पर भी समान रूप से लागू होते हैं। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या, खाद्य सामग्री, कपड़ों मकानों इत्यादि के लिए मांग बढ़ा देती है परन्तु सहयोगी साधनों जैसे कि कच्चे माल, कुशल श्रम और पूंजी इत्यादि के अभाव के कारण, अल्पकाल में उनकी पूर्ति नहीं बढ़ायी जा सकती। परिणामतः उनकी लागतें तथा कीमत पर भी प्रभाव पड़ता है अर्थात उनकी कीमत बढ़ जाती है जो सर्व साधारण के जीवन की लागत को बढ़ा देती है। इससे रहन-सहन का स्तर जो पहले से ही नीचा है और भी गिर जाता है। दरिद्रता से बच्चों की बड़ी संख्या उपजती है जो दरिद्रता को और भी बढ़ा देती है और दरिद्रता का दुष्चक्र अधिक बच्चे- नीचा रहन-सहन स्तर चलता रहता है।

प्रो० हर्षमैन[1] का कहना है कि जीवन स्तरों पर जनसंख्या द्वारा दबाव से प्रति -दबाव उत्पन्न होगा अर्थात ऐसी सक्रियता उत्पन्न होगी जो समाज के परम्परागत रहन-सहन स्तर को फिर से लाने या उसे बनाये रखने का प्रयास करेगी जो उसकी योग्यता बढ़ायेगी जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण कर सके और अपने आप को विकास के लिए संगठित कर सके।

कोलिन क्लार्क[2] के विचार भी इनसे मिलते हैं। इनके अनुसार

1-ए०ओ०हर्षमैन - द स्ट्रेटजी आफ इकोनामिक डेवलपमेण्ट, पृ०-13
2-कोलिन क्लार्क - पापुलेशन ग्रोथ एण्ड लैण्ड यूज, पृ०-27

जनसंख्या वृद्धि उन समुदायों के लिए आर्थिक कठिनाइयां लाती है जो परम्परागत विधियों में बंधा जीवन व्यतीत करते हैं, परन्तु यही एक शक्ति है जिसमें इतनी सामर्थ्य है कि इस प्रकार के समुदायों से उनके तरीके बदलवा सकती है और दीर्घकाल में उन्हें बहुत अधिक उन्नत तथा उत्पादनकारी समाजों में परिवर्तित कर देती है।

लेकिन कोलिन क्लार्क व हर्समैन का यह विचार बिहार के संदर्भ में तर्क संगत नहीं है, क्योंकि यहाँ तो जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप रहन-रहन का स्तर घट रहा है। बिहार राज्य की सबसे बड़ी समस्या कुपोषण की है जो निम्न जीवन स्तर की ओर संकेत करती है। उचित आहार के अभाव में इस प्रदेश में शिशु-मृत्यु-दर ऊंची है और इसका प्रभाव तो कमजोर, वर्गों में और भी अधिक है। बिहार में पौष्टिक आहार व जनसंख्या उर्वरता में घनिष्ठ सम्बन्ध है। पोषक तत्वों के अभाव में बालकों का मानसिक व शारीरिक स्तर गिर जाता है जो प्रौढ़ावस्था में भी अपनी पूरी क्षमता का उपयोग उत्पादन कार्यों में नहीं कर पाते हैं।

इस प्रदेश में महिलाओं के मातृत्व काल में सन्तुलित आहार की कमी और उस पर शिशुओं द्वारा स्तनपान, मां व शिशु दोनों के ही शारीरिक स्वास्थ्य व विकास में बाधा पहुंचाता है। इससे पुनरोत्पादक काल में तो और भी गंभीर परिणाम निकलते हैं। इसका प्रभाव प्रदेश की उत्पादकता पर पड़ता है जो अन्ततः जीवन स्तर को प्रभावित करती है। बिहार में जीवन स्तर के उच्च होने की प्रवृत्ति तो है लेकिन विकास के दृष्टिकोण से नगण्य ही है।

जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि-व्यक्ति का अनुपात बिगड़ जाता है। भूमि पर जनसंख्या का दबाव अधिक इसलिए बढ़ता है कि भूमि की पूर्ति लोचरहित है। इससे छिपी बेरोजगारी बढ़ जाती है और प्रति व्यक्ति आय और भी घट जाती है। प्रति व्यक्ति निम्न आय, बचत तथा विनियोग की प्रवृत्ति को घटा देती है। परिणामस्वरूप भूमि पर परिष्कृत तकनीकों तथा अन्य सुधारों का प्रयोग नहीं हो सकता है। कृषि क्षेत्र में पूंजी-निर्माण को धक्का लगता है और अर्थव्यवस्था निर्वाह स्तरीय दलदल में धँस जाती है। अतिरिक्त जनसंख्या के लिए भोजन का प्रबन्ध करना गंभीर समस्या बन जाती है क्योंकि खाद्य पदार्थों की बहुत कमी होती है। इनका आयात करना भी पड़ सकता है जिससे भुगतान शेष की कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि कृषि विकास को नगण्य कर देती है।

फूड एण्ड एग्रीकल्चरल आर्गनाइजेशन[1] के अनुसार इस समय विश्व में लगभग एक अरब से अधिक लोग भूखों मर रहे हैं या गंभीर रूप से अर्द्ध पोषित हैं किन्तु बहुत से देशों में कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए भौतिक साधनों और उचित सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसका इनके पास अभाव है। ऐसी स्थिति में इनकी जनसंख्या की समस्या और अधिक विकट हो गयी है।

ह्रासमान प्रतिफल का नियम जनसंख्या की समस्या का केन्द्रीय तत्व है। यह नियम बताता है कि दुनियां के किसी भी क्षेत्र में, भूमि पर काम

1-कूरियर, यूनेस्को, अगस्त-सितम्बर, 1974, विश्व जनसंख्या वर्ष, निर्णय का क्षण, बोरिस उरनालिस, पृ0-28.

करने वालों की संख्या में किसी भी वृद्धि का परिणाम होगा, आहार की मात्रा में आनुपातिक कम वृद्धि ।[1] रासायनिक उर्वरकों के उपयोग, मशीनीकरण और भूमि सुधार के तरीकों से कृषि उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है । लेकिन यह कहना भी गलत न होगा कि बिहार में कोई भी खाद्य समस्या नहीं। बिहार में जनसंख्या वृद्धि खाद्यान्नों की उपलब्धियों को तीन तरह से प्रभावित करती है, जिनको दूर करने के लिए कठिन प्रयास करना होगा :-

(1) तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न पूर्ति की आवश्यकता है और इसके लिए खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि करना है, पर "अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन", "कम बच्चा पैदा करो आन्दोलन" के बिना सफल नहीं हो सकता ।

(2) जनसंख्या की गुणात्मक प्रवृत्ति पर ध्यान देने की आवश्यकता है। आहार में पोषक तत्वों की कमी बनी रही है, जिसे दूर करने की आवश्यकता है ।

(3) लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए एक ओर तो कृषि उत्पादन बढ़ाया जाय और दूसरी ओर प्रदेश में बढ़ती जनसंख्या, उर्वरता की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जाय जिससे जन्मदर में गिरावट आ सके । तभी यह प्रदेश आर्थिक विकास के पथ पर तीव्रता से बढ़ सकता है ।

1- सलमर पाण्डेय- सम प्रिन्सिपुल्स आफ पापुलेशन इकोनामिक्स, पापुलेशन रिव्यू, 1975, पृ0-33.

जनसंख्या तथा श्रम-शक्ति

अर्थव्यवस्था में, श्रम-शक्ति कुल जनसंख्या से कार्यशील जनसंख्या का अनुपात होती है । यदि बिहार में जीवन की औसत प्रत्याशा 50 वर्ष मान लिया जाय तो यह वस्तुतः उन लोगों की संख्या होगी जो 15 से 50 वर्ष के आयु वर्ग में हैं । जनांकिकी संक्रमणकालीन अवस्था के दौरान जन्म-दर अधिक होती है और मृत्यु-दर घटती है । परिणाम यह होता है कि जनसंख्या की अधिक प्रतिशतता 15 वर्ष तक के निम्न आयु वर्ग की होती है जैसा कि वर्तमान समय में यह बिहार में 40 प्रतिशत के लगभग है जब कि श्रम-शक्ति की प्रतिशतता कम है । श्रम शक्ति में बच्चों की प्रतिशतता कम होने के कारण अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ पड़ता है जबकि थोड़ी श्रम-शक्ति का अभिप्राय है कि उत्पादक कार्यों में भाग लेने के लिए अपेक्षाकृत कम व्यक्ति का उपलब्ध होना ।

यदि जन्म दर घटनी शुरू हो जाय तो भी अल्पकाल में उत्पादन कार्यों के लिए उपलब्ध श्रम-शक्ति की संख्या तो उतनी ही रहेगी, पर बच्चों की संख्या घट जायेगी और इसका सीधा प्रभाव यह होगा कि प्रदेश की आय बढ़ेगी क्योंकि उपभोक्ताओं की संख्या कम हो जायेगी । परन्तु यह तभी सम्भव है जब जनांकिकीय संक्रमण अवस्था पार कर ली जाय,यह तब तक सम्भव नहीं जब तक कि बिहार में जनसंख्या उर्वरता पर अंकुश न लगाया जाय ।

आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव

आर्थिक विकास किस तरह जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव डालता है, इस

प्रश्न को कोल एवं हूवर ने इस प्रकार उत्तरित किया है । कोल एवं हूवर के अनुसार -"जनसंख्या के तीन कारकों-जन्म ,मृत्यु एवं देशान्तरण में एक या अधिक का क्रियाशील होना इसे प्रभावित करता है ।"[1]

जनसंख्या बृद्धि का प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त,जो मुख्यतया माल्थस के नाम से जुड़ा हुआ है, के अनुसार आय में होने वाली कोई भी बृद्धि(मुख्यतया गरीब वर्गों में) जन्म दर में बृद्धि की प्रवृत्ति रखती है एवं अधिक निश्चयात्मक एवं शक्ति से मृत्यु-दर में कमी की प्रवृत्ति रखती है ।

आर्थिक विकास का जनसंख्या पर पड़ने वाले प्रभावों की जनांकिकी परिवर्तन या संक्रमण सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है । इस सिद्धान्त के अन्तर्गत किसी भी देश की जनसंख्या को आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है ।

प्रथम अवस्था

आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में लोगों का आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण संकुचित होता है । अनेक आवश्यक सुविधाओं के अभाव में इन क्षेत्रों में जन्म एवं मृत्यु दर ऊंची होती है,अपर्याप्त और असंतुलित भोजन,चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव,गन्दगी,महामारियों के

1- कोल एवं हूवर - पापुलेशन ग्रोथ एण्ड इकोनामिक डेवलपमेण्ट इन लो-इनकम कन्ट्रीज- ए केस स्टडी आफ इण्डियाज़प्रोस्पेक्ट्स,1969,पृ0-9.

कारण इस अवस्था में मृत्यु-दर ऊंची होती है, संकुचित सामाजिक रीति-रिवाजों, धार्मिक कारणों और परिवार नियोजन की सुविधाओं के अभाव के कारण इन देशों में जन्म दर ऊंची रहती है। बच्चे पालन-पोषण का भार, मुख्यतया कृषक परिवारों में महिलाओं के ऊपर रहता है। बच्चों के शिक्षा की लागत न्यूनतम होती है क्योंकि इनको निचले स्तर तक की शिक्षा दी जाती है। बच्चे छोटी अवस्था से ही काम में हाथ बंटाने लगते हैं और मां-बाप के लिए वृद्धावस्था में सुरक्षा का परम्परागत स्रोत हैं। विशेषतः शिशु मृत्यु की ऊंची दर से यह संकेत मिलता है कि अधिक से बच्चे पैदा करके ही उक्त सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है।[1] ऐसे समाज में जनसंख्या वृद्धि दर वास्तव में ऊंची नहीं होती, क्योंकि उच्च जन्म-दर को उच्च-मृत्यु दर संतुलित कर देती है। यह अवस्था अधिक जन-वृद्धि की संभावना की अवस्था है, क्योंकि इसमें वास्तविक वृद्धि कम होती है।

द्वितीय अवस्था

आय के स्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनता अपने भोजन में सुधार करने योग्य हो जाती है। आर्थिक विकास के कारण सर्वांगीण विकास होता है, जिसमें परिवर्तन का सुधार भी समाविष्ट है। परिवर्तन के सुधार के फलस्वरूप खाद्य-संभरण नियमित हो जाता है। इन सब कारणों से मृत्यु-दर कम हो जाती है। इस प्रकार द्वितीय अवस्था में जन्म दर ऊंची रहती है

1-कोल एवं हूवर- पूर्वोक्त ग्रन्थ- पृ0-11।

किन्तु मृत्यु दर में गिरावट आने लगती है । परिणामतः जनसंख्या वृद्धि की गति मन्द पड़ जाती है । मृत्यु दर में कमी के द्वारा प्रथम अवस्था की उच्च जन्म वृद्धि संभावना द्वितीय अवस्था में उच्च वास्तविक वृद्धि बन कर प्रकट होती है । उच्च जन्म दर और घटती हुई मृत्यु दर के परिणामस्वरूप इस अवस्था में परिवार का आकार बड़ा हो जाता है ।

संक्षेप में, इस अवस्था में सरकार और जनता के प्रयत्नों केकारण आर्थिक विकास की गति बढ़ती है । तकनीकी ज्ञान का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ने लगता है । आधुनिक कारखानों की स्थापना होती है । बैंक,परिवहन, शिक्षा,चिकित्सा आदि सुविधाओं में विस्तार होता है । खाद्यान्न उत्पादन बढ़ता है ,मत्यु दर कम हो जाती है और जन्म दर में कोई कमी नहीं आती, क्योंकि मानसिक,सामाजिक और धार्मिक विचारधारा में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं होता है । इस अवस्था को जनसंख्या विस्फोट की अवस्था भी कहते हैं । सम्प्रति बिहार राज्य वर्तमान समय में ऐसी ही अवस्था से गुजर रहा है ।

तृतीय अवस्था

आर्थिक विकास के कारण अर्थव्यवस्था का स्वरूप कृषिक से परिवर्तित होकर औद्योगिक हो जाता है । औद्योगिकरण में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों से औद्योगिक और वाणिज्यिक केन्द्रों की तरफ स्थानान्तरित होने लगती है । शहरी जनसंख्या में वृद्धि और स्त्रियों के लिए घर से बाहर आर्थिक कार्यों में लगाव के फलस्वरूप आर्थिक गतिशीलता की संभावना बढ़ जाती है,जिसे छोटे परिवारों के सहारे भली-भांति प्राप्त किया

जा सकता है । परिणामतः बड़े परिवार की आर्थिक लाभकारिता कम हो जाती है । आर्थिक विकास का एक लक्षण बढ़ता हुआ नगरीकरण है और ग्रामों के विपरीत नगरों में बच्चे अमूल्य निधि नहीं,भार समझे जाते हैं । उचित जीवन स्तर बनाये रखने की चेतना,औद्योगिक अर्थव्यवस्था में परिवार छोटा करने की प्रेरणा देती है ।

इस अवस्था में जन्म एवं मृत्यु दर दोनों ही निम्न स्तर पर होते हैं । आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान से उद्योग प्रधान की ओर बढ़ती है । परिवहन सुविधाओं केकारण लोगों की गतिशीलता बढ़ने लगती है । महिलाओं को भी रोजगार प्राप्त होने लगता है,जीवन स्तर उच्चतम स्तर को छूने लगता है,जिससे उनके मानसिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होता है, बड़े परिवारों की आर्थिक उपयोगिता समाप्त होने लगती है । लोग परिवार नियोजन तथा संतति निग्रह के साधनों का उपयोग करने लगते हैं ।

बिहार की स्थिति के विषय में उपरोक्त आधारों पर यह कहा जा सकता है कि जनांकिकी संक्रमण की द्वितीय अवस्था में प्रवेश कर चुका है । फलतः प्रदेश में मृत्यु दर में गिरावट और जन्म दर में स्थिरता की प्रवृत्ति ने असन्तुलन पैदा कर दिया है । ऐतिहासिक दृष्टि से देखा गया है कि मृत्यु दर का नियंत्रण अपेक्षाकृत सरल है, क्योंकि मृत्यु-दर घटाने के उपाय बाह्य जात होने के कारण जनता उन्हें तत्परतापूर्वक स्वीकार कर लेती है क्योंकि जन्म दर में कमी के लिए अन्तरजात तत्वों को अपनाया या सामाजिक मनोवृत्तियों और प्रथाओं में तथा परिवार के आकार और विवाह आदि के सम्बन्ध में कमी की अपेक्षा इसके लिए अधिक समय अपेक्षित होता है ।

परिणामतः जन्म -दर में कमी विलम्ब से आती है । हमारे देश एवं प्रदेश के लिए यह अवस्था सर्वाधिक संकटमय है । जितनी जिस देश की जनसंख्या अधिक होती उतनी ही मात्रा में उस कम विकसित देश को निम्न जीवन स्तर के फन्दे से निकलने के लिए अधिक मात्रा में आवश्यक न्यूनतम प्रयास करने होंगे ।[1]

जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास, औद्योगीकरण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है । विकास के पथ पर बढ़ने से पूर्व अर्थव्यवस्था में एक स्थिरता होती है क्योंकि उर्वरता की उच्च दर के साथ मृत्यु दर भी ऊँची रहती है । जन्म दर ऊँची होती है, क्योंकि पूर्व औद्योगिक समाज में विवाह कम आयु में एवं सर्वव्यापक रूप में सम्पन्न होता है । आर्थिक आवश्यकताओं के कारण, बच्चे भी काम करना शुरू कर देते हैं, जब तक औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं होती, इनका कार्य पारिवारिक आय में वृद्धि करना होगा जबकि मृत्यु दर ऊँची है । परिवार अधिक बच्चों की इच्छा रखेगा जिससे जीवन-यापन हो सके । पूर्व औद्योगिक समाज की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता शिशु मृत्यु दर का ऊँचा होना है । इन समाजों में मृत्यु दर ऊँची होने से जनसंख्या वृद्धि की कोई समस्या नहीं होती । आर्थिक विकास होने के साथ, लोगों के आहार एवं रहन-सहन के स्तर में सुधार हो जाता है । लोगों के रहन-सहन की दशाओं का ज्ञान हो जाता है, केवल खाद्यान्नों के उत्पादन में ही वृद्धि नहीं होती । आर्थिक विकास होने के साथ, लोगों के आहार एवं रहन-सहन के स्तर में सुधार हो

1-लेबेन्स्टीन, एच0- इकोनामिक बैकवर्डनेस एण्ड इकोनामिक ग्रोथ, पृष्ठ संख्या-151-152.

जाता है । सार्वजनिक स्वास्थ्य के स्तर में भी सुधार हो जाता है । परिणामतः मृत्यु दर में कमी हो जाती है । यह वह अवस्था है, जब मृत्यु-दर में कमी हो जाती है लेकिन जन्म दर पूर्ववत रहती है ।

राज्य में योजनाबद्ध विकास के फलस्वरूप जहाँ एक ओर कृषि उत्पादन में नवीनतम एवं आधुनिक तकनीकों के प्रयोग के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर कृषिगत तकनीकी परिवर्तन का भी कृषि उत्पादकता पर वांछनीय प्रभाव पड़ा है । यद्यपि इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि नवीनतम तकनीकी परिवर्तनों का लाभ मुख्य रूप से बड़े किसानों को ही मिलता है । राज्य में छोटे व सीमान्त किसानों की संख्या अधिक है जो आज भी पूंजीगत वस्तुओं के क्रय करने की असमर्थता के कारण परम्परागत साधनों पर निर्भर हैं। योजनाबद्ध विकास के साथ ही राज्य में औद्योगिक प्रक्रिया भी आरंभ की गयी है,यद्यपि राज्य के निवासियों को इसमें मात्र श्रमिक की ही भूमिका निभाने कोमिल पायी है फिर भी औद्योगीकरण की प्रक्रिया के चलते हुए राज्य में जहाँ एक ओर औद्योगिक गतिशीलता आयी है, वहीं दूसरी ओर प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि दृष्टिगोचर हो रही है । जहाँ तक जनसंख्या वृद्धि और उस पर नियंत्रण का प्रश्न है, वर्तमान समय में जन सामान्य परिवार नियोजन के विभिन्न तरीकों से अवगत हो रहे हैं और परिवार नियोजन के प्रति अपनी रुचि स्पष्ट रूप से प्रदर्शित कर रहे हैं । यद्यपि उनके ऊपर आज भी परम्परागत वातावरण का प्रभाव देखा जा सकता है । इस प्रकार यदि राज्य में प्रत्येक क्षेत्र को देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि राज्य में विकास के कार्य हुए हैं और इससे जनसामान्य लाभान्वित हुआ है,भले ही यह लाभ उन्हें उस सीमा तक न मिल पाया हो जितना कि योजनाबद्ध प्रयास के द्वारा उन्हें मिलना चाहिए ।

अध्याय-4

बेरोजगारी का आकार एवं प्रकृति

बेरोजगारी का आकार एवं प्रकृति

श्रमिकों के रोजगार में सर्वप्रथम समस्या उनकी पूर्ति एवं भर्ती के विषय में उत्पन्न होती है । उद्योगों में जिन विधियों और संगठनों द्वारा श्रमिकों की भर्ती की जाती है उन पर व्यवसाय की सफलता अथवा असफलता एक बड़ी सीमा तक निर्भर करती है । यदि कार्य के अनुसार श्रमिकों को नहीं लगाया जाता तो उत्पादन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा उद्योग की क्षमता घट जाती है । चूंकि श्रमिक अपना गाँव छोड़कर नगर में काम करने को इच्छुक नहीं होते ।अतः इनकी भर्ती के लिए समय-समय पर सुविधाजनक विधियाँ अपनायी जाती हैं । सन् 1896 की प्लेग एवं 1898 की इनफ्लूएन्जा की महामारी के कारण श्रमिकों का अभाव हो गया था । इसका परिणाम यह हुआ कि मालिकों को मजदूरों की भर्ती करने के लिए अच्छे एवं बुरे सभी प्रकार के तरीकों को अपनाना पड़ा और भर्ती मध्यस्थों तथा ठीकेदारों के माध्यम से होने लगी । यह प्रणाली अल्पांश में आज भी देखने को मिलती है हालांकि पिछले कुछ वर्षों से मजदूरों की भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा होने लगी है । इसका कारण यह है कि श्रमिक अब प्रचुर मात्रा में उद्योगों में आने लगे हैं । भारत में श्रमिकों की भर्ती के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है :-

(1) मध्यस्थों द्वारा

जब किसी भी उद्योग में मालिक स्वयं प्रत्यक्ष रूप से श्रम को कार्य पर न लगा कर किसी मध्यस्थ की सहायता लेता है और श्रमिक को काम पर लगाने अथवा हटाने का पूर्ण अधिकार मध्यस्थ को प्राप्त होता है तो इस प्रकार की भर्ती को मध्यस्थों द्वारा भर्ती कहा जाता है।

भर्ती की यह प्रणाली भारत में बहुत अधिक मान्य थी किन्तु अब इसके परिणामों ने लोकमत को इसके प्रतिकूल कर दिया है जिसके कारण यह विधि घृणायुक्त हो गयी है। भारत में यह विधि संगठित तथा असंगठित दोनों ही प्रकार के उद्योगों में अपनायी गयी थी तथा विभिन्न क्षेत्रों में मध्यस्थों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है- जैसे सरदार, मिस्त्री, जोबर, टेण्डल, फोरमैन, मुकदम, चौधरी, कंगनी तथा ठीकेदार आदि। बड़े-बड़े उद्योगों में प्रधान मध्यस्थ और नारी मध्यस्थ भी हैं जिन्हें नायकिन कहते हैं। इनको श्रमजीवियों में से ही चुना जाता है। ऐसे उद्योगों में, जो विदेशी मालिकों के हाथ में थे, जिन्हें भारतीय भाषा नहीं आती थी, वहाँ ये मध्यस्थ और भी शक्तिशाली बन गये थे।

जहाँ तक मध्यस्थों द्वारा भर्ती के गुणों का प्रश्न है वह इस प्रकार से है कि कुछ उद्योग होते हैं जिनके लिए श्रम-शक्ति प्राप्त नहीं हो पाती, जिससे उद्योग की कार्यशीलता में बाधा पड़ती है किन्तु मध्यस्थों की सहायता से ये उद्योग भी सरलतापूर्वक आवश्यकतानुसार श्रम शक्ति प्रदान कर लेते हैं। इस समय भारत में कोयले की खानों में और चाय के बागानों में श्रमिकों की भर्ती के लिए इन मध्यस्थों का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि खानों में श्रमिकों की कमी तो नहीं है परन्तु खान के

अन्दर काम करने वाली स्त्रियों को हटाये जाने के कारण श्रमिकों की माँग बढ़ गयी है जिसे मध्यस्थ ग्रामीण क्षेत्रों से मजदूरों को लाकर पूरा करते हैं। चाय के बागानों में तो काम करने के लिए श्रमिकों की भर्ती में यदि मध्यस्थों की सहायता न ली जाय तो सम्भवतः कोई भी श्रमिक स्वयं अपनी इच्छा से कार्य करने के लिए तैयार नहीं होगा।

इस प्रणाली का दूसरा लाभ यह है कि मध्यस्थों का ग्रामीण क्षेत्रों से सम्बन्ध होने के कारण श्रमिकों की आदतों, व्यवहार एवं रुचियों से पूर्णतः परिचित होते हैं जिससे इन श्रमिकों से उनकी आदतों के अनुरूप ही व्यवहार करके उनको प्रसन्न रखकर उद्योगों में स्थायी श्रमिक बनाया जा सकता है और इस प्रकार उद्योगपति एक बहुत बड़े बोझ से मुक्त हो जाता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल मध्यस्थों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है क्योंकि ये मध्यस्थ श्रमिकों का शोषण करते हैं, परन्तु यह भी सत्य है कि जिन दिनों फैक्टरी प्रथा प्रारम्भ हुई थी उस समय श्रमिकों की उपलब्धता एक कठिन समस्या थी। अतः जिस प्रकार गाँवों में महाजनों को कृषि में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और हम उसे समाप्त नहीं कर पाये हैं, ठीक यही बात इन मध्यस्थों के सन्दर्भ में भी लागू होती है। मध्यस्थों द्वारा भर्ती में जहाँ एक ओर इतने महत्त्वपूर्ण लाभ हैं, वहीं दूसरी ओर इनमें अनेक दोषों को भी देखा जा सकता है और उसे इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :-

(1). बागानों के लिए यह विधि बहुत मँहगी सिद्ध हुई है क्योंकि मध्यस्थ दूर-दूर के प्रान्तों में जाकर ग्रामीण क्षेत्रों से श्रमिकों

को लाते हैं जिनके लाने में भारी व्यय वहन करना पड़ता है और यह बागान मालिकों को ही प्रत्यक्ष रूप से सहन करना पड़ता है और अन्तिम रूप में उपभोक्ता इसे वहन करते हैं ।

(2) मध्यस्थ श्रमिकों को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देकर ,उन्हें ग्रामों में ही कुछ धनराशि अग्रिम रूप में देकर आते हैं,परन्तु बागान मालिकों से ली जाने वाली धनराशि का एक छोटा भाग ही इन श्रमिकों को दिया जाता है और शेष समस्त धनराशि इन मध्यस्थों की जेबों में चला जाता है ।[1]

(3) मध्यस्थ विशेषकर विवाहित श्रमिकों को ही लाने का प्रयास करते हैं जिससे उनके बच्चों तथा औरतों को भी काम पर लगाये जाने में सुविधा हो सके, परन्तु विवाहित श्रमिक न मिलने से वे किसी भी व्यक्ति तथा स्त्री को अनुचित साधनों से ले आते हैं जो एक अनैतिक पक्ष का द्योतक है ।

(4) एक बेरोजगार श्रमिक जो इनकी प्रलोभनों में फंसकर एक बार काम पर आ जाता है, उसे वापस लौटने नहीं दिया जाता है ।

(5) संगठित उद्योगों में रोजगार प्राप्ति के लिए श्रमिकों को मध्यस्थों को रिश्वत देनी पड़ती है और बिना रिश्वत दिये उन्हें रोजगार मिल पाना कठिन होता है ।

1- डॉ0आर0के0मुखर्जी - इण्डियन वर्किंग क्लास,पृ0-9।

इनके अतिरिक्त उद्योगों में कुशल श्रमिकों के स्थान पर अकुशल श्रमिकों की भर्ती हो जाती है। इसका उद्योगों की उत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति हेतु कभी-कभी तो मध्यस्थ सेवायोजकों और श्रमिकों के बीच संघर्ष उत्पन्न करा देते हैं।

इन मध्यस्थों के सम्बन्ध में शाही आयोग[1] का मत है कि मध्यस्थों का पद अत्यन्त प्रलोभनीय है और मध्यम वर्ग इसका लाभ न उठाये यह आश्चर्य की बात होगी। समय-समय पर श्रमिकों को नशीले पदार्थों तथा अन्य उपकरणों द्वारा मध्यस्थों की खुशामद करनी पड़ती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस विधि में लाभ कम और दोष अधिक हैं। यही कारण है कि वर्तमान समय में यह विधि लगभग समाप्त हो चली है और इस विधि का अस्तित्व भी लगभग समाप्त होने लगा है। श्रमिकों में भी धीरे-धीरे जागृति उत्पन्न हो रही है और अब वे शिक्षण और प्रशिक्षण प्राप्त कर स्वयं अपने व्यवसाय का चुनाव करने में सक्षम हैं। यही नहीं उनमें अब शोषण के प्रति प्रतिकार की भावना भी तीव्र हो चली है अतः इस प्रणाली के प्रति श्रमिकों की निष्ठा पूर्ण रूप से डिग चुकी है।

(2) <u>मिलों द्वारा सीधी भर्ती</u>

सीधी भर्ती से तात्पर्य सेवायोजक और श्रमिकों के प्रत्यक्ष सम्पर्क

1- रिपोर्ट आफ रायल कमीशन ऑन लेबर, पृ0-120.

द्वारा भर्ती की प्रक्रिया से लगाया जाता है । इस प्रणाली के अन्तर्गत श्रमिकों की रिक्तियों की सूचना कारखाने के गेट पर लगा दी जाती है अथवा विज्ञापन भी दिया जाता है । श्रमिक निश्चित समय और स्थान पर रोजगार हेतु साक्षात्कार के लिए उपस्थित होते हैं और सेवायोजक आवश्यकतानुसार उनमें से भर्ती कर लेता है । इस समय भर्ती की इसी प्रणाली को सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त है ।

यह प्रणाली अकुशल श्रमिकों की भर्ती के लिए अधिक उपयुक्त है किन्तु अर्द्ध कुशल अथवा कुशल श्रमिकों के लिए कम उपयुक्त । इस प्रणाली द्वारा सीधी भर्ती किये जाने पर अधिकांश उन्हीं श्रमिकों के सम्बन्धियों को जानकारी हो पाती है जो उस कारखाने में कार्य कर रहे होते हैं । सीधी भर्ती प्रणाली के तहत सेवायोजक और श्रमिक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के नाते सेवायोजक श्रमिकों से अनेक शर्तें मनवा लेते हैं जैसे श्रमसंघ में भाग न लेना आदि और इनका पालन न करने पर उनकी छँटनी भी कर दी जाती है ।

(3) <u>ठीके के आधार पर भर्ती</u>

जब कोई कार्य किसी ठीकेदार को ठीके पर दिया जाता है तो श्रमिकों का सम्बन्ध उद्योगपति अथवा मालिक से न होकर ठेकेदार से होता है और ठेकेदार ही कार्य की आवश्यकतानुसार श्रमिकों को कार्य पर लगाता है। ठेका साधारणतः उसी ठीकेदार को दिया जाता है जो न्यूनतम धन लेकर कार्य को पूरा कराने का वचन देता है ।

इस विधि का प्रयोग आजकल बहुत किया जा रहा है । इससे उद्योगपति को एक लाभ तो यह होता है कि वह भर्ती के बोझ से बच जाता है और दूसरा श्रम कल्याण पर होने वाले व्यय से भी बच जाता है परन्तु श्रमिकों की दृष्टि से यह विधि बहुत हानिकर है क्योंकि वह कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिक श्रेणी में नहीं आ पाता है और श्रम कल्याण की सुविधाओं से वंचित रह जाता है । इस विधि में ठीकेदार कम से कम समय में अधिक सेअधिक कार्य लेना चाहता है जिससे उसको अधिक लाभ प्राप्त हो सके ।

रायल कमीशन ऑन लेबर ने ठेके के श्रमिकों की प्रथा को अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण बताया है और सिफारिश की है कि श्रमिकों की भर्ती, उनके कार्य के घण्टों तथा वेतन आदि पर प्रबन्धकों का प्रत्यक्ष नियंत्रण होना चाहिए । इसी प्रकार बिहार की श्रम जाँच समिति ने भी ठेकेदारों द्वारा भर्ती की प्रथा का खण्डन किया है । इसके अतिरिक्त कई औद्योगिक समितियों ने भी इसे समाप्त करने हेतु ■ जोरदार सिफारिश की है ।

(4) <u>सेवायोजकों तथा श्रम संघों द्वारा</u>

यह विधि अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकती है । इस प्रणाली में रिक्त स्थानों की सूचना श्रमसंघों को दे दी जाती है । श्रम संघों के पास बेकार श्रमिकों की भी सूची होती है अतः वे बेकार श्रमिकों के नाम फैक्टरी अधिकारियों को उपलब्ध करा देते हैं, तत्पश्चात सेवायोजक स्वयं अपनी इच्छानुसार भेजे गये नामों में से श्रमिकों को छाँट लेते हैं और उन्हें नियुक्ति-पत्र दिया जाता है । इस प्रकार इस विधि में श्रमिक तथा सेवायोजक

दोनों के ही हितों की रक्षा हो जाती है ।

(5) श्रम अधिकारियों द्वारा भर्ती

कुछ उद्योगों में श्रम अधिकारियों की नियुक्ति कर दी जाती है जिन्हें अन्य कार्यों के अतिरिक्त श्रमिक की भर्ती का कार्य सौंप दिया जाता है । ये अधिकारी ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर श्रमिकों से सम्बन्ध स्थापित करके उनको फैक्टरी में ले आते हैं परन्तु ये अधिकारी श्रमिकों के लिए अपरिचित होते हैं, अतः यह प्रणाली अधिक सफल नहीं हो पायी है ।

(6) सम्बन्धियों की नियुक्ति

सैद्धान्तिक दृष्टि से तो यह विधि भी अहितकारी सिद्ध हो रही है । इस विधि में रिक्त स्थानों पर कार्य करने वाले श्रमिकों के पुत्रों अथवा सम्बन्धियों को ही रखा जाता है । इस विधि को अपनाकर उद्योगपति श्रमिकों का सहयोग तथा विश्वास प्राप्त कर सकता है, परन्तु व्यावहारिक रूप में यह विधि अधिक पक्षपातपूर्ण सिद्ध हुई है क्योंकि कुछ कुशल श्रमिक इसी कारण कार्य पाने से वंचित हो जाते हैं । कुशल श्रमिकों को कार्य पर न लगाने से उद्योग की उत्पादकता प्रभावित हो सकती है ।

(7) रोजगार कार्यालय द्वारा भर्ती

रोजगार कार्यालय एक ऐसी संस्था है जो एक ओर विभिन्न प्रकार

के रोजगार श्रमिकों को उनकी इच्छानुसार तथा योग्यतानुसार काम दिलाती है और दूसरी ओर सेवायोजकों को आवश्यकतानुसार योग्य श्रमिकों की प्राप्ति में सहायक होती है । इस प्रकार यह कार्यालय बेकार श्रमिकों तथा सेवायोजकों के मध्य सम्पर्क सूत्र का कार्य करता है और दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायक सिद्ध होता है । इसके साथ ही यह कार्यालय अन्य कार्य भी करता है जैसे विस्थापित व्यक्तियों का लेखा तैयार करने और उन्हें सहायता प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है । इस प्रकार रोजगार कार्यालयों की तुलना हम एक बाजार से कर सकते हैं । श्रमिकों को रोजगार केन्द्रों में हर समय उपस्थित नहीं रखा जा सकता, बल्कि उनकी योग्यता को रजिस्टर में अंकित कर लिया जाता है । सेवायोजक को जिस योग्यता के श्रमिक की जितनी संख्या में आवश्यकता होती है उससे इन केन्द्रों के अधिकारियों को सूचित कर दिया जाता है । इसके बाद अधिकारी अपनी सूची में से मांग के अनुसार कुशलता वाले श्रमिकों के नाम सेवायोजकों को भेज देता है । एक निश्चित समय पर सेवायोजक इन्हीं श्रमिकों का साक्षात्कार कर भर्ती कर लेता है । इस प्रकार रोजगार केन्द्रों द्वारा दोनों ही पक्षों को लाभ होता है । इसीलिए सेवायोजन संगठनों के विषय में यह कहा जाता है कि ये उपलब्ध सुअवसरों और उपलब्ध साधनों में सन्तुलन बनाये रखते हैं ।

रोजगार कार्यालय के कार्य एवं महत्व के विषय में अधोलिखित विन्दुओं पर विचार व्यक्त किया जा सकता है:-

(1) यह संस्था श्रम-शक्ति की मांग और पूर्ति में साम्य स्थापित करती है । प्रश्न उठता है कि यह कार्यालय श्रम की मांग और पूर्ति में किस प्रकार से साम्य स्थापित करता है । देश में कुछ स्थान

औद्योगिक दृष्टि से अधिक विकसित हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उसी क्षेत्र में श्रम शक्ति की माँग के अनुसार रोजगार के अवसर उपलब्ध हों, वह कम भी हो सकती है और अधिक भी । इसी प्रकार कुछ क्षेत्रों में इसके विपरीत दशा हो सकती है । दोनों ही दशाओं में श्रम शक्ति की माँग और पूर्ति में असन्तुलन बना रहता है । रोजगार केन्द्रों ने इस कठिनाई को दूर कर दिया है । सेवायोजक को श्रमिक की तलाश में इधर-उधर भटकना नहीं पड़ता है, बल्कि वह अपने ही क्षेत्र में स्थित अथवा अन्य क्षेत्र में स्थित रोजगार केन्द्रों को अपनी माँग प्रेषित करके आवश्यकतानुसार श्रम शक्ति सरलतापूर्वक प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार श्रमिकों को रोजगार शीघ्र ही मिल जाता है और सेवायोजक को भी आवश्यकतानुसार श्रमिक मिल जाते हैं ।

(2) सरकार के लिए यह जानना अत्यधिक आवश्यक हुआ करता है कि देश में बेरोजगारी का आकार व स्वरूप कैसा है ? रोजगार कार्यालयों में इन बेरोजगार व्यक्तियों के नाम अंकित होते हैं और इनके आधार पर देश की कुल बेकार श्रम शक्ति का अनुमान लगाया जाता है ।

(3) रोजगार कार्यालय की सहायता से सेवायोजकों तथा श्रमिकों दोनों की आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है । इस प्रकार रोजगार कार्यालय सेवायोजकों तथा श्रमिकों के मध्य सम्पर्क सूत्र की भूमिका का निर्वाह करते हैं ।

(4) रोजगार कार्यालय श्रमिकों तथा सेवायोजकों को निःशुल्क सेवा प्रदान करते हैं । श्रमिकों को किसी प्रकार का रिश्वत नहीं देना पड़ता है और सेवायोजकों को भी जो भारी रकम मध्यस्थों को

देनी पड़ती थी, मुक्ति मिल जाती है ।

(5) रोजगार कार्यालयों की स्थापना से रिक्त स्थानों पर श्रमिकों के पहुँचने में भी कम समय लगता है तथा इनके अभाव में उद्योगपतियों को श्रम शक्ति की तलाश में काफी समय का अपव्यय करना पड़ता था, उसकी बचत हो जाती है । साथ ही ये कार्यालय बेकार अकुशल श्रमिकों को प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान करके उनको कुशल बनाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं ।

(6) राष्ट्रीय लाभांश बढ़ाने में भी रोजगार कार्यालय सहायक सिद्ध हो रहे हैं । राष्ट्रीय लाभांश का आकार देश में उपलब्ध रोजगार की सुविधाओं पर ही निर्भर करता है । जब देश में बेकारी अधिक होती है, तो मानव शक्ति का प्रयोग उत्पादन कार्य में न हो सकने के कारण उनका अपव्यय होता है तथा उत्पादन की मात्रा में कोई वृद्धि नहीं होने पाती । अतः रोजगार कार्यालय मानव शक्ति के प्रयोग में सहायता करता है, फलस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है ।

उपर्युक्त लाभों के साथ-साथ रोजगार कार्यालयों की कुछ त्रुटियाँ भी हैं, जिन्हें दूर किया जाना अत्यन्त आवश्यक है । इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव प्रस्तुत हैं :-

(1) भारत में श्रमिकों की संख्या तथा बेरोजगारी के संदर्भ में यदि रोजगार कार्यालयों की संख्या पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि इनकी संख्या अत्यल्प है अतः इनकी संख्या में वृद्धि का सुझाव प्रस्तुत है ।

(2) रोजगार कार्यालयों को तकनीकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण पर अधिक बल देना चाहिए। इसके दो लाभ प्राप्त होंगे- एक ओर तो बेरोजगार श्रमिकों को रोजगार प्राप्त करने में आसानी होगी और दूसरी ओर प्रशिक्षित श्रमिकों की पूर्ति से राष्ट्रीय आय में तथा राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होगी ।

(3) बेरोजगार श्रमिकों को अपना नाम रोजगार कार्यालयों में अंकित कराना अनिवार्य कर दिया जाय ।

(4) रोजगार कार्यालयों का कार्यक्षेत्र बढ़ा दिया जाय ।

(5) निर्धन श्रमिकों को आवश्यकता पड़ने पर उन्हें आर्थिक सहायता की भी व्यवस्था इन रोजगार कार्यालयों के माध्यम से की जाय और उन्हें रोजगार मिल जाने पर यह धन उनसे वापस लिया जाय ।

अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि रोजगार कार्यालयों ने पूर्व में प्रचलित भर्ती की अनेक त्रुटियों को दूर कर दिया है ।

रोजगार कार्यालय द्वारा रोजगार की उपलब्धता

नियोक्ताओं को उनके चुनाव के अनुसार श्रम उपलब्ध न हो पाने तथा श्रमिकों को उनकी योग्यतानुसार रिक्त स्थानों की जानकारी न हो पाने की संयुक्त दशाओं ने रोजगार कार्यालयों की स्थापना की आधारशिला रखी । अधिकतर विकासशील देश व्यवस्थित श्रम-शक्ति की भर्ती की समस्या का सामना करते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु प्रथम बार 1919 में

वाशिंगटन में अन्तर्राष्ट्रीय लेबर कान्फ्रेन्स में रोजगार कार्यालय के महत्व का उल्लेख किया गया । कॉफ्रेन्स में यह स्वीकार किया गया कि प्रत्येक सदस्य राष्ट्र केन्द्रीय प्रभुत्व के नियंत्रण के अन्तर्गत निःशुल्क रोजगार कार्यालय की स्थापना करेगा ।[1]

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का सदस्य होने के नाते भारत सरकार ने 1921 में देश में सेवायोजन कार्यालयों की स्थापना सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन कर सेवायोजना सेवा का आरंभ सर्वप्रथम द्वितीय विश्व महायुद्ध के पश्चात सेना से विमुक्त कर्मिकों एवं सैनिकों को नागरिक जीवन में व्यवस्थित ढंग से नियोजित करने के विचार से किया गया । अतएव जुलाई 1945 में पुनर्वास एवं रोजगार महानिदेशालय की स्थापना केन्द्रीय स्तर पर की गयी और देश के विभिन्न भागों में सेवायोजन कार्यालय खोले गये । प्रारंभ में सेवायोजन कार्यालय की सुविधाएं सेना से विमुक्त सैनिकों एवं कार्मिकों को उपलब्ध करायी गयीं । सन् 1947 ई0 में देश के नवोदय के पश्चात विभाजन के फलस्वरूप विस्थापितों के पुनर्वास की समस्या प्रारंभ हुई जिसके समाधान का भार सेवायोजन कार्यालयों को सौंपा गया । भारत में सर्व साधारण की सुविधा के लिए वर्ष 1948 में सेवायोजन कार्यालय के द्वार खोल दिये गये, परन्तु सेवायोजन से प्राप्त सुविधाओं को सर्वसाधारण के लिए उपलब्ध कराने तथा देश की आर्थिक,सामाजिक और प्रशासनिक विकास में गतिशीलता लाने के उद्देश्य से 1952 में संसद सदस्य श्री शिवाराम की अध्यक्षता में "प्रशिक्षण एवं सेवायोजना सेवा संगठन समिति" का गठन किया गया जिसे शिवाराम

1-उदीन हसन-रोल आफ इम्प्लायमेन्ट इक्सचेंज इन इण्डिया,योजना -एनुवल, जनवरी, 1979, पृ0-73.

समिति के नाम से जाना जाता है । इस समिति की संस्तुति के आधार पर नवम्बर 1956 में सेवायोजन कार्यालयों का दैनिक प्रशासन भारत सरकार से राज्य सरकारों को हस्तान्तरित कर दिया गया । सेवायोजन कार्यालयों की कार्य प्रणाली को सुचारु रूप से चलाने के लिए वर्ष 1959 में सेवायोजन कार्यालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना अधिनियम 1959) पारित किया गया जिसे । मई 1960 से सम्पूर्ण भारत में प्रभावी किया गया । वर्ष 1960 में ही पुनर्वास एवं रोजगार महानिदेशालय का नाम बदलकर सेवायोजन एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय रख दिया गया ।

बिहार राज्य में सेवायोजन कार्यालयों की संख्या मार्च 1991 तक 59 थीं । इन सेवायोजन कार्यालयों के माध्यम से 1989 में 15,869 लोगों को रोजगार प्राप्त हो सका ।[1] बेरोजगारों की संख्या दिसम्बर 1989 तक जीवित पंजिका के अनुसार 30,53,254 थी । उपर्युक्त 59 सेवायोजन कार्यालयों में जीवित पंजिका के अनुसार बेरोजगारों की जो संख्या थी, उसका विवरण अधोंकित सारिणी द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है :-

---

1- बिहार- एक झलक- 1991- सांख्यिकी एवं मूल्यांकन निदेशालय, पटना, बिहार, पृ0-35.

सारिणी संख्या-4:1

सेवायोजन कार्यालय की जीवित पंजिका के अनुसार

बेरोजगारों की संख्या

सेवायोजन कार्यालय का नाम	1989	1990	1991
1-सबडिवीजनल इम्प्लायमेन्ट, पटना ।	248120	256672	291771
2-जिला नियोजनालय,नालंदा	100898	113655	115269
3-जिला नियोजनालय,भोजपुर	65498	75249	21934
4-सबडिवीजनल नियोजनालय, डालमियानगर ।	69351	97363	12480
5-सबडिवीजनल नियोजनालय, गया ।	102127	105643	19452
6-जिला नियोजनालय,नावादा	32930	91300	3836
7-जिला नियोजनालय,औरंगाबाद	30881	34861	4652
8-सबडिवीजलन नियोजनालय, मुजफ्फरपुर	131538	138135	25992
9-जिला नियोजनालय,सीतामढ़ी	39040	51891	17404
10-जिला नियोजनालय,वैशाली	45454	51033	15485
11-,, ,, मोतीहारी	49445	54713	4664
12-,, ,, बेतिया	43108	45146	4905
13-,, ,, सिवान	52560	63041	3761

(सारिणी क्रमश: अगले पृष्ठ पर...)

14-जिला नियोजनालय, गोपीगंज	25018	32461	1697
15- ,, मधुबनी	67607	84070	6068
16- ,, समस्तीपुर	95895	113623	3550
17- ,, बेगुसराय	48766	63568	4136
18- ,, पूर्णिया	60405	74934	24718
19- ,, कटिहार	36764	36014	2780
20- ,, मधेपुरा	36554	43199	1716
21- ,, खगरिया	20178	103616	1537
22- ,, मुंगेर	56202	54136	7671
23- ,, कटलगांन	28047	31274	2900
24- ,, लोहरदगा	10352	12463	2600
25- ,, गुमला	17762	17998	4130
26- ,, डाल्टेनगंज	40226	45536	9858
27- ,, सिमदेगा	4796	4825	510
28- ,, लातेहार	18438	23102	260
29- ,, तोर्वा	3619	3112	66
30- ,, कुन्ती	3179	3711	50
31- ,, चाईबासा	41220	48558	1717
32- ,, चक्रधरपुर	7165	12709	827
33- ,, चाण्डिल	29052	23686	171
34- ,, आदित्यपुर	15175	17686	343
35- ,, गिरिडीह	22864	26015	1873
36- ,, रामगढ़	38470	37806	1378

(सारिणी क्रमशः अगले पृष्ठ पर)

37-जिला नियोजनालय,साहबगंज	36054	35438	9890
38- ,, लालसनी	16363	13434	2287
39- ,, पुकुर	4484	4327	108
40- ,, गोड्डा	12925	15183	7586
41- ,, जहानाबाद	19610	39147	564
42-सबडिवीजनल नियो0,छपरा	46375	63259	6691
43- ,, लहरियासराय	65907	75787	4377
44- ,, सहरसा	54042	63771	7323
45- ,, भागलपुर	96493	102616	16093
46- ,, राँची	173065	184913	6782
47- ,, जमशेदपुर	126461	131390	8738
48- ,, हजारीबाग	42682	44202	9099
49- ,, धनबाद	269497	295282	2888
50- ,, सिन्दरी	24946	27146	1442
51- ,, बोकारो (स्टील सिटी)	150987	150398	7989
52- बोकारो,थर्मल नियोना0	29277	32964	456
53- तेनुघाट नियोजनालय	15369	16640	152
54- दुमका सबडिवीजल नियोज0	40712	49131	14593
55- देवघर ,,	26581	32200	1991
56-जिला नियोजनालय,पटना	29177	30049	5399
57-विकलांग ,, पटना	7196	5856	2751
58-व्यावसायिक नियो0,पटना	30053	28263	7197
59-जिला नियो0किरिबुर	15614	17083	171

बेरोजगारों की संख्या जनसंख्या वृद्धि के साथ बढ़ी है किन्तु उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि 1989 की तुलना में 1991 में बेरोजगारों की संख्या जीवित पंजिका के अनुसार कम हुई है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है । इसका एक कारण यह है कि रोजगार प्राप्त न होने से एक बार पंजीकृत अभ्यर्थी अपने पंजीकरण का नवीनीकरण नहीं करवाता है जिससे उसका नाम जीवित पंजिका से काट दिया जाता है और बहुत से लोग नैराश्यपूर्ण वातावरण में अपना पंजीकरण भी नहीं करवाते हैं । इस प्रकार ये आँकड़े वास्तविक चित्र प्रस्तुत नहीं करते ।

बेरोजगारी की समस्या के अध्ययन तथा समाधान हेतु रोजगार सूचना कार्यक्रम, व्यावसायिक सूचना एवं मंत्रणा कार्यक्रम, रोजगार विकास कार्यक्रम और शोध एवं सर्वेक्षण कार्यक्रम चलाये जाते हैं । सेवायोजन कार्यालय का मुख्य कार्य अभ्यर्थियों का पंजीयन करके निःशुल्क एवं निष्पक्ष सेवायोजन सहायता प्रदान करना है । साथ ही प्रदेश के सेवायोजकों को उनके अधिष्ठान में रिक्त हुए पदों की अधिसूचना के अनुरूप कुशल एवं सुयोग्य कर्मचारी उपलब्ध कराना है । बिहार राज्य में सेवायोजन सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत जो सुविधाएं उपलब्ध करायी गयी हैं, उनका विवरण सारिणी संख्या-4:2 द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है(सारिणी अगले पृष्ठ पर) ।

सारिणी से स्पष्ट है कि 1989 की अपेक्षा 1991 में कुल बेरोजगारों की संख्या में 6,13,204 की वृद्धि हुई । जहाँ तक रोजगार की सूचना भेजने का प्रश्न है 1989 में 1990 और 1991 की अपेक्षा अधिक लोगों को रोजगार की सूचना दी गयी तथा 1989 एवं 1990 व 1991 के वर्षों का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो 1989 में बाद के दो वर्षों की अपेक्षा अधिक लोगों को रोजगार भी प्राप्त हुए । इस प्रकार यह

तालिका संख्या-4:2

विवरण	1989	1990	1991
(1) कुल बेरोजगारों की संख्या	30,52,254	33,89,769	36,66,458
(2) जिन लोगों को रोजगार की सूचना भेजी गयी, उनकी संख्या	7,95,920	3,44,818	3,83,977
(3) रोजगार प्राप्त करने वालों की संख्या	15,869	14,774	12,064

(स्रोत: नियोजन एवं प्रशिक्षण निदेशालय, पटना के सौजन्य से व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा प्राप्त तथ्यों पर आधारित)

स्वतः स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर बेरोजगारी की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है, वहीं दूसरी ओर रोजगार के अवसरों में कमी जान पड़ती है क्योंकि 1989 में 15,869 लोगों को रोजगार कार्यालयों के माध्यम से रोजगार दिलाया गया जब कि 1990 और 1991 में क्रमशः उससे कम अर्थात् 14,774 और 12,064 लोगों को ही रोजगार दिलाया जा सका ।

यह स्पष्ट रूप से तो नहीं कहा जा सकता कि 1989 की अपेक्षा 1990 और 1991 में रोजगार के अवसरों में कमी हुई है, किन्तु

रोजगार कार्यालयों के माध्यम से रोजगार दिलाने की संख्या में अवश्य कमी दृष्टिगोचर हुई है । सरकार द्वारा रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने हेतु अनेक कार्यक्रम और परियोजनाओं का संचालन किया जा रहा है । यह भी सम्भव है कि कितने बिना रोजगार कार्यालय में पंजीकरण कराये ही सीधे रोजगार प्राप्त करने में सफल हो गये हों क्योंकि इस समय रिक्तियों की सूचनाएं विभिन्न समाचारपत्रों तथा रोजगार समाचार आदि में प्रकाशित होती ही रहती हैं। अतः यह पता लगाना कि कितने व्यक्ति बिहार की सम्पूर्ण जनसंख्या में किसी समय विशेष में रोजगार प्राप्त कर सके, एक कठिन कार्य है । जहाँ तक मौसमी रोजगार अथवा अल्प दिनों के लिए रोजगार की उपलब्धता होती है वहाँ पर श्रमिकों की भर्ती सीधे कर ली जाती है और सेवायोजन कार्यालयों की मदद नहीं ली जाती है । ग्रामीण क्षेत्रों के सन्दर्भ में यह स्थिति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। कुछ भी हो यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि बेरोजगारी की संख्या प्रदेश में निरन्तर बढ़ती जा रही है और प्रदेश के श्रमिक अपनी आजीविका के लिए निकटवर्ती प्रदेशों की ओर पलायन भी कर रहे हैं जहाँ उन्हें अत्यन्त कठिन जीवन व्यतीत करना पड़ता है ।

बेरोजगारी की समस्या से निजात पाने हेतु प्रत्येक राज्य चिन्तित है । बिहार राज्य में इस समस्या के बढ़ते हुए दबाव को कम करने के लिए सरकार द्वारा जो उपाय किये गये हैं उनका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है:-

स्वतः रोजगार कार्यक्रम

रोजगार के अवसरों की सीमितता तथा प्रदेश में हुए आर्थिक

एवं औद्योगिक विकास के फलस्वरूप स्वतः रोजगार के क्षेत्र में उपलब्ध नये-नये व्यवसायों की ओर बेरोजगारों को प्रेरित करने हेतु स्वतः रोजगार कार्यक्रम चलाया गया । स्वतः रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों को शासन तथा बैंकों की ओर से सहायता प्रदान की जाती है तथा स्वतः नियोजन के प्रोन्नयन के लिए बनायी गयी विभिन्न योजनाओं की भलीभांति जानकारी कराकर अथवा प्रभावी ढंग से मार्ग निर्देशन देकर अभिप्रेरित किया जाता है । स्वतः रोजगार में रत उद्यमशील व्यक्ति अन्य लोगों को भी रोजगार अवसर प्रदान करता है । इस प्रकार रोजगार सृजन में स्वतः रोजगार गुणात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है । इसका एक और भी धनात्मक पहलू यह है कि इसका क्षेत्र अत्यन्त विशाल है । युवा, वृद्ध एवं बच्चे, पुरूष एवं महिलायें, शिक्षित एवं शिक्षाहीन सभी लोग अपनी योग्यता का, अनुभव का एवं रुचि का उपयोग स्वतः रोजगार के क्षेत्र में कर अपना व्यवसाय आरंभ कर सकते हैं । इसमें आयु आदि का प्रतिबन्ध भी नहीं है । अतः यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है ।

अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए सेवायोजन

अनुसूचित जाति एवं जनजाति के अभ्यर्थियों को सेवायोजन सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान करने की दिशा में प्रदेश सरकार विशेष ध्यान दे रही है । केन्द्र सरकार द्वारा इन अभ्यर्थियों को रोजगार में आरक्षण की जो सुविधा प्रदान की गयी है, उसे पूरा करने के लिए सरकार बाध्य है । सेवायोजना कार्यालयों के तहत कुछ प्रशिक्षण योजनाएं भी अनुसूचित जाति एवं जनजाति के अभ्यर्थियों के लिए चलायी जा रही हैं और उन्हें

प्रशिक्षण की अवधि में एक निश्चित धनराशि छात्रवृत्ति के रूप में दी जाती है । इन प्रशिक्षण प्राप्त अभ्यर्थियों को रोजगार की सूचना तथा नियुक्ति में प्राथमिकता प्रदान की जाती है ।

महिला अभ्यर्थी

यद्यपि महिला अभ्यर्थियों को राजकीय सेवा में किसी प्रकार की प्राथमिकता अथवा वरीयता नहीं दी गयी है फिर भी यह सुविचारित मत है कि इस वर्ग के अभ्यर्थियों के हितों का पर्याप्त ध्यान रखा जाना चाहिए । प्रदेश सरकार ऐसे अभ्यर्थियों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के विषय में काफी सचेष्ट है और योग्य अभ्यर्थी अनेक सेवाओं में स्थान प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर चुके हैं । सेवायोजन की सूचना इन अभ्यर्थियों को भी दी जाती है । इस वर्ग के अभ्यर्थियों का पंजीयन यद्यपि बहुत कम हो रहा है । पटना तथा राँची व अन्य नगरों के कार्यालयों में इनकी संख्या कम विकसित नगरों की अपेक्षा पंजीयन तथा रोजगार के दृष्टिकोण से अधिक देखी जा सकती है । इस प्रकार अब सेवायोजन कार्यालयों द्वारा महिला अभ्यर्थियों को भी रोजगार प्रदान करने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया जा रहा है ।

भूतपूर्व सैनिक

केन्द्र सरकार का ऐसा निर्देश है कि सेना से विमुक्त अथवा सेवामुक्त सैनिकों को केन्द्र सरकार की सेवाओं में प्राथमिकता दी जाय । इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु सेवायोजन कार्यालयों में इस प्रकार के व्यक्तियों का

पंजीकरण किया जाता है और उन्हें प्रदेश तथा केन्द्र की रिक्तियों की सूचना सम्प्रेषित की जाती है तथा उन्हें रोजगार दिलाने में सहायता प्रदान की जाती है । केन्द्रीय सेवाओं में इस वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी के पदों पर आरक्षण की भी व्यवस्था है ।

विकलांगों को सेवायोजन

शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्तियों को समुचित और योजनाबद्ध ढंग से सेवायोजन की सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के सहयोग से देश के विभिन्न भागों में 18 विशिष्ट सेवायोजन कार्यालय खोले गये हैं । बिहार राज्य में पटना में विकलांगों के लिए एक अलग से सेवायोजन कार्यालय स्थापित किया गया है । दिसम्बर 1986 तक इस नियोजनालय की जीवित पंजिका में 6883 विकलांगों का नाम दर्ज रहा जिनमें महिलाओं की संख्या 355 रही । इस नियोजनालय द्वारा 1047 विकलांगों को रोजगार की सूचना सम्प्रेषित की गयी जिनमें से 36 बेरोजगार विकलांग रोजगार प्राप्त करने में सफल हुए ।[1]

जनसंख्या वृद्धि एवं रोजगार में असन्तुलन

जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप प्रतिवर्ष कुछ नये श्रमिकों की संख्या

1-उपलब्धियों का वर्ष 1986-87, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, बिहार सरकार प्रकाशन, पटना, पृ0-206.

बढ़ती है । प्रत्येक वर्ष जिस अनुपात में श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती है उतनी वृद्धि रोजगार के अवसरों में नहीं हो पाती जिसके फलस्वरूप बेरोजगारी बढ़ रही है । श्रम की माँग एवं पूर्ति के बीच असन्तुलन के फलस्वरूप बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है । एक अनुमान के अनुसार देश में 1951 से 1981 के बीच जितने नये बेरोजगार हुए उनकी संख्या ब्रिटेन की आबादी की लगभग दो गुनी है ।

जहाँ तक जनसंख्या वृद्धि और बेरोजगारी का सम्बन्ध है, जनसंख्या वृद्धि के कारण बेरोजगारी हर क्षेत्र में बढ़ी है, चाहे वह कृषि का क्षेत्र हो अथवा उद्योग व सेवाओं का । इसी प्रकार शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में हर क्षेत्र में हर वर्ग के मध्य बेरोजगारी की मात्रा में वृद्धि हुई है । यद्यपि अनेक कठिनाइयों के कारण देश व प्रदेश की बेरोजगारी की एकदम स्पष्ट व सही संख्या उपलब्ध नहीं है फिर भी विभिन्न जनगणनाओं तथा कुछ समितियों व आयोगों के प्रतिवेदनों से देश व प्रदेश की बेरोजगारी की स्थिति का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है ।

जनसंख्या तथा बेरोजगारी जैसी समस्याओं के अधिक जटिल रूप में विद्यमान होने का एक कारण सरकारी नीतियों की असफलता भी है । यद्यपि प्रत्येक योजना में इन समस्याओं के समाधान के लिए नीतियां तैयार की गयी हैं किन्तु इन समस्याओं का हल अल्पांश में ही हो सका है । विभिन्न मंत्रालयों द्वारा निर्धारित नीतियों एवं कार्यान्वयन में सामंजस्य न हो पाने के कारण भी इन समस्याओं के पूर्ण निराकरण में कठिनाई हुई है ।

विकासशील एवं विकसित देशों की बेरोजगारी में एक विशेष प्रकार की भिन्नता पायी जाती है। विकासशील देशों में खुली बेरोजगारी, सुषुप्त बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी आदि स्वरूप साधनों की न्यूनता व कृषि प्रधानता के कारण पायी जाती है जबकि विकसित देशों में बेरोजगारी प्रभावपूर्ण मांग में कमी के कारण उत्पन्न होती है। विकासशील देशों में अन्य उत्पत्ति के साधनों के अभाव में अतिरिक्त श्रम को नहीं लगाया जा सकता।

तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या बिहार की अर्थव्यवस्था को सामूहिक बेरोजगारी तथा अल्प बेरोजगारी की तरफ ढकेल रही है। जनसंख्या वृद्धि के साथ श्रमिकों का अनुपात बढ़ता जाता है परन्तु सम्पूरक साधनों के अभाव में रोजगार के अवसर बढ़ाना सम्भव नहीं होता। परिणाम यह होता है कि श्रम-शक्ति में एकतरफा वृद्धि होने से बेरोजगारी तथा अल्प बेरोजगारी बढ़ जाती है। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या आय तथा बचतों व विनियोजन को घटा देती है और पूंजी निर्माण की गति मन्द कर देती है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात अब बिहार राज्य की जनसंख्या पर एक दृष्टि डालना प्रासंगिक जान पड़ता है। विगत दो जनगणनाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है जिसे सारिणी संख्या-4:3 द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है :-

(सारिणी संख्या-4:3 अगले पृष्ठ पर....)

सारिणी संख्या-4:3

वि व र ण	1981	1991
(1) कुल व्यक्ति	699,14,734	863,38,853
(2) पुरुष	359,30,560	451,47,280
(3) महिलाएं	339,84,174	411,91,573
(4) लिंग अनुपात	946	912
(5) वृद्धि दर	24·06	23·49
(6) सघनता (घनत्व) वर्ग कि0मी0	402	497
(7) साक्षरता	32·03	38·54

(स्रोत: आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार, 1991-92, भाग-2, सारिणी संख्या-101 में दिये गये आंकड़ों के आधार पर)

उपर्युक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि बिहार में 1981 से 1991 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर 23·49 प्रतिशत रही जो प्रतिवर्ष 2·34 प्रतिशत बैठती है। 1971 से 1981 की अवधि में 24·04 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो वार्षिक 2·40 बैठती है। इस प्रकार जहाँ तक जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण का प्रश्न है, वह नगण्य साबित हुआ है। इस बीच प्रति वर्ग कि0मी0 घनत्व में भी वृद्धि हुई और साक्षरता प्रतिशत में मात्र 6.51 की वृद्धि एक दशक की अवधि में हो सकी है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बिहार राज्य की जनसंख्या का गुणात्मक पहलू अभी भी वांछित

स्तर प्राप्त करने में असमर्थ है ।

इसी संदर्भ में बिहार राज्य तथा भारत के अन्य राज्यों में जनसंख्या घनत्व का विवरण विगत 3 जनगणनाओं के आधार पर इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है :-

सारिणी संख्या-4:4

अन्य प्रदेशों के साथ बिहार की जनसंख्या घनत्व की तुलना

(घनत्व प्रति वर्ग कि0)

राज्य/संघ	1971	1981	1991
(1) केरल	549	655	747
(2) पश्चिम बंगाल	499	614	766
(3) बिहार	324	402	497
(4) उत्तर प्रदेश	300	377	472
(5) तमिलनाडु	317	371	428
(6) पंजाब	269	331	401
(7) हरियाणा	227	299	369
(8) महाराष्ट्र	164	204	256

(सारिणी क्रमशः अगले पृष्ठ पर...)

(9) असम	186	254	284
(10) त्रिपुरा	148	196	262
(11) आंध्र प्रदेश	153	194	214
(12) कर्नाटक	153	193	234
(13) गुजरात	137	173	210
(14) उड़ीसा	141	169	202
(15) मध्य प्रदेश	94	118	149
(16) राजस्थान	75	100	128
(17) हिमाचल प्रदेश	72	76	92
(18) मणिपुर	48	64	82
(19) मेघालय	45	59	78
(20) नागालैण्ड	31	47	73
(21) सिक्किम	30	44	57
(22) अण्डमान, निकोबार द्वीप समूह	14	23	34
(23) मिजोरम	16	23	33
(24) अरूणाचल प्रदेश	6	7	10
(25) गोवा	225	284	316
(26) दादरा नगर हवेली	151	211	282
(27) दिल्ली	2742	4178	6319

(सारिणी क्रमशः अगले पृष्ठ पर...)

(28) चण्डीगढ़	2257	3948	5620
(29) लक्षद्वीप	994	1257	1615
(30) पाण्डिचेरी	959	1228	1640
(31) जम्मू व कश्मीर	—	59	76

(स्रोतः- भारत की जनगणना 1981, श्रृंखला-1, भारत जनसंख्या के अन्तिम आंकड़े, पृ0-39 एवं आर्थिक समीक्षा, 1991-92, भारत सरकार, भाग-2, सारिणी संख्या-101 में दिये गये आंकड़ों पर आधारित)

यहाँ बिहार की जनसंख्या की तुलना दो प्रकार से की जा सकती है । एक तो उन राज्यों के साथ जो उद्योग प्रधान हैं और अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं और दूसरे, उन राज्यों के साथ जो कृषि प्रधान हैं और औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं । यहाँ पर दोनों की कोटि के कुछ राज्यों/क्षेत्रों से बिहार की जनसंख्या के घनत्व की तुलना प्रस्तुत की गयी है । यद्यपि शोधकर्ता का अभिमत है कि तुलना केवल कृषि-प्रधान राज्यों से की जानी अधिक उपयुक्त होगी क्योंकि बिहार राज्य एक कृषि-प्रधान राज्य है ।

बिहार राज्य एक कृषि प्रधान राज्य होने के कारण यहाँ की जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि पर अपनी जीविका के लिए आश्रित है । फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में आय का स्तर निम्न होने के कारण इसमें कार्यरत व्यक्तियों की आय भी कम है जिसके कारण वे बचत और विनियोग में योगदान अत्यल्प मात्रा तक ही कर पाते हैं ।

सारिणी संख्या-4:5

उद्योग प्रधान राज्यों/संघों के साथ बिहार

के जनसंख्या घनत्व की तुलना

राज्य/संघ	जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग कि0मी0 (1991)
(1) दिल्ली	6319
(2) केरल	747
(3) पश्चिमबंगाल	766
(4) चण्डीगढ़	5620
(5) पाण्डिचेरी	1640
(6) उत्तर प्रदेश	472
(7) बिहार	497

(स्रोत:- आर्थिक समीक्षा 1991-92, भाग-2, भारत सरकार, सारिणी संख्या-101 पर आधारित)

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि जन घनत्व के आंकड़े के आधार पर यदि देखा जाय तो बिहार की स्थिति दिल्ली, केरल, पश्चिम बंगाल तथा पाण्डिचेरी से अच्छी है किन्तु इससे एक तथ्य और भी सामने आता है कि इन चारों राज्यों/संघों में जनसंख्या घनत्व अधिक होने का कारण इनकी औद्योगिक रोजगार क्षमता है । यही कारण है कि

इन प्रदेशों / संघों में जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग कि0मी0 अधिक है । पड़ोसी राज्य उत्तर प्रदेश से तुलना की जाय तो स्थिति बहुत अधिक भिन्न नहीं दीखती । 1991 की जनगणना के अनुसार बिहार में जनसंख्या का घनत्व 497 तथा उत्तर प्रदेश में 472 है ।

सारिणी संख्या-4:6

कृषि-प्रधान राज्यों के साथ बिहार की जनसंख्या

घनत्व का तुलनात्मक अध्ययन (1991 की जनगणना)

राज्य	जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग कि0मी0
(1) मध्य प्रदेश	149
(2) उड़ीसा	202
(3) असम	284
(4) पंजाब	401
(5) हरियाणा	369
(6) उत्तर प्रदेश	472
(7) बिहार	497

(स्रोत :- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सारिणी संख्या-4:4 के आंकड़ों पर आधारित)

सारिणी संख्या-4:6 से स्पष्ट होता है कि बिहार राज्य में जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि जनसंख्या घनत्व के कारण ही यह प्रदेश पिछड़ा हुआ है ।

बिहार में आर्थिक विकास और जनसंख्या वृद्धि

उत्पत्ति के निष्क्रिय साधनों को धनोत्पादन में परिणित करने का श्रेय मानव श्रम को ही है । जनसंख्या का दबाव प्रभावपूर्ण मांग और बाजार के विस्तार को बढ़ावा देकर आर्थिक विकास को प्रेरित करता है, किन्तु बिहार राज्य में स्थिति इसके विपरीत है । राज्य में जनसंख्या विगत कुछ दशकों में जिस गति से बढ़ी है, पूंजीगत साधनों और तकनीकी ज्ञान के अभाव में उस गति से उत्पादन में वृद्धि लाना संभव नहीं हो पाया है । फलतः प्रदेश में सर्वत्र बेरोजगारी और गरीबी देखी जा सकती है । जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव को देखते हुए पियर्सन आयोग ने अपनी रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख किया है कि विकास की संभावना पर और किसी समस्या के काले बादल इतने घने नहीं हैं जितनी अपनी आबादी की तेजी से वृद्धि के काले बादल ।[1] यही कारण है कि विकास सम्बन्धी कार्यों से जो कुछ हम विकास करते हैं वह बढ़ी हुई जनसंख्या में समा जाता है ।[2] यदि जनसंख्या की संवृद्धि को नियंत्रित करने में सफलता

1-रिपोर्ट आफ दि कमीशन आन इण्टरनेशनल डेवलपमेण्ट -पार्टनर्स इन डेवलपमेण्ट, पृ0-20

2-मैल्कम आदिशेषैया-भारत की छठीं पंचवर्षीय योजना:एक विवेचना, योजना 16-30, अप्रैल, 1981, पृ0-4

नहीं मिलती तो गरीबी और बेरोजगारी को कम करने के सभी योजना अनुमान असफल सिद्ध होंगे ।[1]

जनसंख्या वृद्धि : नियंत्रण के सुझाव

अधिक जनसंख्या वृद्धि से गरीबी, बेरोजगारी, खाद्य समस्या जैसी अनेक सामाजिक बुराइयां उत्पन्न होती हैं । यदि जनसंख्या को बढ़ने से न रोका गया तो हमारी प्रगति रेत पर लिखने के समान होगी जिसको जनसंख्या की वृद्धि की लहरें मिटा देंगी । जनसंख्या की समस्या से निपटने के लिए विकसित देशों की तकनीक का अन्धानुकरण करना हमारे हित में नहीं होगा क्योंकि हमारी परिस्थितियां उनसे सर्वथा भिन्न हैं । इस सम्बन्ध में प्रो०गुन्नार मिर्डल का कथन प्रासंगिक जान पड़ता है कि आज अल्प विकसित देशों में जनसंख्या के सम्बन्ध में क्या हो सकता है अथवा वहां किस प्रकार की नीतियां अपनायी जा सकती हैं, यह निर्णय करने की दृष्टि से विकसित देशों का अनुभव अधिक उपयोगी नहीं हो सकता ।[2] बिहार आर्थिक रूप से पिछड़ा राज्य है जहां जनाधिक्य की समस्या के समाधान की बात सभी लोग स्वीकार करते हैं । इसके लिए कुछ उपाय किये जा सकते हैं जैसे शिक्षा सुविधाओं का विस्तार, विवाह आयु सम्बन्धी नियम, परिवार कल्याण कार्यक्रम को तेज करना, गर्भपात की सुविधाओं में वृद्धि

1-मैल्कम आदि शैषैया-भारत की छठी पंचवर्षीय योजना: एक विवेचना, योजना 16-30 अप्रैल, 1981, पृ0-4

2-गुन्नार मिर्डल- इण्टरनेशनल इकोनामी-पृ0-195.

अविवेकी मातृत्व पर रोक आदि ।

बिहार सरकार इस दिशा में विशेष ध्यान दे रही है किन्तु साधनों की कमी विकास के मार्ग में बाधक है । समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 55 करोड़ 80 लाख 34 हजार रुपये व्यय कर 204583 परिवारों को लाभान्वित 1992 के वर्ष में किया गया है जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं की संख्या क्रमशः 62,890, 33,826 और 45,285 है ।[1] ट्राइसेम योजना के अन्तर्गत 1990-91 तक प्रति प्रखण्ड 40 युवक एवं युवतियों को प्रशिक्षित किया जाता रहा किन्तु 1991-92 से प्रति प्रखण्ड 80 युवक एवं युवतियों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य रखा गया है । 1991-92 वर्ष में 20,269 ग्रामीण युवक/युवतियों को प्रशिक्षण प्राप्त हुआ तथा 18,336 युवक/युवतियाँ अभी प्रशिक्षण के अन्तर्गत रहे । इनमें अनुसूचित जाति के 6143, अनुसूचित जनजाति के 2036 महिलाओं की संख्या 11,226 और विकलांगों की संख्या 278 रही ।

उपर्युक्त के अलावा जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा वर्ष 1991-92 के लिए 38,466·78 लाख रु0 निर्धारित किये गये हैं । जनवरी 1992 तक कुल 467·47 लाख मानव-दिवस रोजगार का सृजन किया गया । कुल सृजित मानव दिवस रोजगार में अनुसूचित जाति के लिए 168·37 लाख, अनुसूचित जनजाति के लिए 124·65 लाख मानव दिवस रोजगार का सृजन किया गया । कुल सृजित मानव दिवस में

1-बिहार-फरवरी -मार्च संयुक्तांक, 1992, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पटना, पृ0-22·

92•50 लाख मानव दिवस महिलाओं के लिए, 276•80 लाख मानव दिवस भूमिहीनों के लिए एवं 52•98 लाख मानव दिवस अल्पसंख्यकों के लिए सृजित किया गया । इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत जनवरी 1992 तक 12,610 इन्दिरा आवास ईकाई का निर्माण हो चुका है । यह योजना हरिजन,आदिवासी तथा मुक्त किये गये बन्धुआ मजदूरों के लिए है । जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत हरिजन/आदिवासी एवं मुक्त किये गये बन्धुआ मजदूरों के कल्याणार्थ जलधारा योजना के लिए भारत सरकार द्वारा 1991-92 के लिए 7693•30 लाख रू० का प्राविधान किया गया था ।[1] बाद में इस योजना के सफल कार्यान्वयन को देखते हुए भारत सरकार ने इस योजना हेतु 30 करोड़ रू० की अतिरिक्त धनराशि स्वीकृत की । इस योजना के अन्तर्गत माह जनवरी 1992 तक 3954•73 लाख रू० व्यय कर कुल 39,523 योजनाएं पूर्ण की गयी है । जलधारा एवं इंदिरा आवास योजना का भौतिक लक्ष्य 1991-92 के लिए क्रमश: 52015 तथा 15872 निर्धारित किया गया। सभी मौसम में 890 ग्रामों को सड़कों से जोड़ने हेतु 1800 कि० मी० पथों का निर्माण किया गया । जनवरी 1992 तक जवाहर रोजगार रोजगार योजनान्तर्गत सृजित परिसम्पत्ति का विवरण अधोलिखित है:-

(सारिणी संख्या-4:7 अगले पृष्ठ पर)

1- बिहार- फरवरी-मार्च संयुक्तांक- सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, बिहार सरकार, पटना, पृ०-23•

सारिणी संख्या-4:7

विवरण	भौतिक उपलब्धि
(1) सामाजिक-वानिकी के अन्तर्गत आच्छादित भूमि का क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	5679·89
(2) सामाजिक-वानिकी के अन्तर्गत वृक्षारोपण (लाख हेक्टेयर)	202·43
(3) पेय जलकूप का निर्माण व मरम्मत	6825
(4) पंचायत भवन का निर्माण एवं मरम्मत	1931
(5) विद्यालय भवन का निर्माण व मरम्मत	2613
(6) महिला मण्डल का निर्माण	133
(7) ग्रामीण पथ का निर्माण एवं मरम्मत	8766·95 कि0मी0
(8) गाड़े गये तथा मरम्मत किये गये चापाकल	3194
(9) ग्रामीण शौचालय का निर्माण	2331
(10) भूमि संरक्षण कार्य	939·40 हेक्टेयर
(11) पुलिया	1368
(12) अन्य	6688

(स्रोत: बिहार- फरवरी-मार्च संयुक्तांक, 1992, पृ0-23)

उपर्युक्त के अतिरिक्त सरकार ने अनुसूचित जातियों के अभ्यर्थियों को राज्य न्याय सेवा में आरक्षण प्रदान किया है । राज्य में बेरोजगारी की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करने एवं मानव शक्ति के सही उपयोग हेतु राज्य स्तरीय नियोजन समिति का गठन किया गया है । वर्तमान समय में राज्य 62 नियोजनालय कार्यरत हैं । इसके अतिरिक्त प्रखण्ड स्तर पर 13 ग्रामीण नियोजन केन्द्र एवं राज्य के 6 विश्वविद्यालयों में विश्वविद्यालय सेवायोजन सूचना एवं मार्गदर्शन केन्द्र स्थापित हैं ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं के माध्यम से बेरोजगार की समस्या का समाधान करने का प्रयास किया गया, परन्तु जनसंख्या की वृद्धि ने इस समस्या को सदैव ही बढ़ावा दिया है । फलस्वरूप विकास कार्य जनसंख्या वृद्धि के कारण अतिरिक्त जनसंख्या की बाढ़ में समाहित हो जाते हैं । अतः आवश्यकता जनसंख्या नियंत्रण के साथ विकास कार्यों व योजनाओं को और वैज्ञानिक ढंग से प्रभावी करने की है ।

अध्याय-5

योजनाकाल में सरकार की नीति और बेकारी

योजनाकाल में सरकार की नीति और बेकारी

रोजगार के अवसरों में वृद्धि के लिए बहुत पहले से प्रयास किये जाते रहे हैं, किन्तु आज उसमें अन्तर यह है कि पहले जहां रोजगार के लिए निजी स्तरों पर विशेष प्रयत्न किया जाता रहा, वहीं वर्तमान समय में सरकार सार्वजनिक स्तर पर रोजगार के अवसरों में वृद्धि हेतु विशेष रूप से प्रयत्नशील है। वर्तमान समय में इस समस्या का समाधान सरकार का उत्तरदायित्व बन गया है और सरकार भी इसे एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में मानकर इसके समाधान हेतु सतत प्रयास कर रही है। इस राष्ट्रीय समस्या के समाधान का उत्तरदायित्व सरकार अपने ऊपर लेकर योजनाबद्ध तरीके से प्रयास कर रही है। विभिन्न योजनाओं में इस दिशा में जो प्रयास किये गये हैं, उनका विवरण अधोलिखित है :-

प्रथम पंचवर्षीय योजना

भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना कृषि प्रधान योजना थी। इस योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता कृषि क्षेत्र को दी गयी क्योंकि जिस समय योजना आरंभ की गयी थी उस समय खाद्यान्न समस्या अपने भयंकर रूप में विद्यमान थी। प्रथम योजना में बेरोजगारी की स्थिति पर विशेष ध्यान

नहीं दिया गया परन्तु योजना के मध्य में योजना आयोग को इस समस्या पर ध्यान देने के लिए विवश होना पड़ा । कोरिया की लड़ाई के बाद काम चाहने वालों की संख्या में वृद्धि हुई और दिसम्बर 1953 में रोजगार चाहने वालों की संख्या रोजगार कार्यालय की जीवित पंजिका के अनुसार लगभग 5 लाख 12 हजार तक पहुंच गयी थी । अतः बेरोजगार लोगों को काम देने हेतु योजना में संशोधन किया गया । ऐसी आपात्कालीन योजनाएं सम्मिलित की गयीं जिनमें रोजगार के सृजन को प्रोत्साहन मिले । आरंभ में प्रथम योजना में कृषि के अलावा अन्य क्षेत्रों में 55 लाख लोगों को काम उपलब्ध कराने का लक्ष्य था ।

योजनावधि में एक दस-सूत्रीय कार्यक्रम भी चलाया गया और साथ में अन्य योजनाएं भी । इसके फलस्वरूप प्रथम योजना के लिए निर्धारित लक्ष्य लगभग प्राप्त हो गये थे किन्तु इस योजनावधि में काम करने वालों की संख्या जितनी बढ़ी थी उसे देखते हुए लक्ष्य अपर्याप्त था । बाद में बेरोजगारी की स्थिति और बिगड़ी तथा 1951 से 1956 की अवधि में रोजगार कार्यालय में बेरोजगारों की संख्या 7 लाख 5 हजार हो गयी थी ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

द्वितीय योजना के आरंभ में अस्थायी बेरोजगारी को छोड़कर, जिनका होना अपरिहार्य है, लगभग 25 लाख लोगों के बेरोजगार होने का अनुमान लगाया गया था । कृषि श्रम जांच समिति के आधार पर गांवों में बेरोजगारों की संख्या का अनुमान 28 लाख लगाया गया था तथा रोजगार

प्रदान करना योजना के प्रमुख चार उद्देश्यों में से था । द्वितीय योजना के आरम्भ में 53 लाख लोगों के बेरोजगार होने का अनुमान लगाया गया था जिनमें से 25 लाख शहरों में तथा 28 लाख गांवों में थे । यह भी अनुमान लगाया गया था कि द्वितीय योजना में रोजगार चाहने वालों की संख्या एक करोड़ हो जायेगी । पूर्ण रोजगार देने के लिए लक्ष्य पूर्ति हेतु द्वितीय योजना की अवधि में एक करोड़ पचास लाख से अधिक लोगों को रोजगार देना आवश्यक था । यह स्वीकार किया गया कि योजनावधि में बढ़ती हुई बेकारी को रोकने के लिए कम से कम उन लोगों को, जो प्रतिवर्ष काम पाने के लिए तैयार हो जाते हैं, काम दिलाने का प्रयास करना चाहिए ताकि बेरोजगारी की स्थिति जहाँ की तहाँ रोकी जा सके और अतिरिक्त बेरोजगारी न बढ़ सके । अतः द्वितीय पंचवर्षीय योजना में एक करोड़ लोगों को रोजगार प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया था । यह भी अपेक्षा की गयी कि सिंचाई,सामुदायिक विकास ग्राम एवं लघु उद्योगों आदि कार्यक्रमों के जरिये अर्द्ध बेरोजगारों को कुछ राहत प्राप्त होगी । इस योजना के तहत शिक्षित बेरोजगारों के लिए कुछ विशेष योजनाएं बनायी गयीं जैसे कार्य-सह-अभिस्थापन केन्द्रों, सहकारी भार यातायात, उत्पादन केन्द्रों आदि की स्थापना ।

प्रथम एवं द्वितीय योजना में रोजगार के अवसर आदि अर्जित करने में काफी प्रयत्न के बावजूद भी उसकी समाप्ति पर देश भर में अनुमानतः 90 लाख लोग बेरोजगार थे, जिन्हें रोजगार प्राप्त करने हेतु तीसरी योजना तक प्रतीक्षा करनी पड़ी । इन लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने का कार्य तीसरी योजना और उसके बाद की योजनाओं पर छोड़ा गया ।

तृतीय पंचवर्षीय योजना

तीसरी पंचवर्षीय योजना में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने हेतु विशेष प्रयास किये गये । इस योजना का उद्देश्य एक करोड़ 40 लाख लोगों को गैर कृषि क्षेत्र में और 35 लाख लोगों को कृषि और उसकी सहायक गतिविधियों में रोजगार उपलब्ध कराना था । योजना के अन्तिम वर्ष में ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमों द्वारा गांवों में योजना के अन्तिम वर्ष तक 25 लाख व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी । परन्तु यह कार्य मुख्यत: अर्द्ध बेरोजगारों को राहत देने के रूप में ही था । ग्रामीण और लघु उद्योगों, उनकी उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग, ग्रामीण औद्योगीकरण, ग्रामीण विद्युतीकरण, यातायात आदि से सम्बन्धित कार्यक्रमों को रोजगार के अवसर निर्मित करने की दृष्टि से बहुत महत्त्व दिया गया । तीसरी योजना में इतनी संख्या में रोजगार का सृजन नहीं किया जा सका जो जनसंख्या वृद्धि, ग्राम क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या के स्थानान्तरण तथा शिक्षा विकास से उत्पन्न रोजगार के सुअवसरों की कुल मांग को पूरा करती । योजना के प्रारंभ में 90 लाख बेरोजगार पहले से ही मौजूद थे । अनुमान यह लगाया गया था कि जनसंख्या वृद्धि होने पर योजनावधि में बेरोजगारों की संख्या 2.5 करोड़ होगी । तृतीय योजना में रोजगार के सृजन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका । इस प्रकार तीसरी योजना रोजगार चाहने वालों को रोजगार प्रदान करने में असमर्थ रही । तृतीय योजना में रोजगार सम्बन्धी नीति निम्नलिखित प्रमुख बातों को सम्मिलित किया गया :-

(1) ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योग धन्धों का विकास किया जाय जिसके लिए ग्रामीण विद्युतीकरण और ग्रामीण औद्योगीकरण की शक्तियों पर

अधिक बल दिया गया ।

(2) मेड़बन्दी, मृदा संरक्षण, वनीकरण, सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण, भूमि पुनरुद्धार आदि कार्य हाथ में लेकर व उनमें श्रम गहन पद्धतियों का प्रयोग करके ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम संगठित किये जायें जिससे लगभग 25 लाख लोगों को साल भर में सात दिन तक व्यवस्था करना संभव हो सके ।

(3) बेरोजगारी प्रभाव न फैले तथा संकुचित रहे इसके लिए स्थानीय स्थितियों के अनुसार बेरोजगारी की समस्या का समाधान जिला तथा विकासखण्ड स्तर पर की जाय ।

(4) भारत में प्रथम योजना से लेकर वार्षिक योजनाओं की अवधि तक बेरोजगारी का अनुमान अधोलिखित सारिणी द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है :-

सारिणी संख्या-5:।

भारत में बेरोजगारी के अनुमान

(लाख व्यक्ति)

विवरण	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	वार्षिक योजनाएं
1-योजना के आरंभ में श्रम शक्ति	1852	1970	2150	2200
2-योजनाकाल के दौरान श्रम शक्ति में वृद्धि	90	118	170	140

(क्रमशः अगले पृष्ठ पर)

3-योजना के आरंभ के समय अवशिष्ट बेरोजगारी	33	53	71	96
4-कुल (2+3)	123	171	241	236
5-अतिरिक्त स्थापित नौकरियाँ	70	100	145	414
6-योजना के अंत में अवशिष्ट बेरोजगारी	53	71	96	220 से 230
7-बेरोजगारी, कुल श्रम शक्ति के प्रतिशत के रूप में	2•9	3•6	4•5	9•6

(स्रोत:- रिपोर्ट आफ कमेटी आन इम्प्लायमेण्ट, 1973)

सारिणी से स्पष्ट है कि पंचवर्षीय योजनाएं पूर्ण रोजगार का उद्देश्य प्राप्त करने में असमर्थ रही हैं। योजना के बढ़ते कदम के साथ बेरोजगारी भी बढ़ती गयी है। प्रथम योजना के अन्त में केवल 2•3 प्रतिशत व्यक्ति बेरोजगार थे, द्वितीय योजना के अन्त में 3•6 प्रतिशत, तृतीय योजना के अन्त में 4•5 प्रतिशत और वार्षिक योजनाओं की समाप्ति पर यह प्रतिशत बढ़कर 9•6 हो गया जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि बेरोजगारी की समस्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी है।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

योजना के प्रारंभ में लगभग 140 लाख लोगों के बेरोजगार होने का अनुमान लगाया गया था । इसके पूर्व की तीन योजनाओं में बेरोजगारी की समस्या के समाधान हेतु पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा सका । बेरोजगारी की समस्या की ओर विशेष ध्यान इस योजना से दिया जाने लगा । इस योजना में पुरानी परिपाटी समाप्त करके निम्नलिखित कार्यक्रमों द्वारा रोजगार सम्बन्धी अवसरों में वृद्धि पर बल दिया गया है ।

(1) श्रम साध्य योजनाओं पर अधिक बल
(2) कृषि और गैर कृषि क्षेत्र में तीव्र गति से वृद्धि
(3) कृषि आधारित उद्योगों का विस्तार, ग्रामीण विद्युतीकरण आदि।
(4) शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन आदि सेवाओं का विस्तार
(5) वाणिज्य, व्यापार व वित्तीय क्रियाओं के क्षेत्र में विस्तार
(6) व्यवस्थित उद्योगों और खनन उद्योगों में वृद्धि ।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना

पांचवीं योजना में रोजगार सृजन के महत्व को सही परिदृष्टि में रखा गया । इसमें इस बात को स्पष्ट किया गया कि बेकार श्रम शक्ति के उपयोग से विकास क्षेत्र में भारी मदद मिलेगी । बेरोजगार श्रमिकों के प्रयोग से एक ओर पूंजी-सम्पत्तियों का निर्माण हो सकेगा और यह उत्पादन वृद्धि के लिए सहायक सिद्ध होगा और दूसरी ओर, इन श्रमिकों के काम-काज के

फलस्वरूप अन्य कार्यों को बढ़ावा मिलेगा । साथ ही असमानताओं में कमी लाने में सहायता मिलेगी । इस महत्व को ध्यान में रखते हुए पाँचवीं योजना में रोजगार बढ़ाने के लिए विशेष कार्यक्रम अपनाये गये । पाँचवीं योजना के समय से ही ग्रामीण रोजगार के पुरजोर स्कीम तथा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम भी चालू है । ग्रामीण रोजगार की पुरजोर स्कीम के अन्तर्गत प्रत्येक जिले में हर वर्ष औसतन 1000 व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रोजगार दिलाने का लक्ष्य रखा गया । इसी प्रकार न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्यक्ष रोजगार दिलाने के लिए ग्रामीण सड़कों का निर्माण, ग्रामीण क्षेत्रों में पीने के लिए जलापूर्ति कार्यक्रम और शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों आदि के निर्माण कार्य की व्यवस्था है ।

इसी क्रम में रोजगार गारण्टी योजना तथा काम के बदले अनाज कार्यक्रम सर्वप्रथम 1974 में महाराष्ट्र सरकार द्वारा क्रियान्वित किया गया । जहाँ एक ओर रोजगार गारण्टी योजना रोजगार प्रदान करने के सम्बन्ध में गारण्टी देती है वहीं दूसरी ओर दूसरी स्कीम में उपभोग वस्तुओं को पूँजीगत परिसम्पत्तियों में बदली की क्षमता है । रोजगार गारण्टी योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में साधारण श्रमिकों को, जो रोजगार की तलाश में हैं तथा बेरोजगार और अल्प रोजगार की स्थिति में हैं, उनको निश्चित मजदूरी पर रोजगार देने की व्यवस्था की जाती है । ऐसे लोगों को गाँवों में स्थायी परिसम्पत्तियों के निर्माण कार्य में लगाया जाता है जैसे कि सड़कें, कुएँ, बाँध, तालाब, भूमि विकास आदि । साधारणतया इस स्कीम में मजदूरी की दर बाजार में प्रचलित मजदूरी दर से काफी नीची रखी जाती है जिससे कृषि कार्यों में लगे लोग इसकी ओर न खिंच आवें ।

महाराष्ट्र में यह योजना काफी सफल रही । इसके द्वारा गांवों के अपेक्षाकृत अधिक कमजोर और जरूरतमन्द लोगों को रोजगार मिलने में बड़ी मदद मिली है । रोजगार और आय के सृजन से राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों के अति निर्धन वर्गों की स्थिति जो तेजी से और बिगड़ती जा रही थी,उस पर रोक लगी है और थोड़ा बहुत उसमें सुधार भी हुआ है । साथ ही इसके सहारे गांवों में आधारिक संरचना सम्बन्धी सुविधाएं बढ़ी हैं, वहीं सार्वजनिक और निजी परिसम्पत्तियों को बढ़ावा मिला है और इस प्रकार ग्रामीण विकास कार्य आगे बढ़ा है । इस दृष्टि से रोजगार गारण्टी योजना सहायक व महत्वपूर्ण उभरती है और इसे अन्य प्रदेशों में विस्तार करने की आवश्यकता है । इस सम्बन्ध में एक बात पर बल देना आवश्यक जान पड़ता है कि इस योजना के अन्तर्गत मजदूरी दर में वृद्धि की जानी चाहिए जिससे कि श्रमिकों को गरीबी रेखा से उपर उठाया जा सके । आय वितरण में असमानता को कम करने एवं उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए यह वांछनीय है कि गांवों की परिसम्पत्तियों में ऐसे लोगों को यथासम्भव हिस्सा दिलाया जाये ।

रोजगार गारंटी के संदर्भ में केन्द्रीय सरकार द्वारा चलायी गयी ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी स्कीम के अन्तर्गत भूमिहीन श्रमिकों को काम के मौसम में न्यूनतम रोजगार देने की व्यवस्था है । यह स्कीम उन इलाकों के लिए है जहां भूमिहीन श्रमिक भारी संख्या में हैं । बिहार राज्य को इस सन्दर्भ में सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है ।

छठीं पंचवर्षीय योजना

रोजगार के सम्बन्ध में छठीं योजना ने साफ तौर पर स्वीकार किया है कि रोजगार के क्षेत्र में स्थिति बहुत ही अधिक असंतोषजनक है । छठीं योजना

में यह भी स्वीकार किया गया कि पिछले दशक के दौरान बेरोजगार और अल्प बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई । अल्प रोजगार को कम करने के लिए लाभ पूर्ण रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की वृद्धि-दर को बढ़ाना और सामान्य स्थिति के आधार पर जिसे आम तौर पर खुली बेरोजगारी कहा जाता है, बेरोजगारी को कम करना मुख्य लक्ष्य था ।[1] योजना आयोग ने अनुमान लगाया कि 1980-85 के दौरान श्रम-शक्ति में 343 लाख की शुद्ध वृद्धि होगी जिसमें से 96 लाख शहरी क्षेत्र में और 247 लाख ग्रामीण क्षेत्रों में होगी । अतः श्रम शक्ति की वार्षिक वृद्धि दर 2•43 प्रतिशत आंकी गयी और यही जनसंख्या की वर्तमान वृद्धि-दर भी है ।

छठीं योजना के आरंभ में 120 लाख व्यक्ति अवशिष्ट बेरोजगार थे । 1980-85 के दौरान श्रम शक्ति में 343 लाख नव प्रवेशकों का अनुमान लगाया गया । इस प्रकार कुल बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या 463 लाख होने का अनुमान किया गया । छठीं योजना में यह अनुमान लगाया गया कि 1980-85 की अवधि में 343 लाख मानव वर्षों का अतिरिक्त रोजगार कायम करने का लक्ष्य रखा गया । छठीं योजना के अन्त में 120 लाख व्यक्ति अवशिष्ट बेरोजगारों के रूप में रह जाने का अनुमान लगाया गया था । छठीं योजना में यह उल्लेख किया गया कि "वर्तमान अनुमानों से पता चलता है कि मानक मानव-वर्ष के आधार पर छठीं योजना में रोजगार में 4•17 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि होगी अर्थात् इस अवधि में श्रम शक्ति की 2•54 प्रतिशत वार्षिक

1- सिक्स्थ फाइव ईयर प्लान, प्लानिंग कमीशन (1980-85), पृ0-53•

की वृद्धि-दर की तुलना में काफी अधिक है। परम संख्या के रूप में इसका अर्थ है 340 लाख मानव वर्ष अतिरिक्त रोजगार कायम करना होगा जो श्रम-शक्ति में वृद्धि के बराबर ही होगा जिसे इस अवधि में 15 वर्ष की आयु और उससे ऊपर वाले व्यक्तियों के रूप में परिभाषित किया गया है।"[1]

भारत में संगठित क्षेत्र में रोजगार में वृद्धि का एक सामान्य परिचय अधोलिखित सारिणी द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि सारिणी में दिये गये आँकड़े नवीनतम नहीं हैं फिर भी रोजगार की दिशा में किये गये प्रयासों और उससे प्राप्त प्रतिफल का ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अवश्य हैं :-

सारिणी संख्या-5:2

भारत में संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि

वर्ष	रोजगार प्राप्त श्रमिकों की संख्या (लाख में)			प्रतिशत भाग	
	सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	कुल	सरकारी	निजी
1961	70•50	50•40	120•90	58	42
1966	93•78	68•10	161•88	58	42
1969	100•95	65•30	166•25	61	39
1972•	113•05	67•69	180•74	63	37
1974	124•86	67•94	192•80	65	35

(क्रमशः अगले पृष्ठ पर)

1977	138•76	68•67	207•40	67	33
1980	150•78	72•37	223•15	68	32
1981	154•84	73•95	228•79	68	32
1984	168•66	73•43	242•09	70	30
रोजगार वार्षिक वृद्धि-दर					
1961-66	5•9	6•2	6•0		
1966-69	2•6	-1•3	1•0		
1969-74	4•4	0•8	3•3		
1974-79	3•8	1•2	2•8		
1979-84	2•3	0•4	1•7		
1961-84	3•9	1•6	3•1		

(स्रोत: रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बुलेटिन, फरवरी 1975 और भारत सरकार की आर्थिक समीक्षा 1985-86 कम्प्यूटेड)

सारिणी से स्पष्ट है कि सरकारी प्रयासों के फलस्वरूप रोजगार सृजन के क्षेत्र में सरकारी क्षेत्र के प्रतिशत भाग में वृद्धि हुई है यद्यपि यह वृद्धि अत्यन्त मन्द गति से हुई है और निजी क्षेत्र का प्रतिशत भाग निरन्तर घटता गया है। 1961 में निजी क्षेत्र का भाग रोजगार सृजन के क्षेत्र में 42 प्रतिशत जो 1984 में घटकर 30 प्रतिशत रह गया तथा सरकारी क्षेत्र का प्रतिशत भाग जो 1961 में 58 था वह 1984 में बढ़कर 70 प्रतिशत हो गया।

क्षेत्रानुसार रोजगार जनन के आंकड़ों पर ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट होगा कि कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं द्वारा कुल अतिरिक्त रोजगार का 43•5 प्रतिशत उपलब्ध कराने का लक्ष्य छठीं योजना में रखा गया । इसके बाद आकार की दृष्टि से सेवा क्षेत्र का स्थान आता है अर्थात कुल का 33•3 प्रतिशत द्वितीयक क्षेत्र अर्थात विनिर्माण, खनन एवं निर्माण में अतिरिक्त रोजगार का केवल 23 प्रतिशत कायम करने का लक्ष्य रखा गया ।

अवशिष्ट बेरोजगारी और 1980-85 के दौरान श्रम शक्ति में शुद्ध वृद्धि का विवरण अधोलिखित सारिणी से स्पष्ट है :-

सारिणी संख्या-5:3

(लाख में)

1-1980 में अवशिष्ट बेरोजगार	120•2
2-1980-85 के दौरान श्रम-शक्ति में शुद्ध वृद्धि	342•4
3-कुल बेरोजगार (2 + 3)	462•6
4-1980-85 में संभावित अतिरिक्त कुल रोजगार	342•8
5-1985 में अवशिष्ट बेरोजगार	119•8

(स्रोत:छठीं पंचवर्षीय योजना,1980-85)

छठीं योजना में रोजगार नीति को दो दिशाओं में प्रत्यारोपित किया गया--(1) खुली बेरोजगारी का आकार कम करना और (2) अल्प रोजगार की मात्रा को घटाना । इन उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए आयोजकों ने यह स्वीकार किया कि इन समस्याओं का स्थायी समाधान तो तीव्र एवं रोजगार प्रेरित आर्थिक विकास के ढाँचे से ही प्राप्त हो सकता

है, कमजोर वर्गों के कल्याण के लिए विशिष्ट और उचित उपाय करने अनिवार्य हैं ।

छठीं योजना में एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख यह किया गया कि संगठित क्षेत्र की जज्ब करने की शक्ति बहुत ही कम है क्योंकि यह श्रम-शक्ति में वृद्धि करके केवल 12 प्रतिशत के लिए ही रोजगार उपलब्ध करा सकता है । श्रम शक्ति के शेष सदस्यों को कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्र और फार्म भिन्न क्रियाओं में रोजगार खोजना पड़ता है । इन क्षेत्रों में अल्प रोजगार एवं रोजगार भारी मात्रा में विद्यमान है । अतः स्व -रोजगार के प्रोग्रामों पर बल दिया गया जिससे इन्हें कृषि, ग्राम तथा लघु उद्योगों एवं सम्बद्ध क्रियाओं और फार्म भिन्न व्यवसायों में लागू किया जा सके । आयोजकों ने विकास की ऐसी विधि पर बल देने का विचार किया जिससे श्रम का अपेक्षाकृत अधिक उपयोग हो । इस उद्देश्य से यह स्वीकार किया गया कि यंत्रीकरण का उपयोग इस प्रकार किया जाय जिससे श्रम के जज्ब करने की शक्ति पर दुष्प्रभाव न पड़े । छठीं योजना में यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि जहाँ कहीं वस्तुओं या सेवाओं के उत्पादन के बारे में स्पष्ट विकल्प न हो, श्रम-प्रधान तकनीकों एवं प्रक्रियाओं को प्राथमिकता देनी चाहिए, किन्तु यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि उत्पादिता पर इसका दुष्प्रभाव न पड़ने पाये ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि छठीं योजना में कई महत्वपूर्ण/ लाभ भोगी प्रेरक प्रोग्रामों के अधीन रोजगार सृजन की दिशा में प्रगति की गयी जो इस प्रकार है ।

राष्ट्रीय ग्राम रोजगार प्रोग्राम के अन्तर्गत भृत्ति-रोजगार 3000 से 4000 लाख मानव दिन प्रतिवर्ष हो गयी । राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम के पुनरावलोकन से पता चलता है कि 1620 करोड़ रू0 के प्राविधान से 1984-85 में इस कार्यक्रम द्वारा कुल 17,700 लाख मानव दिवस रोजगार कायम हुआ है अर्थात 3,540 लाख मानव दिवस की वार्षिक औसत । ग्राम भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम जो कि 1984 में आरम्भ किया गया उसके अनुसार 600 करोड़ रू0 के संसाधनों के प्रावधान से योजना के अन्तिम दो वर्षों अर्थात 1983-84 के दौरान 3650 लाख मानव दिवस रोजगार सृजन कर लेने का लक्ष्य रखा गया था जिसके विपरीत 2600 लाख मानव दिवस रोजगार का सृजन किया जा सका । समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 150 लाख परिवारों को उत्पादक परिसम्पत्ति और सहायता देने का प्रस्ताव रखा गया । छठीं योजना में विशिष्ट लाभभोगियों को उधार के रूप में बैंकों द्वारा 1500करोड़ रूपये की राशि का प्राविधान किया गया। योजना द्वारा निर्धारित लक्ष्य 4500 करोड़ रूपये के स्थान पर वास्तविक व्यय 4762 करोड़ रूपये किया गया । ग्राम विकास मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (1985-86) के अनुसार इस योजना के अन्तर्गत 165•6 लाख परिवारों को लाभ पहुंचाया गया । इस योजना में 750 लाख लाभभोगी परिवारों में से अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों सम्बन्धी लाभभोगी परिवारों की संख्या 45 लाख है । स्व-रोजगार के लिए ग्राम युवक प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा 940 लाख ग्राम युवकों को प्रशिक्षण दिलाने में सहायता दी गयी और उनमें से लगभग 50 प्रतिशत युवकों को स्वरोजगार आरम्भ कराया गया ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि छठीं योजना में रोजगार लक्ष्यों की प्राप्ति अन्य योजनाओं की तुलना में अवश्य उल्लेखनीय रही । राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 32वें सर्वेक्षण के अनुसार सातवीं योजना 139 लाख व्यक्तियों के अवशिष्ट रोजगार के साथ आरम्भ होगी, परन्तु राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 38वें सर्वेक्षण के अनुसार मार्च 1985 में सातवीं योजना को 92 लाख व्यक्तियों के अवशिष्ट बेरोजगारों के साथ आरम्भ करना होगा ।

छठीं योजना तक की सभी योजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि छठीं योजना अन्य सभी योजनाओं की अपेक्षा अधिक व्यापक और महत्वाकांक्षी थी । इस योजना में रोजगार के लिए किये गये प्रयास वास्तव में कमोबेश रूप में व्यावहारिक दृष्टि से सत्य सिद्ध हुए ।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

सातवीं योजना ने सामान्य स्थिति की बेरोजगारी के लिए दो अनुमान दिये हैं - यह सबसे अधिक व्यापक अवधारणा है और इस अनुमान के लिए छठीं योजना की कार्यविधि को अपनाया गया । एक अनुमान राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 32वें सर्वेक्षण पर और दूसरा इसके 38वें सर्वेक्षण पर आधारित रहा । इस बात का उल्लेख कर देना महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 38वें सर्वेक्षण में, जैसा कि योजना ने स्वयं स्वीकार किया कि इसके द्वारा प्रस्तुत आंकड़े अस्थिर और अस्थायी हैं । यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि 1983-84 का वर्ष कृषि उत्पादन का सबसे उत्तम वर्ष रहा और इसीलिए कृषि

में अधिक रोजगार कायम हो जाना चाहिए था परन्तु राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 38वें सर्वेक्षण के आंकड़ों को अवशिष्ट बेरोजगारी की गणना के लिए प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए था, क्योंकि इस नमूने में थोड़े ही राज्य लिए गये हैं। दूसरे, यह भ्रामक है और इससे कोई स्पष्ट अनुमान नहीं लगाये जा सकते और न इससे कोई महत्वपूर्ण प्रवृत्ति ही स्थापित हो पाती है।

सन् 1983 में शहरी बेरोजगारी की दर 6•35 प्रतिशत थी और इसके विरुद्ध ग्रामीण बेरोजगारी की दर 2•15 प्रतिशत थी। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की बहुत ही निम्न दर की विद्यमानता के कारण राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 38वें सर्वेक्षण के अनुसार राज्यों की समग्र बेरोजगारी 3•04 प्रतिशत थी। दुर्भाग्यवश पुरुषों में बेरोजगारी की दर 3•2 प्रतिशत थी जब कि स्त्रियों में यह 2•65 प्रतिशत थी। इस सर्वेक्षण की एक और उपलब्धि यह है कि 15 से 20 वर्ष के आयु वर्ग के नव प्रवेशकों में बेरोजगारी की दर बहुत ऊँची थी अर्थात 6•54 प्रतिशत। यह दर शहरी युवकों में 13•4 प्रतिशत तक ऊँची है जब कि ग्रामीण युवकों में 4•54 प्रतिशत है। इन सभी का विस्तृत विवरण एक सारिणी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। सारिणी अगले पृष्ठ पर अंकित है।

सारिणी संख्या 5:4

मार्च 1985 में सामान्य स्थिति की बेरोजगारी के अनुमान

(लाख में)

विवरण	आयु वर्ग		
	5-14	15-29	30-59
1-राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 32वां सर्वेक्षण			
(अ)ग्रामीण	78•0	73•3	72•3
(ब)शहरी	60•9	59•2	58•7
(स)कुल बेरोजगार (अ+ ब)	138•9	132•5	131•0
(द) कुल श्रम शक्ति	3054•0	2678•2	2698•1
(य)बेरोजगारी दर	5•4	4•6	4•86
2-राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 38वां सर्वेक्षण			
(क)ग्रामीण	49•7	46•7	45•9
(ख)शहरी	42•3	41•0	40•8
(ग)कुल बेरोजगार	92•0	87•7	86•7
(घ)कुल श्रम-शक्ति	3054•0	2878•2	2698•1
(च)बेरोजगारी की दर	3•01	3•04	3•21

(स्रोत : सातवीं पंचवर्षीय योजना - 1985-90, योजना आयोग, भारत सरकार प्रकाश,खण्ड-2 ,पृ0-113)

उपर्युक्त संदर्भ में 38वें राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार आवास, लिंग, एवं आयु वर्ग के आधार पर सामान्य बेरोजगारी की दरों का विवरण अधोलिखित सारिणी द्वारा प्रस्तुत किया गया है:-

सारिणी संख्या-5:5

आवास, लिंग एवं आयु वर्ग के अनुसार सामान्य

स्थिति की बेरोजगारी की दरें

(जनवरी-जून 1983)

आयु वर्ग	ग्रामीण	शहरी	पुरुष	स्त्रियाँ	कुल
5-14	2•17	6•79	3•37	1•63	2•68
15-29	4•54	13•39	6•97	5•43	6•54
30-44	0•66	1•51	0•81	0•98	0•86
45-59	0•40	1•03	0•47	0•69	0•53
60 से ऊपर	0•52	0•88	0•51	0•85	3•04
सभी आयु वर्ग	2•15	6•35	3•20	2•65	3•04

(नोट: ये दरें बेरोजगारी में तदनुसार श्रम शक्ति का प्रतिशत है)

(स्रोत: सातवीं योजना खण्ड-2)

सातवीं योजना की पूर्व संध्या पर पांच वर्ष की आयु के ऊपर के लोगों में अवशिष्ट बेरोजगार के 92 लाख होने का अनुमान किया गया। यह भी देखा गया कि इस आयु वर्ग में श्रम शक्ति की कुल वृद्धि 394 लाख होगी।

इस प्रकार सातवीं योजना में 476 लाख व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने की आवश्यकता का अनुमान किया गया । सकल देशी उत्पादन की 5 प्रतिशत वृद्धि दर और समाज के गरीब वर्गों को स्व-रोजगार तथा भृत्ति रोजगार दिलाने के उद्देश्य से चलाये गये "गरीबी हटाओं" प्रोग्राम के अन्तर्गत रोजगार प्रभाव को देखते हुए यह कहा गया कि "3.99 प्रतिशत प्रतिवर्ष की निहित वृद्धि दर के साथ सातवीं योजना के दौरान 4036 लाख मानक मानव वर्षों तक के अतिरिक्त रोजगार सृजन की प्रत्याशा है । राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम(एन आर ई पी) और ग्राम भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (आर्ई एल ई जी पी) के विशिष्ट रोजगार कार्यक्रमों द्वारा 1989-90 के दौरान 203 लाख मानक मानव वर्ष रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा ।समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम(आई आर डी पी) के द्वारा 30 लाख मानक मानव वर्ष रोजगार की सम्भावना है जिसका संकेन्द्रण मुख्यतः कृषि एवं अन्य क्षेत्रों में है ।"[1]

सातवीं योजना के दौरान बेरोजगारी की वृद्धि दरों का पूर्वानुमान किया गया और उसी आधार पर नीतियों निर्धारित करने का प्रयास किया गया । सातवीं योजना में विभिन्न क्षेत्रों में बेरोजगारी की वृद्धि के जो पूर्वानुमान लगाये गये हैं, उनका विवरण सारिणी संख्या- 5:6 में दिया गया है जो अगले पृष्ठ पर अंकित है ।

सारिणी संख्या-5:6 में दिये गये क्षेत्रानुसार आंकड़ों से पता चलता है कि सातवीं योजना के दौरान कृषि ही रोजगार जनन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसके द्वारा 180 लाख मानक मानव वर्ष रोजगार दिलाये जाने की सम्भावना व्यक्त की गयी अर्थात जो कुल अतिरिक्त रोजगार जनन का 45 प्रतिशत होगा ।

सारिणी संख्या-5:6

सातवीं योजना के दौरान बेरोजगारी की

वृद्धि के पूर्वानुमान

क्षेत्र	रोजगार-लाख मानक मानव वर्षों में		वृद्धि	रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर
	1984-85	1989-90		
1-कृषि	961	1141	180	3·49
2-खनन	12	15	3	4·32
3-विनिर्माण	268	335	67	4·55
4-निर्माण	104	126	22	3·90
5-रेलवे	10	15	5	7·76

(स्रोत: सातवीं योजना, 1985-90, पृ0-115)

विनिर्माण एवं खनन एक और महत्वपूर्ण रोजगार जनन का स्रोत है जो कि औद्योगिक क्षेत्र से सम्बन्धित है, इसके द्वारा 70 लाख मानक मानव वर्ष अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराने की प्रत्याशा 17·4 प्रतिशत है। इस विषय में सातवीं योजना में औद्योगिक विकास के तकनीक में उन्नति, उपकरणों और आधुनिकीकरण, परिसम्पदों का बेहतर उपयोग और कुशलता में वृद्धि पर मुख्यतः ध्यान दिये जाने का लक्ष्य रखा गया। इस योजना में उर्वरकों, कीटनाशकों और आवश्यक कृषि ढांचे द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि बनाये

रखने के साथ-साथ भूत्ति वस्तुओं के उत्पादन और जन सामान्य की खपत की आवश्यकता की वस्तुओं जैसे चीनी, सब्जियां, तेल, दवायें, कपड़ा एवं कागज और साधारणतया प्रयोग में आने वाली चिरस्थायी उपभोक्ता वस्तुओं की बड़ी मात्रा में वृद्धि पर बल दिये जाने का प्राविधान किया गया। नवोदित उद्योगों में इलेक्ट्रानिक्स उद्योग के विकास पर विशेष बल दिया गया जो कि विशेषकर लघु क्षेत्र में बड़ी मात्रा में रोजगार उपलब्ध करा सकने की क्षमता रखता है। स्वचालित उद्योग एक ऐसा क्षेत्र है जिसके सातवीं योजना में महत्वपूर्ण वृद्धि प्राप्त करने की आशा की गयी। यह आशा की गयी कि इस उद्योग के विकास से सहायक एवं सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसरों की बड़ी मात्रा में उपलब्धि होगी। इसके साथ ही भूत्ति वस्तुओं के उत्पादन में भी बड़ी मात्रा में वृद्धि के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के लिए अतिरिक्त रोजगार को बिना स्फीति के बनाये रखना सम्भव होगा।[1]

अधःसंरचना क्षेत्रों जैसे-बिजली, रेलवे एवं यातायात तथा संचार के अन्य साधनों द्वारा भी योजना के दौरान 28 लाख मानव वर्ष रोजगार उपलब्ध होने की आशा की गयी। इसके अतिरिक्त आवास भी रोजगार प्रधान क्षेत्र है जिसके द्वारा 22 लाख मानक मानव-वर्ष की उपलब्धि की आशा की गयी। अन्य सेवाओं का योगदान 99 लाख मानक मानव वर्ष होगा अर्थात कुल रोजगार उपलब्धि का 24.5 प्रतिशत।

1- सातवीं पंचवर्षीय योजना, पृ0-116

सातवीं योजना की रोजगार नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन

रोजगार की रूप-रेखा तैयार करते हुए सातवीं योजना प्रलेख में कहा गया कि बेरोजगारी की समस्या तथा उसके साथ जुड़ी हुई गरीबी की समस्या का हल अन्ततः समग्र आर्थिक वृद्धि की दर को ऊँचा उठाने से ही हो पायेगा ।[1] चूँकि सकारात्मक वृद्धि नीति भी आवश्यक रोजगार को उपलब्ध कराने के लिए समर्थ नहीं होगी, इसलिए योजना को इसकी पूर्ति के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम, भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम तथा शिक्षित बेरोजगारों को स्वरोजगार दिलाने के कार्यक्रम जैसे प्रत्यक्ष रोजगार कार्यक्रमों को चलाने का प्रयास करना होगा।

सातवीं योजना प्रलेख में बिल्कुल स्पष्ट किया गया कि "रोजगार जनन का अर्थ नहीं कि स्थगित तकनीक को अपनाया जाए । विश्व के तकनीकी परिवर्तनों की प्रवृत्ति से अर्थव्यवस्था को अलग कर लेना भी उचित नहीं होगा। उत्पादन प्रक्रिया में तकनीक सम्बन्धी उन्नति, आधुनिकीकरण और वैज्ञानिक प्रगति उत्पादिता में वृद्धि का मूल तत्व है, भले ही वह व्यवस्थित उद्योग, कृषि या छोटे उद्योग ही क्यों न हों ।"[2]

सातवीं योजना की रोजगार नीति की जिन कमजोरियों की ओर विश्लेषकों ने ध्यान आकृष्ट किया है, वे अंकित हैं :-

---

1-सातवीं पंचवर्षीय योजना, पृ0-117-18

2- वही, पृ0-2.

(1) छठीं योजना की उपलब्धि पर आधारित अनुमान बहुत ही संदिग्ध हैं और स्वभाव में अल्पानुमान भी हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण ने बेरोजगारी सम्बन्धी जो आंकड़े प्रस्तुत किये वे अस्थिर और अस्थायी थे। इसके विरूद्ध सी0बालकृष्णन् और मैल्कम आदिशेष्या का कहना है "मध्यावधि समीक्षा में योजना के प्रथम दो वर्षों की उपलब्धि 118.5 लाख मानव वर्ष आंकी गयी और दो वर्षों में विनिर्माण और निर्माण में रोजगार जनन में हुई कमी को देखते हुए और इस बात को भी दृष्टि में रखते हुए कि योजना का तीसरा वर्ष(1982-83) अकाल का वर्ष था,योजना पर पुनर्विचार करते हुए रोजगार लक्ष्य को कम करके 334.4 लाख मानव वर्ष कर दिया गया। जनसंख्या और श्रम शक्ति के विषय में अल्पानुमान के फलस्वरूप योजना प्रलेख के अनुसार योजना के अंत तक अवशिष्ट बेरोजगारी की मात्रा जैसा कि योजना में उल्लेख है, 120 लाख के बजाय लगभग 150 लाख मानव-वर्ष हो जायेगी।"[1]

(2) डा0बी0एन0कोठारी ने सातवीं योजना में रोजगार गणना में सम्भव असंगति की ओर ध्यान दिलाया है। उनका कहना है कि इस तथ्य की ओर भी ध्यान देना चाहिए जब कि कृषि क्षेत्र में कुल मूल्यवृद्धि की प्रगति 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से दिखायी गयी है परन्तु सातवीं योजना के दौरान रोजगार में तद्नुरूप वृद्धि 3.5 प्रतिशत होगी। इसके विपरीत कृषि भिन्न क्षेत्र में कुल मूल्य वृद्धि 6.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष और रोजगार में 4.5 प्रतिशत बढ़ोत्तरी होगी।

1-बालकृष्णन एण्ड मैल्कम आदि शेष्या-रिव्यू आफ ए मिडईयर रिव्यू आफ दि इकोनामी (1984), पृ0-85-86.

सातवीं योजना में दिये गये आँकड़ों के आधार पर बी०एन०कोठारी लिखते हैं कि " यह कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी अगर श्रम उत्पादिता कृषि क्षेत्र में कम हो जाये और कृषि भिन्न क्षेत्र में बढ़ जाये । यदि रोजगार के क्षेत्रानुसार लक्ष्य और सकल मूल्य वृद्धि के लक्ष्य प्राप्त कर भी लिये जाय तो भी कृषि में प्रगति मानक मानव वर्ष उत्पादिता कम होकर 7419 रु० से 7071 रूपये रह जायेगी और यह एक विरोधाभासी परिणाम होगा जिसके कार्य कुशलता एवं उत्पादिता प्रेरित योजना के लिए गूढ़ार्थ होंगें । या तो कृषि क्षेत्र में रोजगार के अल्प अनुमान लगाये गये हैं या फिर अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्र में उत्पादिता सत्य नहीं है । "[1]

सारिणी संख्या-5:7

सातवीं योजना के दौरान रोजगार एवं कुल मूल्य वृद्धि

वर्ष	अनुमानित रोजगार लाख मानक मानव वर्ष	कुल मूल्य वृद्धि करोड़ रु० में	कुल मूल्य वृद्धि प्रति मानक मानव-वर्ष (रुपये में)
कृषि क्षेत्र			
1984-85	961	71,298	7419
1985-90	1141	80,680	7071

(सारिणी अगले पृष्ठ पर क्रमशः)

1-बी०एन०कोठारी-पासिबल इनकंसिस्टेन्सी इन सेवेन्थ प्लान, इकोनामिक टाइम्स, अप्रैल 18,1986.

कृषि भिन्न क्षेत्र			
1984-85	906	1,22,130	12,480
1985-90	1130	1,66,200	14,780
अन्य			
1984-85	1867	1,93,438	10,360
1985-90	2271	2,86,881	10,871

(स्रोत: बी0एन0कोठारी- मासिक्ल इनवेस्टी स्टेंसी इन सेवेन्थ प्लान, इकोनामिक टाइम्स, अप्रैल, 18, 1986)

"ऐसा प्रतीत होता है कि जब छठीं योजना की तुलना में सातवीं योजना में कृषि में सकल मूल्य वृद्धि दर के लक्ष्य को कम रखा गया है परन्तु इस प्रकार के तदनुरूप कृषि क्षेत्र में रोजगार के अनुमान घटाए नहीं गये हैं। छठीं योजना के दौरान कृषि में सकल मूल्य वृद्धि दर 4•3 प्रतिशत आंकी गयी। यह सातवीं योजना में कम करके 2•5 प्रतिशत कर दी गयी है। छठीं योजना में रोजगार की वृद्धि दर 3•5 प्रतिशत आंकी गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि सातवीं योजना में भी कृषि में वही मूल्य दर अपनायी गयी है। कृषि में सकल मूल्य वृद्धि में वृद्धि के लक्ष्य में कमी के साथ रोजगार वृद्धि-दर के अनुमान में तदनुरूप कमी की जानी चाहिए थी। अगर ऐसा किया जाये तो बेरोजगारी की मात्रा में वृद्धि हो जायेगी।[1]

1-बी0एन0कोठारी-मासिक्ल इनवेस्टी स्टेंसी इन सेवेंथ प्लान, इकोनामिक टाइम्स, अप्रैल 18, 1986.

(3) सातवीं योजना के प्रलेख में यह मान्यता थी कि सिंचाई के विस्तृत प्रोग्राम से जिनमें छोटी सिंचाई का अधिकतर भाग होगा, छोटे किसानों की उत्पादिता में वृद्धि होगी और भाड़ा-श्रम एवं पारिवारिक श्रम की मांग में वृद्धि के फलस्वरूप ग्रामीण आय, ग्रामीण निर्धन वर्ग के पक्ष में परिवर्तित हो जायेगी । केवल कृषि के प्रोग्राम को विस्तृत कर देने से ही आय के पुनर्वितरण और रोजगार को विस्तृत नहीं किया जा सकेगा । यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि राज्य किस सीमा तक कृषि में चयनात्मक यंत्रीकरण की नीति को लागू कर पायेगा क्योंकि यह ही रोजगार वृद्धि की दर को निश्चित करेगा । प्रो०डी०टी०लाकड़ावाला ने कहा है " वर्तमान अध्ययन भी स्पष्ट रूप से इसी ओर संकेत करते हैं कि छोटे फार्मों में नई तकनीक के प्रयोग को सफल बनाना आवश्यक है । जैसा कि यह भली प्रकार विदित है कि इससे व्यवस्था के मुख्य मुद्दे जुड़े हुए हैं जिसमें छोटे किसानों की भू-अधिकार असुरक्षा को खत्म करना और उनके लिए उधार और उसके वितरण के ढंग को विस्तृत करना शामिल है । "[1] व्यवस्थापक सुधारों की अनुपस्थिति में विनियोग कार्यक्रम के होते हुए भी योजना मॉडलके अनुरूप रोजगार के लक्ष्यों की प्राप्ति में कमी रहेगी । यहां यह भी उल्लेख करना प्रासंगिक है कि योजना शिक्षित बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के लिए कोई स्पष्ट एवं विशिष्ट नीति प्रस्तुत नहीं करती ।

आयोजक इस समस्या का मांग के स्थान पर संभरण(पूर्ति) पक्ष से समाधान करने का विचार रखते हैं । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए

1-डी०टी०लाकड़ावाला-ग्रोथ, अनइम्प्लायमेण्ट एण्ड पावर्टी, 1977, पृ०-10.

उच्च शिक्षा के संस्थाओं में प्रवेश को नियंत्रित करने का विचार किया गया। तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की मांग विभिन्न क्षेत्रों में विनियोग और तकनीक के चयन से जुड़ी हुई है। वस्तुस्थिति तो यह है कि तकनीकी व्यक्तियों की मर्यादित वृद्धि की क्षमता भी नहीं हो पा रही है।

निष्कर्ष यह है कि सातवीं योजना में बेरोजगारी की समस्या को कम करने के लिए विभिन्न प्रयास किया किये गये हैं। सातवीं योजना में बेरोजगारी को कम करके आंका गया है। इस प्रकार सत्य को दबाने की नीति अल्पकाल के लिए राहत प्रदान कर सकती है,दीर्घकाल में यह समस्या पूरे बल के साथ फिर जोर से उभरेगी। अतः इस सम्बन्ध में संकेत करना आवश्यक है कि बेरोजगारी की समस्या आयोजकों के लिए सिरदर्द बनी रहेगी,यदि जनसंख्या और परिणामस्वरूप श्रम-शक्ति की वार्षिक वृद्धि 2·5 प्रतिशत बनी रहेगी। इसलिए जन्म दर को घटाने के लिए सक्रिय और स्थायी जनसंख्या नीति अपनानी होगी। बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए क्षमता को बढ़ाना अनिवार्य है और दूसरी ओर एक सक्रिय जनसंख्या नीति द्वारा आगामी वर्षों में श्रम-शक्ति में नव प्रवेशकों की बढ़ती हुई मात्रा को कम करना है। बेरोजगारी की समस्या को अल्पकाल में हल करना सम्भव नहीं,यह तो एक दीर्घकालिक समस्या है और इसके समाधान के लिए दो तरफा प्रयास वर्तमान समय की मांग है।

बिहार में बेरोजगारी की समस्या और इस सन्दर्भ में राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा किये गये उपायों को प्रस्तुत करना वर्तमान अध्ययन के संदर्भ में समीचीन जान पड़ता है।

बिहार राज्य और बेरोजगारी की समस्या तथा इस सन्दर्भ में किये गये सरकारी प्रयास

जहाँ तक आबदी का प्रश्न है, बिहार राज्य भारतीय प्रान्तों में उत्तर प्रदेश के बाद सर्वाधिक जनसंख्या वाला कृषि प्रधान राज्य है । इस राज्य की 87.53 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है । शहर की ओर रोजगार की दृष्टि से जनसंख्या के पलायन को रोकने के लिए और विशेषकर कृषि मजदूरों के सर्वांगीण विकास के लिए सामुदायिक विकास योजना, पंचायती राज, विशेष क्षेत्र कार्यक्रम, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, सम्बद्ध कार्यक्रम, ग्रामीण महिला एवं शिशु विकास कार्यक्रम, ट्राइसेम, सखाड़ोन्मुख क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम, प्रखण्ड प्रशासन की सुदृढीकरण, जवाहर रोजगार योजना, इन्दिरा आवास योजना तथा जलधारा योजना कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं ।

जहाँ तक बेरोजगारी की समस्या, स्वरूप, आकार और उसको दूर करने हेतु सुझावों का प्रश्न है, वह सम्पूर्ण भारत की समस्या सेके कुछ गंभीर ही है । जहाँ तक रोजगार प्रदान करने की योजनाओं का प्रश्न है वह केन्द्र सरकार द्वारा निर्देशित योजनाओं पर आश्रित है । 20 सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत जिन योजनाओं को लागू किया गया है उसे राज्य सरकार भी लागू किये हुए है । जवाहर रोजगार योजना सम्पूर्ण राज्य में लागू की गयी है । कुछ प्रमुख योजनाओं की वर्तमान स्थिति अधोलिखित है :-

ग्रामीण विकास

पंचायती राज निदेशालय के अधीन पंचायत एवं जिला परिषदों को सुदृढ़ कर सत्ता के विकेन्द्रीकरण का कार्य प्रशस्त करने का प्रयास किया जा रहा है । इसके अधीन कार्यरत 12 पंचायती राज प्रशिक्षण संस्थाओं में सरकारी सेवकों तथा पंचायतीराज संस्थाओं के गैर सरकारी सेवकों को प्रशिक्षित करने का भी कार्य किया जा रहा है । 1991-92 में इन संस्थाओं द्वारा 600 दलपतियों, 566 पंचायत सेवकों, 21 ग्राम पंचायत अधिकारियों तथा 105 गैर सरकारी सदस्यों को प्रशिक्षित किया गया ।

समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को परिसम्पत्ति देकर उन्हें गरीबी रेखा से ऊपर उठाना है । जनवरी 1992 तक इस कार्यक्रम पर 56 करोड़ 80 लाख 34 हजार रूपये व्यय कर 2 लाख 4 हजार 5 सौ 83 परिवारों को लाभान्वित किया गया है । इसमें अनुसूचित जाति, 62,890, अनुसूचित जनजाति 33,826 तथा महिलाओं की संख्या 45,285 रही ।[1]

यह कार्यक्रम बिहार सहित देश के समस्त राज्यों में चलाया जा रहा है ।

1-बिहार- फरवरी-मार्च संयुक्तांक- 1992, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, बिहार सरकार, पटना ।

ट्राइसेम

इस योजना के तहत वर्ष 1990-91 तक प्रति प्रखण्ड 40 युवकों एवं युवतियों को प्रशिक्षित किया जाता था, किन्तु 1991-92 से प्रति प्रखण्ड 80 युवक एवं युवतियों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य रखा गया है। वर्ष 1991-92 के दौरान 20,669 ग्रामीण युवक/युवतियों को प्रशिक्षित किया जा चुका है तथा 18,336 युवक एवं युवतियों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इन युवक /युवतियों में अनुसूचित जाति 6143, अनुसूचित जनजाति 2036, महिला 11226 और विकलांगों की संख्या 278 रही ।[1]

जवाहर रोजगार योजना

वर्ष 1991-92 के लिए इस योजना के तहत केन्द्र सरकार द्वारा 38,466·78 लाख रु0 निर्धारित किया गया । योजना के अन्तर्गत माह जनवरी 1992 तक कुल 467·47 लाख मानव दिवस का सृजन किया गया है। कुल सृजित मानव दिवस में अनुसूचित जाति के लिए 168·37 लाख एवं अनुसूचित जनजाति के लिए 125·65 लाख मानव दिवस रोजगार का सृजन किया गया । कुल सृजित मानव दिवस में 92·50 लाख मानव दिवस महिलाओं के लिए, 276·88 लाख भूमिहीनों के लिए एवं 52·98 लाखमानवदिवस अल्प संख्यकों के लिए सृजित है । इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत 1992 तक 12,610 इन्दिरा आवास ईकाई का निर्माण किया जा चुका था । यह योजना हरिजन,आदिवासी तथा मुक्त किये गये बन्धुआ मजदूर परिवार के सदस्यों के लिए ही है । जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत हरिजन/ आदिवासी एवं मुक्त किये गये बन्धुआ मजदूरों के कल्याणार्थ जलधारा योजना

1- बिहार-जनवरी मार्च संयुक्तांक-पृ0-22

के लिए भारत सरकार द्वारा 1992 के लिए 7693.90 लाख रू0 का प्राविधान किया गया । बाद में इस योजना के सफल कार्यान्वयन को देखते हुए भारत सरकार ने इस योजना हेतु 30 करोड़ रू0 की अतिरिक्त राशि देने की सहमति प्रदान की । इस योजना के अन्तर्गत जनवरी 1992 तक 3954•73 लाख रू0 व्यय कर कुल 39,523 योजनाएं पूर्ण की गयीं । जलधारा योजना एवं इंदिरा आवास योजना का भौतिक लक्ष्य 1992 के लिए क्रमशः 52,015 एवं 14,872 निर्धारित किया गया । सभी मौसम योग्य 1800 कि0मी0 पथों से 890 ग्रामों को जोड़ने का कार्य किया गया । टूटी हुई ग्रामीण सड़कों के लिए भी यथेष्ठ धनराशि की व्यवस्था की गयी ।

जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत माह जनवरी 1992 तक इंदिरा आवास एवं जलधारा योजनाओं के अतिरिक्त अन्य सृजित परिसम्पत्ति निम्न प्रकार है :-

(1) सामाजिक-वानिकी के अन्तर्गत आच्छादित क्षेत्र	5679•89 हेक्टेयर
(2) सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत वृक्षारोपण	202•43 लाख
(3) पेय जलकूप का निर्माण व मरम्मत	6825
(4) पंचायत भवन का निर्माण व मरम्मत	1931
(5) विद्यालय भवन का निर्माण व मरम्मत	2613
(6) महिला मण्डल का निर्माण	133
(7) ग्रामीण पथ का निर्माण एवं मरम्मत	8766•95 कि0मी0
(8) गाड़े गये एवं मरम्मत किये गये चापाकल	3194
(9) ग्रामीण शौचालय का निर्माण	2331
(10) भूमि संरक्षण कार्य	93940 हेक्टेयर
(11) पुलिया	1368
(12) अन्य	6658

यद्यपि उपर्युक्त तथ्यों को प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में पूर्व में प्रयोग किया गया है फिर भी योजनाओं का स्पष्ट करने की दृष्टि से इस नवीन योजना का पुनः उल्लेख करना आवश्यक हो गया है ।

शिक्षित बेरोजगारों को स्व-नियोजन के अवसर प्रदान करने के लिए योजना चलायी गयी है । इस योजना के तहत जनवरी 1991 तक जिला उद्योग केन्द्रों ने 13020 आवेदन पत्र अनुशंसित कर बैंकों को वित्तीय सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु भेजे जिसके लिए 3277•21 लाख रुपये की धनराशि की व्यवस्था की गयी । साथ ही बुनकरों के लाभार्थ प्रशिक्षण,उन्नत करघों की आपूर्ति, कर्मशाला भवन के निर्माण आदि के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी गयी है । छात्रों को छात्रवृत्ति देने के लिए एक कल्याणकारी योजना कार्यान्वित की गयी है और इसके तहत 1991-92 में 370 छात्रों के लिए कुल 3,23,830 रुपये की छात्रवृत्ति के वितरण की स्वीकृति दी गयी । साथ ही सहकारिता क्षेत्र के 3666 करघों पर 11000 बुनकरों को लाभान्वित किया गया ।

राज्यमें बेरोजगारी की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करने के लिए एवं मानव शक्ति के सही उपयोग करने हेतु राज्यस्तरीय नियोजन समिति का गठन किया गया है ।प्राप्त नवीनतम आंकड़ों के अनुसार 1992 तक इस राज्य में 82 नियोजनालय कार्यरत रहे । इसके अतिरिक्त प्रखण्ड स्तर पर 13 ग्रामीण नियोजनालय केन्द्र एवं राज्य के 6 विश्वविद्यालयों में विश्वविद्यालय सेवायोजन सूचना एवं मार्गदर्शन केन्द्र कार्यरत हैं ।[1]

1-फरवरी मार्च संयुक्तांक- "बिहार" 1992,पृ0-39•

उपर्युक्त के अलावा बिहार सरकार 20 सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाली सभी स्कीमों तथा अनुसूचित जाति/जनजाति, विकलांगों, महिलाओं निराश्रित बच्चों आदि के कल्याणार्थ अनेक योजनाएं केन्द्र सरकार से निर्देशन एवं वित्तीय सहायता प्राप्त कर संचालित कर रही है। चूंकि राज्य के साधन अत्यन्त सीमित हैं अतः राज्य स्वयं अपने स्तर से किसी बड़ी योजना का संचालन नहीं कर पा रहा है। यहीं यह उल्लेख कर देना समीचीन जान पड़ता है कि बेरोजगारी जैसी राष्ट्रीय समस्या के समाधान हेतु केन्द्रीय सहायता एवं निर्देशन आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत आंकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि बिहार राज्य में भी इस समस्या के हल हेतु अनेक रोजगार सम्बन्धी योजनाएं आरंभ की गयी हैं किन्तु बेरोजगारी के अत्यन्त विशाल आकार के समक्ष इनका प्रतिफल नगण्य सा प्रतीत हो रहा है। ऐसा महसूस हो रहा है कि समस्या सुलझने के बजाय और उलझती जा रही है। सत्यता तो यह है कि योजनाओं के उद्देश्य तो सदैव उच्च और प्रशंसनीय रहे हैं किन्तु उनके दोषपूर्ण कार्यान्वयन के कारण तथा तीव्र गति से बढ़ती हुई श्रम शक्ति के फलस्वरूप रोजगार सम्बन्धी कार्यक्रमों का जो प्रतिफल प्राप्त होना चाहिए, वह नहीं प्राप्त हो पा रहा है। इसके लिए शोधकर्ता कुछ सुझाव शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय में प्रस्तुत करेगा।

अध्याय-6

आर्थिक विकास और रोजगार की सम्भावनाएं

आर्थिक विकास और रोजगार की संभावनाएं

आर्थिक वृद्धि और रोजगार के मध्य सामंजस्य तथा विरोधाभास की स्थिति का अध्ययन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के सन्दर्भ में अत्यधिक महत्वपूर्ण है । यदि आर्थिक वृद्धि का रोजगार से कोई विरोधाभास न मान लिया जाय तब तको बिना किसी संदेह के आर्थिक वृद्धि के साथ-साथ रोजगार को प्राथमिकता दी जा सकती है किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं है । रोजगार और आर्थिक वृद्धि के मध्य किसी प्रकार से विरोधाभास की स्थिति में अतिरिक्त रोजगार प्राप्त करने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ सीमा तक आर्थिक विकास के उद्देश्यों का त्याग करना पड़ सकता है । ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि अतिरिक्त रोजगार प्राप्त करने के लिए आर्थिक वृद्धि के उद्देश्यों का त्याग एक निश्चित सीमा तक ही किया जा सकता है क्योंकि आर्थिक वृद्धि की कम से कम उतनी मात्रा को बनाये रखना आवश्यक है जिससे जनसंख्या वृद्धि तथा निर्धनता को नियंत्रित किया जा सके । नियोजन के आरंभिक वर्षों में रोजगार वृद्धि के उपायों पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा सका । इसका कारण यह था कि जब प्रथम पंचवर्षीय योजना को श्रीगणेश हुआ उस समय भारत तथा उसके अन्य सभी राज्यों में खाद्यान्न समस्या एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में उपस्थित थी । अतः इस समस्या से मुक्ति प्राप्त करने हेतु खाद्यान्नों के उत्पादन की ओर विशेष ध्यान दिया गया । फलस्वरूप कृषि को उच्च प्राथमिकता दी गयी । काफी समय तक तो

रोजगार सृजन को आर्थिक विकास का परिणाम माना जाता रहा अर्थात् यह विश्वास रहा कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप रोजगार में स्वतः वृद्धि होगी ।[1] इसी प्रकार द्वितीय योजना, जिसमें लाभदायक रोजगार अवसरों के सृजन पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया गया था, में इस बात का उल्लेख किया गया कि भारत जैसे अर्द्धविकसित देश में बेरोजगारी की समस्या का समाधान गहन विकास के फलस्वरूप ही किया जा सकता है ।[2] रोजगार के संदर्भ में तृतीय योजना में भी लगभग पूर्व योजनाओं जैसी धारणाएं परिलक्षित हुईं ।[3] चौथी, पांचवीं, छठीं, सातवीं तथा आठवीं योजनाओं में भी उद्देश्यों की अस्पष्टता के कारण रोजगार की समस्याओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा सका ।

यद्यपि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है, किन्तु यह भी सत्य है कि वर्तमान तथा भविष्य के समस्त बेरोजगारों को नहीं लगाया जा सकता है । आयोजकों की एक त्रुटि परियोजनाओं के चयन से सम्बन्धित है । कुछ विशेष उद्योगों को छोड़कर जहां पूंजी प्रधान तकनीक को अपनाये बिना काम नहीं चल सकता, अन्य अनेक उद्योगों के सम्बन्ध में वैकल्पिक उत्पादन-तकनीकों के चयन पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया । विदेशों के अनुकरण पर कुछ ऐसी उत्पादन विधियों को अधिमानता दी जा रही है जो कम श्रम-प्रधान थी ।

1- द फर्स्ट फाइव ईयर प्लान, प्लानिंग कमीशन, 1952, पृ0-25.

2- द सेकेण्ड फाइव ईयर प्लान, प्लानिंग कमीशन, 1956, पृ0-109

3- "फुल यूटिलाइजेशन आफ मैन पावर रिसोर्सेज केन बी एचीव्ड आफ्टर ए कन्सीडरेबुल पिरीएड आफ डेवलपमेन्ट, थर्ड फाइव ईयर प्लान, पृ0-154.

इसप्रकार आरंभिक चरणों में सामुदायिक विकास कार्यक्रम चौथी योजना में शुरू किये गये । सार्वजनिक कार्यों को छोड़कर ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त परिसम्पत्तियों के निर्माण हेतु कोई ठोस सुसंगत तथा व्यापक कार्यक्रमों की सहायता नहीं ली गयी । चौथी योजना के पश्चात पांचवी, छठी, सातवीं एवं आठवीं योजनाओं में रोजगार के सन्दर्भ में अनेक योजनाएं चालू की गयी हैं ।

प्रदेश के आयोजकों में रोजगार की दृष्टि से विभिन्न उत्पादन क्षेत्रों तथा कौशल के क्षेत्र में जनशक्ति की आवश्यकताओं तथा पूर्तियों में दोषपूर्ण सन्तुलन रहा है । यह पूर्ति कुछ क्षेत्रों में आवश्यकता से कम रही है । समुचित जनशक्ति के आयोजनों द्वारा इस असन्तुलन को काफी सीमा तक दूर किया जा सकता है, किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं किया जा सका । एक सफल रोजगार नियोजन के द्वारा आर्थिक वृद्धि में सहायता प्राप्त हो सकती है किन्तु वास्तविक रूप में आर्थिक वृद्धि का स्वप्न तब तक साकार नहीं हो सकता जब तक अर्थव्यवस्था में अनेक कारणों से आर्थिक विपन्नता की समस्या बनी हुई है तथा निर्धनता के कुचक्र में फंसे लोग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूर्ण करने में असमर्थ हैं । वर्तमान समय में यद्यपि राष्ट्रीय और प्रान्तीय स्तर पर इस समस्या को दूर करनेके प्रयास किये जा रहे हैं किन्तु इन प्रयासों के परिणाम अभी तक सामने नहीं आ सके हैं । यही कारण है कि बिहार में आज भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग निर्धनता रेखा के नीचे अत्यन्त बुरी अवस्था में जीवन यापन करने को विवश है ।

अतः बिहार के सन्दर्भ में उपयुक्त रोजगार नीति की नितान्त आवश्यकता है जिसके माध्यम से इन समस्याओं का समाधान किया जा सके ।

रोजगार की अवधारणा के रंग रूप में निर्धनता तथा असमानता आदि घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं । अतः इस दृष्टि से केवल रोजगार के अवसरों की अधिक संख्या व अपेक्षाकृत अधिक अच्छे रोजगार के अवसरों के सृजन की व्यवस्था करना ही पर्याप्त नहीं है । वास्तव में, ऐसे रोजगार के अवसरों की उपलब्धता आवश्यक हैं जिससे समाज के कमजोर, पिछड़े तथा निर्धन वर्ग को रोजगार प्राप्त हो जाय तथा उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आये जिससे ये कम से कम अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ हो सकें ।

आई0एल0ओ0 (अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन) ने विश्व रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत अधिक उत्पादन तथा आवश्यकतानुसार रोजगार सृजन के उपायों पर प्रकाश डाला है जिसके अनुसार रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण कृषि सुधार (भूमि सुधार) तथा निवेश परिवर्तन जैसे भौतिक पूंजी के स्थान पर मानवीय पूंजी, शहरी विकास से ग्रामीण विकास, पूंजी प्रधान से श्रम प्रधान क्रियाओं तथा आवश्यक उपभोग वस्तुओं के उत्पादन कार्यक्रमों को सम्मिलित करना चाहिए ।[1]

अल्पविकसित राष्ट्रों में लोगों को तभी अधिक रोजगार दिया जा सकता है जबकि राष्ट्र का आर्थिक विकास तीव्र हो । बेरोजगार तथा अर्द्ध बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि का अर्थ उत्पादन के महत्वपूर्ण साधन की बर्बादी है । इस सन्दर्भ में हर्षमैन का कथन द्रष्टव्य है- " आर्थिक विकास उत्पादन के दिये हुए साधनों और घटकों के अनुकूलतम अनुपात से ज्ञात करने

1- आई0एल0ओ0-वर्ल्ड इम्प्लायमेण्ट प्रोग्राम, जेनेवा, पृ0-68-81।

पर उतना निर्भर नहीं है जितना कि छिपे हुए, बिखरे हुए और अप्रयुक्त साधनों और योग्यताओं का विकास कार्यों का दुरूपयोग करने पर है ।[1] इस श्रेणी में बेरोजगार और अर्द्ध बेरोजगार व्यक्ति भी शामिल हैं । बेरोजगारी की समस्या के संदर्भ में प्रो0के0एन0राज ने लिखा है कि अल्पविकसित राष्ट्रों में रोजगार की समस्या स्पष्ट रूप से एक ऐसी समस्या है जो बाजार में लगातार बढ़ रही है क्योंकि आर्थिक विकास में प्रगति के साथ-साथ और तद्जनित मानसिक और भौतिक वातावरण में परिवर्तन और सामाजिक संगठन के पुराने रूप में परिवर्तन के कारण अधिक श्रम-शक्ति को आर्थिक कार्य के लिए प्रयुक्त किये जाने की संभावना है । दूसरे शब्दों में, आर्थिक परिवर्तन और आर्थिक विकास का यह प्रमुख लक्षण है कि जनसंख्या में वृद्धि के बिना भी रोजगार के लिए प्रयुक्त श्रमिकों की संख्या में लगातार वृद्धि होगी । इस आधार पर अधिकांश बेरोजगार व्यक्ति इस प्रकार की प्रक्रिया के परिणाम हैं, यह दावा करने का कोई अर्थ नहीं है कि बेरोजगारी की मात्रा में वृद्धि नहीं हुई है । यह तो संक्रमण काल में गुजरते समाज में आबादी और रोजगार की समस्या का मूल है ।[2]

बिहार राज्य में व्यवसाय की प्रकृति

राज्य की व्यावसायिक क्रियाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

---

1-हर्षीन, ए0ओ0- दि स्ट्रेटजी आफ इकोनामिक डेवलपमेन्ट, पृ0-5।

2-के0एन0राज- इम्प्लायमेन्ट आस्पेक्ट्स आफ प्लानिंग इन अण्डरडेवलप्ड इकोनामीज, 1957, पृ0-6।

(1) उद्योग सम्बन्धी क्रियाएं, और

(2) वाणिज्य सम्बन्धी क्रियाएं ।

जो क्रियाएं वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से सम्बन्ध रखती हैं, उन्हें उद्योग सम्बन्धी क्रियाओं के अन्तर्गत माना जा सकता है । इसके विपरीत उद्योग द्वारा उपलब्ध करायी गयी वस्तुओं के वितरण सम्बन्धी क्रियाएं- व्यापार, विज्ञापन व प्रचार, बैंक, परिवहन तथा बीमा सेवाएं आदि को वाणिज्य सम्बन्धी क्रियाएं कहते हैं । इन क्रियाओं का अगले पृष्ठ पर चार्ट के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है :-

व्यावसायिक क्रियाओं का वर्गीकरण

औद्योगिक क्रियाएं	वाणिज्यिक क्रियाएं
प्राकृतिक उद्योग	व्यापार
खनन उद्योग	विज्ञापन व प्रचार
निर्माण उद्योग	बैंक, बीमा, परिवहन, भण्डारण
रचनात्मक उद्योग	आदि ।

उद्योग

उद्योग व्यावसायिक क्रिया का वह अंग है जिसमें वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है । इन उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग या तो उपभोक्ता प्रत्यक्ष रूप से करता है अथवा अन्य उद्योग अपने उत्पादन में करते हैं । पहली स्थिति में उन निर्मित वस्तुओं को उपभोक्ता पदार्थ कहते हैं और दूसरी

स्थिति में उत्पादक या पूंजीगत पदार्थ आते हैं । कुछ उद्योग ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जो न तो उत्पादक पदार्थ हैं और न ही उनका उपयोग उपभोक्ता द्वारा सीधे किया जा सकता है बल्कि उन्हें अन्तिम रूप दूसरे उद्योगों में प्राप्त होता है । ये पदार्थ मध्यवर्ती पदार्थ कहलाते हैं ।

उपर्युक्त आधार पर कहा जा सकता है कि उत्पादक पदार्थों,उपभोक्ता पदार्थ और मध्यवर्ती पदार्थों के निर्माण में जिन क्रियाओं को किया जाता है उन्हें सामूहिक रूप से उद्योग कहते हैं । निर्माण करने का अर्थ प्राकृतिक साधनों की उपयोगिता में वृद्धि करने वाली उन समस्त क्रियाओं को सम्पन्न करने से है जिनसे सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके । इस प्रकार प्राकृतिक साधनों की उपयोगिता में वृद्धि करने वाली समस्त क्रियाओं को उद्योग में शामिल कर लिया जाता है ।

सामान्य रूप से उद्योगों को चार वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है:-

(1) प्राकृतिक उद्योग

कृषि,वन और मत्स्य उद्योग आदि इसके अन्तर्गत आते हैं । इस वर्ग में मुख्यतः वे उद्योग आते हैं जिनमें प्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक साधनों का विदोहन करके मनुष्य के जीवन के लिए किसी आवश्यक व आधारभूत वस्तु का उत्पादन किया जाता है ।

(2) खनन उद्योग

समुद्र व भूमि में से पदार्थों का निकालना खनन उद्योग कहलाता है ।

उद्योग के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थ खनन से ही प्राप्त होते हैं जिन्हें खनिज कहा जाता है ।

(3) विनिर्माण उद्योग

समुद्र व भूमि में से पदार्थों का निकालना खनन उद्योग के अन्तर्गत है किन्तु कच्चे पदार्थ का रूप बदलकर वस्तुओं का निर्माण करना निर्माण उद्योग के अन्तर्गत आता है । इस वर्ग में लोहा व इस्पात ,कपड़ा ,जूट,शक्कर आदि उद्योग आते हैं ।

(4) रचनात्मक उद्योग

इसके अन्तर्गत पुल,बांध,भवन व सड़कों आदि का निर्माण आता है ।

औद्योगिक विकास

बिहार राज्य में औद्योगिक विकास के लिए अनेक सुविधाएं उपलब्ध हैं जिनमें कुछ महत्वपूर्ण कच्चा माल जो औद्योगिक विकास का आधार बन सकता है, यहाँ सरलता से प्राप्त हो जाता है । इनमें तिलहन,गन्ना,जूट आदि का उल्लेख किया जा सकता है । जंगलों में राल,बाँस,इमारती लकड़ी,जड़ी-बूटियाँ और घास बहुतायत मात्रा में उपलब्ध है । पर्याप्त मात्रा में कोयला,मैग्नेसाइट डोलोमाइट, जिप्सम आदि खनिज पदार्थ सुलभ हैं । यद्यपि इनकी खानें दूर-दूर तक बिखरी हुई हैं । इसी के साथ-साथ वस्तुओं के निर्माण तथा संरक्षण के सम्बन्ध में उद्योग के लिए राज्य में काफी अच्छा क्षेत्र उपलब्ध है । इसके बावजूद

भी यह प्रदेश काफी पिछड़ा हुआ है ।

खनिज उत्पादन की दृष्टि से बिहार राज्य का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । अधोलिखित सारिणी इस तथ्य को स्पष्ट कर देती है :-

सारिणी संख्या-6:।

भारत के सन्दर्भ में बिहार के खनिज उत्पादनों का मूल्य

वर्ष	मूल्य (मिलियन रुपये में)		राष्ट्रीय उत्पादन में बिहार का प्रतिशत योगदान
	बिहार	भारत	
1951	अनुपलब्ध	832	--
1956	387	1018	38·0
1961	656	1812	36·2
1966	1000	3279	30·5
1968	1250	4166	30·0
1974	2253	8639	26·1
1978	3715	14632	25·4
1979	4499	17420	25·8
1980	6272	20682	--

(स्रोत:सेलेक्टेड प्लान स्टैटिस्टिक्स,1982,बिहार सरकार,पृ0-29।)

उपर्युक्त तथ्य इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि बिहार राज्य भारत के खनिजों के उत्पादन में महत्वपूर्ण अंश तक योगदान कर रहा है । यद्यपि उपर्युक्त आंकड़ों से यह नकारात्मक पक्ष भी सामने उभर कर आता है कि 1951 की अपेक्षा 1980 तक राज्य का योगदान राष्ट्रीय खनिज उत्पादन में प्रतिशत रूप में कम हुआ है । मौद्रिक मूल्य में तो अवश्य ही वृद्धि हुई है । इसी सन्दर्भ में भारत के कुछ प्रमुख चुने हुए राज्यों के सन्दर्भ में बिहार राज्य की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की दृष्टि से अधोलिखित सारिणी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है :-

सारिणी संख्या-6:2

बिहार तथा कुछ प्रमुख राज्यों में उद्योगों

(फैक्टरी सेक्टर) की प्रमुख विशेषताएं

राज्य	कारखानें		कर्मचारी		जोड़ा गया मूल्य प्रतिशत में
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1-महाराष्ट्र	13891	17•2	1210	18•1	24•3
2-प०बंगाल	6173	7•6	882	13•2	12•0
3-तमिलनाडु	8247	10•1	688	10•0	9•4
4-गुजरात	9722	12•0	595	8•9	9•3
5-उ०प्र०	6034	7•4	628	9•4	7•2
6-बिहार	3888	4•8	348	5•2	5•9
7-कर्नाटक	4659	5•7	346	5•2	4•9
8-केरल	2404	3•0	256	3•8	2•5
9-आंध्र प्रदेश	8450	10•4	562	8•4	5•0

सारिणी संख्या-6.2 से स्पष्ट है कि महाराष्ट्र,मद्रास और पश्चिम बंगाल में फैक्टरियों की संख्या अन्य सभी राज्यों की अपेक्षा अधिक है । फलस्वरूप यहाँ रोजगार पाने वालों की संख्या भी अधिक है । बिहार राज्य फैक्टरियों की संख्या तथा उनमें कार्यरत व्यक्तियों की संख्या की दृष्टि से अधिक पीछे है । इसका कारण यह है कि उद्योगों का केन्द्रीकरण तथा स्थानीकरण औद्योगिक दृष्टि से अपेक्षाकृत उन्नत राज्यों में हुआ है और सरकारी नीति के कारण भी बिहार राज्य औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा रह गया है । खनिज सम्पदा की दृष्टि से बिहार जितना धनी राज्य है, गरीबी और निर्धनता तथा बेरोजगारी की मात्रा यहाँ पर उतनी ही अधिक देखी जा सकती है । यह एक बिडम्बना ही है कि नियोजन के चार दशक पूर्ण करने के बावजूद भी राज्य में असमानता ,गरीबी और बेरोजगारी का जो दृश्य देखने को मिलता है वह निश्चित रूप से हमारे नियोजकों के लिए एक चुनौती ही है । पड़ोसी राज्य उत्तर प्रदेश से यदि बिहार की तुलना की जाय तो उत्तर प्रदेश की अपेक्षा बिहार की स्थिति जीर्ण परिलक्षित होती है । असमानता और गरीबी भी उत्तर प्रदेश की अपेक्षा बिहार में अधिक देखी जा सकती है ।

बिहार के विभिन्न जिलों में औद्योगिक इकाइयों की कुल संख्या का विवरण अधोलिखित सारिणी के द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है :-

सारिणी संख्या-6:3

जिलेवार लघु उद्योगों का ब्यौरा

जिला	औद्योगिक इकाइयों की संख्या
(1) पटना	821
(2) नालन्दा	72
(3) नवादा	101
(4) गया	236
(5) औरंगाबाद	53
(6) भोजपुर	157
(7) रोहतास	107
(8) धनबाद	303
(9) गिरिडीह	99
(10) हजारीबाग	127
(11) पलामू	176
(12) रांची	418
(13) सिंहभूम	497
(14) मुंगेर	189
(15) भागलपुर	269
(16) संथाल परगना	214
(17) कटिहार	77
(18) पूर्णिया	152

(19)सासाराम	98
(20)बेगूसराय	79
(21)समस्तीपुर	82
(22)दरभंगा	164
(23)मधुबनी	42
(24)सीतामढ़ी	43
(25)मुजफ्फरपुर	178
(26) वैशाली	38
(27) सारन	128
(28)सीवान	96
(29)गोपालगंज	27
(30)पूर्वी-चम्पारन	110
(31)पश्चिमी चम्पारन	152
योग	5306

(स्रोत:- सेलेक्टेड प्लान स्टेटिस्टिक्स, गवर्नमेण्ट आफ बिहार, 1982, पृ0-297-299)

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि बिहार राज्य की जनसंख्या और बेरोजगारी की दृष्टि से अभी तक जो भी औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित की जा सकी हैं, उन्हें पर्याप्त नहीं कहा जा सकता । राज्य में पर्याप्त मात्रा में मैग्नेसाइट, डोलोमाइट, लाइम स्टोन, फायर क्ले, जिप्सम आदि खनिज पदार्थ

बहुतायत मात्रा में उपलब्ध हैं और इन उद्योगों के विकास के लिए राज्य में काफी संभावनाएं उपलब्ध हैं।

इसी क्रम में शोधकर्ता ने बिहार राज्य की रजिस्टर्ड फैक्टरियों तथा उनमें कार्यरत व्यक्तियों की संख्या का विवरण प्रस्तुत किया है, जो अधोलिखित सारिणी से द्रष्टव्य है :-

सारिणी संख्या-6:4

बिहार राज्य में फैक्टरियों की संख्या तथा उनमें कार्यरत व्यक्ति

	पंजीकृत फैक्टरियों की संख्या	रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या
1-खाद्यान्न उत्पादक मिलें	36	1170
2-चीनी	29	48421
3-देशी चीनी, खांडसारी आदि	7	649
4-काटन टेक्सटाइल्स में कताई बुनाई की मिलें	5	2956
5-कागज व दफ्ती आदि	9	6672
6-छपाई प्रकाशन आदि (पुस्तकें-पत्र-पत्रिकाएं)	6	1524
7-छपाई प्रकाशन	4	669
8-प्लास्टिक उत्पादन	4	198

(9)पेट्रोलियम रिफाइनरी	4	1955
10-कोलतार का उत्पादन	31	8546
11-आर्गनिक व इनआर्गनिक केमिकल्स की बेसिक इण्डस्ट्रीज	9	5398
12-उर्वरक एवं कीटाणु नाशक	3	9008
13-पेण्ट वार्निस आदि	7	2086
14-दवाओं का उत्पादन	4	493
15-स्ट्रक्चरल क्ले प्राडक्ट्स	76	12084
16-ग्लास और ग्लास का उत्पादन	12	2126
17-सीमेण्ट,चूना आदि	9	5433
18-माइका उत्पादन	61	5739
19-स्ट्रक्चरल स्टोन गुड्स	14	352
20-नान-मेटल खनिजों का उत्पादन	16	1313
21-आयरन एण्ड स्टील उद्योग	34	75006
22-फाउण्डरीज फोरकास्टिंग एण्ड फोर्जिंग आयरन स्टील	44	19822
23-अन्य नान-फेरस मेटल इण्डस्ट्रीज	4	747
24-फैब्रिकेटेड मेटल प्राडक्ट्स	8	417
25-हैण्ड टूल्स एण्ड जनरल हार्डवेयर	3	170
26-मेटल अटेंसिल्स आदि	5	159
27-कृषि उपकरण	4	751
28-ट्रिल्स की मरम्मत आदि	5	2451
29-खाद्यान्न तथा टेक्सटाइल्स के अतिरिक्त अन्य उद्योग	4	6079

30-आल्टरेशन एण्ड रिपेयर्स आफ जनरल नान-इलेक्ट्रिकल्स	5	1049
31-मशीन,उपकरण एवं अन्य पार्ट्स	4	1703
32-इलेक्ट्रिकल उपकरण आदि	3	495
33-इलेक्ट्रिकल उपकरण आदि	3	840
34-जहाज व नाव निर्माण	7	9485
35-रेलवे वैगन एवं कोच आदि	3	2008
36-मोटर वेहिकिल्स एवं पार्ट्स	13	19526
37-इलेक्ट्रिसिटी	51	48842
38-गैस एण्ड स्टीम	---	---
39-वाटरवर्क्स एण्ड सप्लाई	4	169
40-कोल्ड स्टोरेज	---	---
41-मोटर वाहनों की मरम्मत आदि	21	1915
42-विविध उद्योग	12	3784
योग	670	333106

(स्रोत: बिहार स्टैटिस्टिकल हैण्ड बुक 1982,बिहार सरकार, पृष्ठ संख्या-172-73)

सारिणी से स्पष्ट है कि बड़े एवं आधारभूत उद्योगों को छोड़कर छोटे उद्योगों में रोजगार की क्षमता अधिक है । यदि इनका विस्तार किया जाता है तो राज्य को बेरोजगारी की समस्या को एक अंश तक दूर करने में

मदद मिलेगी । यह राज्य की नीतियों पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार इन उद्योगों का विकास कर अपनी प्रान्तीय बेरोजगारी की समस्या का हल कर सकती है ।

अप्रेल 1963 में प्रो०डब्लू०डब्लू०रोस्टोव ने आर्थिक विकास संस्था, नई दिल्ली में "स्फूर्ति विकास काल का राष्ट्रीयकरण" पर भाषण देते हुए यह विचार प्रकट किया था कि कृषि उत्पादन औद्योगीकरण के लिए मूलभूत चालू पूंजी है । चालू पूंजी प्रत्यक्ष अर्थों में, उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में तथा वृहत अर्थ में, चालू पूंजी या तो निर्यात को बढ़ाने में सहायता के रूप में या खाद्यान्न या अन्य कृषि-उत्पादन के आयात में सीमित विदेशी मुद्रा के समाप्त होने से बचाने के रूप में । उन्नतशील देशों में कृषि के विकास के लिए समुचित विनियोजन न करने के कारण ही वे स्वयं-स्फूर्ति विकास की परिस्थिति में अपने को नहीं पा रहे हैं । ऐसे देश में स्वयं स्फूर्ति के राष्ट्रीयकरण के अन्तर्गत वह प्रक्रिया आती है जिसके द्वारा देश के सीमित क्षेत्रों में आधुनिक टेक्नालाजी के प्रभावपूर्ण अन्तर्लयन को देश भर में वितरित किया जा सके ।

कृषि उत्पादकता में वृद्धि करना औद्योगीकरण के लिए एक अत्यन्त ठोस आधार बनाना है । वास्तव में, जब तक कृषि का समुचित आधुनिकीकरण नहीं होता है, अधिकांश विकासशील देशों में औद्योगिक प्रगति की गति धीमी होगी, क्योंकि अधिकांश व्यक्तियों के पास आवश्यक क्रय शक्ति न होने से बाजार की कमी होगी और दूसरी ओर कृषि का वांछित विकास नहीं होगा जब तक कि औद्योगिक विकास न हो जो कि अतिरिक्त जनशक्ति को अपने में ले सकें तथा आधुनिक कृषि को आवश्यक उपकरण तथा सेवाएं प्रदान करने के लिए

ठोस आधार प्रदान कर सके ।[1]

विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न समय पर क्षेत्रीय विकास पर बल देने के कारण अथवा छोटे पैमाने के उद्योगों की महत्ता बढ़ जाने के कारण उद्योगों का विकास सम्भव है तथापि फैक्टरी प्रणाली के कारण या तो पुराने औद्योगिक नगरों में नये-नये उद्योगों की स्थापना होती है या फिर नये औद्योगिक नगर बसाये जाते हैं । इस प्रकार औद्योगीकरण का यह प्रभाव होता है कि कुछ औद्योगिक नगरों में जनसंख्या के केन्द्रीकरण की समस्या को जन्म देता है । इसका समाज पर गहन प्रभाव पड़ता है तथा क्षेत्रीय असमानता बढ़ती है । विकसित क्षेत्र तो और विकसित हो जायेंगे और अल्पविकसित तथा अविकसित क्षेत्रों में प्राय: कोई भी विकास होने से रह सकता है ।

ग्रामीण क्षेत्रों पर तो औद्योगीकरण का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है । परन्तु नगरों पर इसका प्रत्यक्ष सामाजिक प्रभाव पड़ता है । नगरों में कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों का केन्द्रीकरण ही वहाँ की सामाजिक समस्याओं का प्रमुख कारण है । इससे अति भीड़,गन्दगी अथवा मलिनता,बेरोजगारी, अत्याचार,अपराध आदि का विस्तार होता है । नगरों में यह ह्रास इसलिए होता है कि तकनीकी परिवर्तनों तथा सामाजिक परिवर्तनों में सामंजस्य नहीं हो पाता तथा नये रीति-रिवाज,संगठन,नयी आदतें तथा जीवन के रहन-सहन के नवीन ढंग पनप नहीं पाते । इस समस्या के निवारण के लिए सामाजिक विधानों द्वारा सामाजिक संगठन के नये रूप को संवारना होगा,जो कि समाज

1-प्रो0यूजीन स्टेनले-दि फ्यूचर आफ अण्डरडेवलप्ड कन्ट्रीज,पृ0-394.

में श्रमिकों की पद स्थिति को सुनिश्चित करे । साथ ही साथ सामाजिक सेवाओं व शैक्षणिक सुविधाओं का प्रसार करना होगा ।

संक्रमण काल में जब कि पूर्ण औद्योगिक कुटम्ब तथा सामाजिक संरचना का विघटन हो रहा हो, सरकार का इस सम्बन्ध में विशेष उत्तरदायित्व होगा । यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यदि अधिकतम सामाजिक कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करना है तो उस दशा में उपयुक्त संस्थाओं का सृजन करना होगा जिसे सामाजिक संक्रमण काल पर लागू किया जा सके । औद्योगीकरण की प्रक्रिया के लिए यह उतना ही आवश्यक है जितना कि औद्योगिक उपक्रमों की स्थापना करना ।

बेरोजगारी पर सामाजिक रीति-रिवाजों का प्रभाव

आज की नवीन परिस्थिति में जाति व्यवस्था भारत की प्रगति में बाधक हो रही है तथा जाति व्यवस्था के अन्तर्गत अपने जातीय व्यवसाय को ही करने को बाध्य करती है । इस सम्बन्ध में प्रथम प्रधानमंत्री और विकास के प्रयोगकर्त्ता पं०जवाहर लाल नेहरू के विचार उल्लेख्य हैं । नेहरू जी ने कहा था कि जाति व्यवस्था भूतकाल में दया का पात्र रही है, लेकिन आज इसे दया का पात्र नहीं बनाया जा सकता क्योंकि नवीन भारत की रचना में यह पग-पग पर बाधक हो रही है । जाति व्यवस्था के कारण आर्थिक विकास में बाधा पड़ती है, कृषि की प्रगति रुक जाती है, बेरोजगारी में वृद्धि होती है, समाज में अनेक प्रकार के आर्थिक एवं सामाजिक दोष उत्पन्न

हो जाते हैं । इसके साथ ही साथ धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक दोष जाति व्यवस्था के ही कारण उत्पन्न होते हैं ।

व्यवसाय के मार्ग में जाति व्यवस्था एक कठोर अवरोधक के रूप में उपस्थित है क्योंकि लोग अपनी जाति एवं वंश परम्परा के अनुसार ही कार्य करने में ही अपने को महान समझते हैं । भारतीय जाति व्यवस्था चार वर्णों में विभाजित रही है और इसके कार्य भी विभाजित कर दिये गये हैं । ब्राह्मण का कार्य वेदों को पढ़ना-पढ़ाना तथा यज्ञ करना और कराना था, क्षत्रिय का कार्य देश की रक्षा करना, वैश्य का कार्य व्यापार करना और शूद्र का कार्य सेवा करना माना गया । सामाजिक नियंत्रण के अन्तर्गत प्रत्येक जाति के लिए कार्य निश्चित थे तथा विवाह आदि भी जाति के ही अन्तर्गत होता है । यदि कोई व्यक्ति इसके विपरीत कार्य करता था तो उसे समाज जाति से बाहर कर देता था । सामाजिक जाति व्यवस्था मुख्य रूप से कुछ नियम जैसे भोजन, विवाह, परस्पर मेल-जोल आदि से विशेष सम्बन्धित है । प्रत्येक उपजाति स्वयं ही एक पंचायत रखती है और उसकी अपनी एक जातीय सभा होती है । पंचायतों द्वारा उन व्यक्तियों को बहिष्कृत कर दिया जाता है जो जाति व्यवस्था के नियमों का उल्लंघन करते हैं ।

बिहार राज्य में बेरोजगारी के कारण

प्रदेश की बेरोजगारी के कारणों में से कुछ प्रमुख को यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है :-

(1) बिहार राज्य में बेरोजगारी में तीव्र गति से बढ़ने का कारण तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या है । प्रदेश के आर्थिक विकास की गति जनसंख्या वृद्धि की तुलना में धीमी रही है । अतः ऐसी स्थिति में बेरोजगारी की समस्या का सामना करना प्रदेश के लिए स्वाभाविक है ।

(2) प्रदेश में पूंजी निर्माण की गति बहुत धीमी है जिसके कारण उद्योगों व्यवसायों व सेवाओं का विस्तार भी धीमी गति से हुआ है ।

(3) प्रदेश की शिक्षा प्रणाली भी अत्यन्त कमजोर है । दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि यहाँ की शिक्षा एक बड़े पैमाने पर लिपिकीय वर्ग को उत्पन्न कर रही है, उत्पादन व तकनीकी क्षेत्रों में योग्य व्यक्तियों को तकनीकी शिक्षा नहीं मिल पायी है । अतः नौकरी प्राप्त करने वालों की संख्या अधिक है और उत्पादन करने वाले व्यक्तियों की संख्या न्यूनतम है ।

(4) ब्रिटिश सरकार की स्वार्थपरक व्यापारिक नीति के परिणामस्वरूप प्रदेश के हस्तशिल्प एवं लघु उद्योगों का पतन हो गया । इससे हस्त-शिल्प एवं लघु उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों को भी अन्य कार्य खोजने के लिए विवश होना पड़ा जिससे बेरोजगारी में वृद्धि हुई ।

प्रदेश में बेरोजगारी के उपर्युक्त प्रमुख कारण बताये जाते हैं, लेकिन इसके अतिरिक्त भी बहुत से कारण हैं जिससे प्रदेश में बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। कुछ कारण अधोलिखित हैं :-

(1) प्रदेश में श्रम की गतिशीलता का अभाव पाया जाना

(2) कृषि भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाव

(3) प्रदेश में प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव
(4) प्राकृतिक विपत्तियों से आकस्मिक बेरोजगारी का उत्पन्न होना
(5) कृषि में यंत्रीकरण एवं उद्योगों के अभिनवीकरण से भी बेरोजगारी बढ़ी है ।
(6) प्रदेश में प्रभावपूर्ण रोजगार नीति का अभाव इत्यादि ।

बिहार में रोजगार की संभावनाएं

योजनाकाल में प्रदेश में रोजगार में वृद्धि हेतु काफी प्रयास किये गये हैं किन्तु बढ़ती हुई जनसंख्या के सन्दर्भ में प्रगति न्यून सिद्ध होती है । पूर्ण रोजगार प्राप्त करने का जहाँ तक प्रश्न है, वह अभी लक्ष्य से बहुत दूर है । पूर्ण रोजगार की स्थिति से तात्पर्य उस स्थिति से है जिसके तहत अर्थव्यवस्था में काम करने योग्य कार्य के इच्छुक सभी व्यक्तियों को प्रचलित मजदूरी दर पर रोजगार प्राप्त हो जाय । ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए सरकार को एक ठोस नीति अपनाकर उसे सक्रियता के साथ कार्यान्वित करना होगा । इस नीति के तहत निम्नलिखित बातों का समावेश आवश्यक है :-

(1)श्रम की माँग,श्रम की पूर्ति से अधिक रखने का प्रयत्न किया जाना चाहिए ।
(2)श्रम की माँग में वृद्धि उचित दिशा में होनी चाहिए ।
(3)श्रम की माँग व पूर्ति में ऐसे परिवर्तन होने चाहिए जिससे उनमें बहुत असन्तुलन उत्पन्न न हो ।
(4)अर्द्ध बेरोजगारी की स्थिति समाप्त करने की दिशा में प्रयत्न करना चाहिए ।

भारत में पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करना तथा उसे बनाये रखना कठिन है, क्योंकि जनसंख्या व श्रम शक्ति की तीव्र गति की वृद्धि की तुलना में देश के आर्थिक विकास की दर तथा रोजगार बढ़ाने की गति काफी मन्द है। लोकतांत्रिक मार्ग अपनाने के कारण साम्यवादी देशों की तुलना में भारत में आर्थिक विकास व रोजगार वृद्धि की गति स्वभावतः धीमी है किन्तु यह सौभाग्य की बात है कि भारत में प्राकृतिक साधन विपुल हैं। इन साधनों का उपयोग जितनी शीघ्रता से किया जायेगा उतनी ही शीघ्रता से हम रोजगार बढ़ाने में सफल होंगे। रोजगार बढ़ाने के लिए तथा स्थायी रूप से बेरोजगारी की समस्या का हल करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाने होंगे:-

(1) स्वावलम्बी अथवा अपने द्वारा किया गया उपाय।
(2) सरकार द्वारा किया गया उपाय।

वर्तमान समय में रोजगार के प्रमुख साधन कृषि,उद्योग,लघु एवं कुटीर उद्योग,सामाजिक सेवाओं का विकास तथा अन्य विविध सेवाएं हैं। इस प्रकार इन विभिन्न सेवाओं के माध्यम से रोजगार के अवसर प्रदान किये जाते हैं। विभिन्न योजनाओं में रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए निम्नलिखित अवसरों में वृद्धि की जाती है:-

(1) श्रम प्रधान कार्यों- जैसे सड़क,लघु सिंचाई योजना,सहकारिता, बाढ़ नियंत्रण,कार्य पर जोर दिया जाय।

(2) कृषि विकास की बढ़ती हुई गति।
(3) गैर कृषि रोजगार में वृद्धि
(4) खनिज तथा निर्माण उद्योग पर बल

(5)खनिज तथा निर्माण उद्योग पर बल

(6)शिक्षा,स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन जैसी सेवाओं का विस्तार

(7)उद्योगों का विकेन्द्रीकरण

(8)व्यापार,वाणिज्य तथा वित्तीय क्रियाओं के क्षेत्र का विस्तार

बिहार राज्य में रोजगार की संभावनाएं विशेष तौर से ग्रामीण लघु एवं कुटीर उद्योगों में अधिक पायी जाती है क्यों ग्रामीण रोजगार की एक व्यापक विशेषता उसकी मौसमी प्रकृति है, रोजगार की तीव्रता में परिवर्तन मौसम के अनुसार होता रहता है । कृषि के अधिक व्यस्त समय में अनेक क्षेत्रों में श्रमिकों की कमी बहुतायत से अनुभव की जाती है । शिथिल मौसम में भारी मात्रा में श्रमिक बेकार या अर्द्ध बेकार रहते हैं । रोजगार के मौसमी प्रकृति का प्रभाव मजदूरी पर काम करने वाले एवं स्व नियोजित दोनों प्रकार के व्यक्तियों पर पड़ता है । ग्रामीण क्षेत्र में बेकारी और अर्द्ध बेकारी दोनों ही समस्याएं मिश्रित रूप में होती हैं इनमें से कोई भी ऐच्छिक या अनैच्छिक हो सकती है । नियोजित आर्थिक विकास के तहत अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से उन्हें कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है ।

ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अनुमान का प्रयास नेशनल सैम्पुल सर्वे (एन0एस0एस0) ने अपने 19वें चक्र में जुलाई 1964 से जुन 1965 के मध्य किया । इसकी रिपोर्ट 1970 में प्रकाशित हुई । इस रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम-शक्ति कुल जनसंख्या की 40·15 प्रतिशत थी जिसमें से 38·40 प्रतिशत लाभप्रद नियोजन में थे,जबकि बेकार किन्तु रोजगार के लिए उपलब्ध व्यक्ति 17·5 प्रतिशत थे । श्रम शक्ति का 77·8 प्रतिशत भाग सप्ताह के सभी दिनों में काम पर बना हुआ था । सप्ताह में चार दिन या इससे कम या कम से कम

एक दिन तक काम करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत कुल जनसंख्या का 10•24 प्रतिशत था । कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन, वन उद्योग आदि उद्योग में लगे हुए व्यक्तियों का प्रतिशत 80•04 प्रतिशत था जिसमें पुरुषों एवं महिलाओं का प्रतिशत 78•55 तथा 85•29 था ।[1]

कृषि श्रमिकों के लिए पूर्ण नियोजन की व्यवस्था निरन्तर बढ़ती हुई ग्रामीण श्रम-शक्ति की अर्द्ध बेकारी कम करने की दिशा में एक व्यापक कदम है । अतः श्रम पर राष्ट्रीय आयोग ने ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादन में हाल में होने वाली प्रगति और उसके फलस्वरूप उसमें उत्पन्न मानव शक्ति की आवश्यकताओं को विशेष रूप से दृष्टिगत रखते हुए श्रमिकों की रोजगार संभावनाओं का पतालगाया । आयोग के अनुसार 1961 और 1976 के बीच की अवधि में औद्योगीकरण की प्रगति के द्वारा कृषि के बाहर श्रमिकों के रोजगार की दर मोटे तौर पर दुगनी करने के बावजूद कृषि पर निर्भर रहने वाले श्रमिकों की संख्या 22•1 मिलियन की वृद्धि संभावित है ।[2]

कृषि मौसम के अनुसार श्रमिकों का प्रयोग घटता-बढ़ता रहता है । जब फसल बोने, सिंचाई और फसल कटाई का समय आता है तो उस समय श्रमिकों की मांग अधिक हो जाती है । फलस्वरूप मौसमी बेरोजगारी में कमी आती है लेकिन इस समय के बाद एक ऐसा समय आता है जिसमें कृषि कार्य कम रहता है और उस समय मौसमी बेरोजगार बढ़ जाती है । अतः वर्ष में श्रमिकों को कितने दिन रोजगार मिल पाता है, इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख तथ्यों का

1- रिपोर्ट आफ दि नेशनल कमीशन आन लेबर, पृ0-396•

2- वही ।

उल्लेख समीचीन जान पड़ता है । ये तथ्य इस प्रकार हैं :-

(1) प्रो०पी०जे०थाम्स और के०सी०रामकृष्णन् के अनुसार वर्ष में कृषि श्रमिकों को तीन से पांच महीने तक कार्य मिलता है । इसके अलावा गहरी कृषि के कारण भी अलग से तीन माह तक कार्य मिल जाता है ।[1]

(2) दी बंगाल लैण्ड रेवेन्यू कमीशन के अनुसार कृषि श्रमिकों को 6 माह तक कार्य मिलता है, बंगाल के जिस जिले में केवल अमन की खेती होती है वहाँ केवल उसे 4 माह तक वर्ष में काम मिल पाता है ।[2]

(3) श्री जैक के अनुसार बंगाल में जहाँ जूट की खेती होती है वहाँ कृषि श्रमिकों को वर्ष में एक माह का ही कार्य मिलता है और जहाँ धान की खेती होती है वहाँ 7 से 5 माह तक कार्य मिल जाता है ।[3]

(4) डा०मुखर्जी के अनुसार उत्तरी भारत में कृषि श्रमिकों को 200 दिन से अधिक कार्य नहीं मिलता ,यदि दो एकड़ धान की खेती की जाती है तो इससे वर्ष में 250 दिन काम मिलता है । यदि कृषक जौ के साथ कोदो और अरहर की भी खेती करता है तो इससे औसत रूप से 150 दिन का काम मिलता है ।[4]

1-प्रो०पी०जे०थाम्स एण्ड के०सी०राधाकृष्णन्-साउथ इंडियन विलेजेज-ए सर्वे

2-रिपोर्ट आफ दि बंगाल लैण्ड रेवेन्यू,पृ०-91।

3-जैक,इकोनामिक लाइफ आफ बंगाल डिस्ट्रिक्ट,पृ०-38-39।

4-मुखर्जी-रूरल इकोनामी आफ इण्डिया ।

(5) लारेन्स के अनुसार उ०प्र० के गोण्डा, बहराइच और गोरखपुर जिले में कृषि श्रमिकों को 190 दिन पूर्ण रोजगार मिलता है।[1]

(6) बोर्ड आफ इकोनामिक इन्क्वायरी पंजाब के अनुसार बंगाल में औसत रूप से 150 दिन से अधिक पूर्ण रोजगार प्राप्त होता है। होशियारपुर में 10 घण्टे प्रतिदिन कार्य करके 278 दिन तक कृषि श्रमिकों को काम मिलता है।[2]

उपर्युक्त अध्ययनों को प्रस्तुत करने का एक मात्र उद्देश्य यह रहा है कि भूमि की बनावट, कृषि के स्वरूप और मौसम आदि के अनुसार कृषि श्रमिकों को विभिन्न प्रकार से कार्य के समय प्राप्त होते हैं और वर्ष के शेष दिनों में वे बेकार रहते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों की बेरोजगारी दूर करने के लिए कुटीर उद्योग-धन्धों का विकास किया जाना चाहिए जिससे कृषि कार्य के समाप्त होने पर अथवा कृषि कार्य के बाद जो समय बचता है उसे कुटीर उद्योगों में लगाकर रोजगार को बढ़ा सकें। वर्तमान समय में वस्तुओं का उत्पादन कुटीर उद्योगों के माध्यम से होना चाहिए। उनका उत्पादन बड़े-बड़े उद्योगों द्वारा किया जाने लगा है। इस कारण कुटीर उद्योगों का पतन हुआ है। 19वीं शताब्दी में भारत के कुटीर उद्योगों का विश्व में महत्वपूर्ण स्थान था। भारतीय कलात्मक वस्तुओं तथा वस्त्रों की विश्व में सबसे अधिक मांग थी, किन्तु ब्रिटिश शासनकाल में उनकी शोषणपूर्ण नीतियों के कारण उन्नत कुटीर उद्योग

1-लारेन्स: एग्रीकल्चरल लेबर एण्ड मार्केट गार्डनिंग इन अवध, पृ०-114.
2-बोर्ड आफ इकोनामिक इन्क्वायरी, पंजाब पब्लिकेशन, खण्ड-2

धन्धे अधोगति को प्राप्त हुए ।

रोजगार सृजन के सन्दर्भ में कुटीर उद्योगों के विकास के लिए निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं :-

(1) कृषि के साथ-साथ कुटीर उद्योगों के विकास से कृषकों के साथ ही साथ अन्य व्यक्तियों की आय में बृद्धि होती है ।

(2) सम्पूर्ण भारत में अत्यधिक जनसंख्या है जिससे बिहार राज्य भी अछूता नहीं रह सका है । इसलिए कृषि के अलावा अन्य लोगों को कुटीर उद्योगों में लगाया जा सकता है ।

(3) जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने को बाध्य है । ऐसे लोगों के पास न तो दोनों समय के लिए भोजन है और न मौसम के अनुरूप कपड़े और न ही रहने के लिए आवास । कुटीर उद्योगों का विकास कर ऐसे लोगों को काम दिया जा सकता है और उनकी आय में बृद्धि की जा सकती है ।

(4) मौसमी बेकारी के समय में कृषक कुटीर उद्योगों में कार्य करके अपनी आय में बृद्धि कर सकते हैं ।

(5) अन्य उद्योगों की अपेक्षा कुटीर उद्योगों में पूंजी की कम मात्रा का उपयोग होता है और रोजगार की अधिक क्षमता होती है । अतः कुटीर उद्योगों का विकास किया जाना आवश्यक है ।

(6) शहरों की ओर रोजगार की तलाश में जाने वाली जनसंख्या के प्रवाह को कुटीर उद्योग धन्धों का विकास कर एक सीमा तक रोका जा सकता

है ।

संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसर बहुत कम हैं । कुल कार्यरत व्यक्तियों में से केवल 6 प्रतिशत व्यक्ति ही संगठित क्षेत्रों में रोजगार प्राप्त कर सके हैं । अतः स्पष्ट है कि संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसरों की सीमितता को देखते हुए अन्य क्षेत्रों का विकास किया जाना अत्यन्त आवश्यक हैं । छठीं पंचवर्षीय योजना में स्व-रोजगार पर अधिक बल दिया गया और स्व-रोजगार हेतु सरकार द्वारा धन भी उपलब्ध कराये गये । उद्योग विभाग, बैंकों तथा श्रम विभाग के अन्तर्गत प्रशिक्षण एवं सेवायोजन निदेशालय द्वारा विशेष रूप से प्रयास किये जा रहे हैं । सेवायोजन कार्यालयों द्वारा स्वतः नियोजन के क्षेत्र में बेरोजगार व्यक्तियों को स्व-नियोजन हेतु प्रेरित किया जाता है । दूसरी ओर उद्योग निदेशालय द्वारा कच्चे माल एवं अन्य सुविधाएं तथा बैंकों द्वारा ऋण की सुविधाएं उपलब्ध करायी जाती हैं ।

नये रोजगार अवसरों में लघु उद्योगों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है । लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा बेरोजगारी की समस्या का समाधान काफी हद तक किया जा सकता है । लघु उद्योगों के संदर्भ में किये गये अध्ययन के अनुसार रासायनिक, इलेक्ट्रानिक, इंजीनियरिंग और कृषि पर आधारित उद्योगों द्वारा प्रतिवर्ष 1500 करोड़ रुपये के मूल्य का सामान उत्पादित किया जाता है । इस प्रकार लघु उद्योगों से न केवल बेरोजगार लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं, बल्कि उत्पादन में भी वृद्धि होती है । राज्य सरकार द्वारा लघु उद्योगों के सम्बन्ध में उद्यमियों को विशेष तकनीकी एवं वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है ताकि इन उद्योगों का अधिक विकास किया जा सके ।

बिहार में बेरोजगारी, अल्प बेरोजगारी की समस्या विस्तृत रूप में पायी जाती है और यदि विशेष प्रयास और कार्यक्रम द्वारा अतिरिक्त रोजगार के अवसरों में वृद्धि नहीं की जाती है तो यह समस्या और उग्र रूप धारण करती चली जायेगी । प्रान्त में केन्द्रीय सरकार द्वारा गरीबी निवारण हेतु चलाये गये कार्यक्रम जैसे- समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, स्पेशल कम्पोनेण्ट प्लान, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम आगे भविष्यमें रोजगार का सृजन करने में सहायक सिद्ध होगें । योजनाओं में सरकार द्वारा कृषि केलिए प्रदान की गयी प्राथमिकता से गहन कृषि द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि करने से ग्रामीण क्षेत्रों में आय में अतिरिक्त वृद्धि होगी और अल्प बेरोजगारी में कमी आयेगी । विकेन्द्रीकरण योजना भी स्थानीय साधनों और दक्षता का दोहन करके अतिरिक्त रोजगार का सृजन करने में समर्थ होगी, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

अतिरिक्त मानव शक्ति को अनुपूरक व्यवसाय में लगाने का प्रयास किया जा रहा है । प्रदेश के सभी जिलों में नये उद्योग लगाने की योजना बनायी जा रही है और पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना के लिए प्रबन्धकीय तथा अन्य सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं । औद्योगिक क्षेत्रों में प्रबन्ध के लिए अच्छी सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं । व्यक्तिगत औद्योगिक इकाइयों की समस्याओं का समाधान करने के लिए एक उच्च स्तर की बैठक का आयोजन किया जा रहा है । औद्योगीकरण का विस्तार तथा विकास रोजगार समस्या को कम करने में सहायक सिद्ध होगें ।

अधिक रोजगार की संभावनाएं रखने वाली मध्य श्रेणी के औद्योगिक यूनिटों की स्थापना हेतु सरकार प्रदेश में प्रोत्साहन दे रही है । मध्यम

तकनीकी जैसे काँच की पट्टी,खाँड़सारी,चीनी उद्योग प्रोत्साहित हो रहे हैं। इन मध्यम तकनीकों में सुधार के लिए शोध को प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि बिहार राज्य में बेरोजगारी की समस्या का स्वरूप कुछ इस प्रकार का है कि इसे तत्काल दूर करना संभव नहीं जान पड़ता है। सरकारी नीतियों और प्रयासों द्वारा इस समस्या को एक बड़ी सीमा तक हल किया जा रहा है फिर भी बेरोजगारी की मात्रा इतनी बड़ी है कि बेरोजगारी दूर कर पूर्ण रोजगार निकट भविष्य में प्राप्त करना कठिन है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जब कोई भी योजना वर्तमान जनसंख्या के सन्दर्भ में तैयार कर लागू की जाती है तो उसका परिणाम प्राप्त होने से पूर्व होने वाली जनसंख्या वृद्धि उसे नगण्य बना देती है। अतः जहाँ एक तरफ रोजगार अवसरों में वृद्धि कर बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने का प्रयास किया जाय वहीं दूसरी ओर जनसंख्या को भी नियंत्रित करने का प्रयास किया जाय। स्व-रोजगार पर अधिक बल दिया जाना तथा कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास रोजगार के अवसरों में वृद्धि कर बेरोजगारीकी समस्या का एक अंश तक हल निकालने में महत्वपूर्ण साबित होगा। साथ ही संगठित एवं अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का विस्तार किया जाना अति आवश्यक है। बिहार में खनिज सम्पदा जिस मात्रा में उपलब्ध है उसके उचित दोहन हेतु अनेक उद्योगों का विकास राज्य के अन्तर्गत किया जाना चाहिए उससे भी रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी और बेरोजगारी की समस्या को हल करने में मदद प्राप्त हो सकेगी।

अध्याय-7

समस्या का समाधान

समस्या का समाधान

बेरोजगारी की समस्या राष्ट्रीय चुनौती के रूप में देश के सम्मुख उपस्थित है । सामान्य तौर पर बेरोजगारी को दो भागों में बाँटा जा सकता है- शहरी बेरोजगारी और ग्रामीण बेरोजगारी । दोनों ही प्रकार की बेरोजगारी की समस्याएं अलग-अलग है इसलिए इन्हें दूर करने के उपाय भी अलग-अलग हैं, किन्तु कुछ आधारभूत सुझाव ऐसे हैं जो दोनों ही प्रकार की बेरोजगारी की समस्याओं के समाधान में लागू किये जा सकते हैं । ये सुझाव हैं- जनसंख्या पर नियंत्रण करके, विनियोग की मात्रा में वृद्धि करके तथा देश के आर्थिक विकास की गति में वृद्धि करके रोजगार के अवसर को बढ़ाया जा सकता है । उल्लेख्य है कि बिहार राज्य एक कृषि प्रधान राज्य है और यहाँ पर शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार की बेरोजगारी ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में पायी जाती है । बिहार राज्य की बेरोजगारी की समस्या के समाधान हेतु अधोलिखित कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप प्रदान करना होगा:-

जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण

बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न करने वाले कारकों में सर्वप्रथम जनसंख्या वृद्धि है । वर्तमान समय में बिहार राज्य की जनसंख्या 2 से 2.5 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही है । यदि जनसंख्या की इस बढ़ती हुई दर पर नियंत्रण नहीं लगाया गया तो बेरोजगारी की समस्या का हल प्राप्त

करना कठिन होगा । इसके लिए जनसंख्या की वार्षिक बृद्धि दर एक प्रतिशत से भी नीचे लाना होगा । प्रश्न उठता है कि इसके लिए अतिरिक्त रोजगार के साधनों में बृद्धि करने के साथ ही जनसंख्या की अनियंत्रित बृद्धि पर भी नियंत्रण लगाना होगा, तभी इस समस्या का समाधान प्राप्त किया जा सकता है । जनसंख्या नियंत्रण के सन्दर्भ में परिवार कल्याण कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है । किन्तु इस पर सफल क्रियान्वयन कर परिणाम प्राप्त करना होगा। उल्लेख्य है कि परिवार कल्याण कार्यक्रम से प्राप्त परिणाम दीर्घकालीन होंगे और लम्बे समय के बाद ही इसका प्रभाव बेरोजगारी की समस्या पर पड़ेगा। जिन व्यक्तियों को आगामी 20 वर्षों में रोजगार देना है वे पहले ही जन्म ले चुके हैं । अत: इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि परिवार कल्याण कार्यक्रम एक महत्वहीन कार्यक्रम है । इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि प्रदेश की बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए प्रदेश के आर्थिक विकास की गति में तेजी लानी होगी, विनियोग की मात्रा में बृद्धि करनी होगी और बेरोजगारी दूर करने के लिए प्रभावी कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना होगा ।

विनियोग एवं बचत

प्रारंभिक अर्थव्यवस्था के लिए बचत को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । इससे विनियोग में बृद्धि होगी और पूंजी निर्माण सम्भव होगा । नवीन पूंजी विनियोग से औद्योगिक विकास को बल मिलेगा और रोजगार के नये अवसर उपलब्ध हो सकेंगे । इस प्रकार अधिक बचत — पूंजी निर्माण— विनियोग में बृद्धि— औद्योगिक विकास—रोजगार के अवसरों में बृद्धि ।

शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के स्वरूप में परिवर्तन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली आज भी अंग्रेजों द्वारा चलायी गयी शिक्षा प्रणाली का एक बड़े अंश तक अनुसरण करती है और लिपिक वर्ग की संख्या को बढ़ाने में ही सहायक हो रही है। अतः शिक्षा प्रणाली के स्वरूप में इस प्रकार परिवर्तन किया जाना चाहिए जिससे वह रोजगारपरक हो सके। शिक्षा प्रणाली में शारीरिक श्रम को यथोचित महत्व प्रदान किया जाना चाहिए जिससे व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार हो सके और लोगों को रोजगार प्राप्त करने में आसानी हो।

लघु एवं कुटीर उद्योग

राज्य की बेरोजगारी की स्थिति को देखते हुए लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। कुटीर एवं लघु उद्योग बड़े उद्योगों की तुलना में कम विनियोग से अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में सक्षम हैं। इनका विस्तार ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में आसानी से किया जा सकता है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये श्रम-गहन तकनीक पर आधारित होते हैं इसीलिए इनमें रोजगार की अधिक क्षमता होती है। अतः इनको विकसित कर बिहार की बेरोजगारी की समस्या का समाधान किया जा सकता है। बिहार राज्य की बेरोजगारी की समस्या का हल एक सीमा तक लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास कर किया जा सकता है।

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है और यहाँ कृषि श्रमिकों की संख्या अधिक है जिन्हें पूरे वर्ष रोजगार नहीं मिल पाता है और प्रदेश की तीन चौथाई जनसंख्या गाँवों में निवास करती है तथा अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। अतः इस समस्या का समाधान ग्रामीण उद्योगों के सहारे किस सीमा तक की जा सकती है, इस संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है जहाँ पूँजी की कमी और श्रम की अधिकता है। प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण पूँजी निर्माण की गति मन्द है। अतः पूँजी विनियोग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि विनियोग श्रम प्रधान हो, जिससे अधिक से अधिक लोगों को रोजगार का अवसर प्राप्त हो। इस सन्दर्भ में अन्य विचारणीय बातें अधोलिखित हैं

(1) ~~पारस्परिक~~ परम्परागत उद्योगों को पुनर्जीवित किया जाय। आधुनिक उद्योगों की तकनीक के साथ सामंजस्य स्थापित करके इसे विकसित किया जाय।

(2) जिन सामाजिक कुप्रवृत्तियों के कारण ग्रामीण मजदूरों को गाँव छोड़ने के लिए विवश होना पड़ता है, उन्हें समाप्त करके गाँवों में स्वस्थ सामाजिक वातावरण का सृजन किया जाय।

(3) कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास करके।

(4) प्राकृतिक संसाधनों का सर्वेक्षण करके नये उद्योगों के स्थापित करने की सम्भावनाओं का पता लगाया जाना चाहिए।

(5) ग्रामीण सड़कों का निर्माण अधिक से अधिक किया जाय क्योंकि इससे ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होगा ही, साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में आवागमन की सुविधा बढ़ेगी और आर्थिक गतिशीलता में वृद्धि होगी।

(6) कृषि से सम्बद्ध सहायक उद्योग धन्धों का विकास करके जैसे- पशुपालन, मुर्गीपालन, मत्स्य-पालन, दुग्ध व्यवसाय आदि।

(7) गांवों में बिजली घरों की स्थापना की जानी चाहिए जिससे कृषि के विकास के साथ-साथ ग्रामीण और लघु उद्योगों के लिए बिजली की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके।

(8) छोटी सिंचाई परियोजनाओं का विकास किया जाय।

(9) सहकारिता का विकास किया जाय।

(10) कृषि सेवा केन्द्र स्थापित किये जांय ताकि तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों को गांवों में ही रोजगार मिल सके।

(11) अन्त्योदय कार्यक्रम को और प्रभावी बनाया जाना चाहिए।

(12) ग्रामीण विकास के हर सम्भव प्रयास किये जाने चाहिए।

(13) लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाये जाने के प्रयास किये जाने चाहिए।

इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ग्रामीण अंचलों में भी रोजगार के बहुत से साधन हैं और रोजगार की सम्भावनाएं भी हैं किन्तु आवश्यकता है तो उनके सर्वेक्षण और विकास के लिए योजनाएं कार्यान्वित करने की।

ग्रामीण अंचलों में भी यदि हर प्रकार की सुख सुविधाएं उपलब्ध करा दी जायें तो ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या का शहरों की ओर प्रवाह कम हो जायेगा और नगरीकरण की समस्या से भी निजात पाया जा सकेगा । ग्रामीण क्षेत्रों में पक्की सड़कें, अस्पताल, मनोरंजन के साधन, पुस्तकालय आदि की व्यवस्था होनी चाहिए । इस प्रकार लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन होगा और लोग अपने व्यवसाय ग्रामीण क्षेत्रों में ही रखना पसन्द करेंगे ।

बेरोजगारी की समस्या का अध्ययन कर सुझाव देने हेतु भगवती समिति[1] गठित की गयी थी जिसने 17 मई 1973 को अपनी अन्तिम रिपोर्ट भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत की । समिति की संस्तुतियां इस प्रकार रहीं :-

1- बेरोजगारों को काम की गारण्टी देने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम लागू किया जाना चाहिए ।

2- कार्याधिकार योजना सम्पूर्ण देश में लागू की जानी चाहिए ।

3- गांवों के विद्युतीकरण, सड़क निर्माण, ग्रामीण मकानों और लघु सिंचाई परियोजनाओं को आगामी दो वर्षों में तेजी से लागू किया जाय ।

4- कार्य के घण्टे प्रति सप्ताह 48 घण्टे से घटाकर 42 घण्टे किया जाय और फैक्टरियों को सप्ताह में पूरे सात दिन तक प्रभावी रूप में चालू रखा जाय ।

5- रोजगार एवं शक्ति नियोजन पर एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया जाय ।

6- विवाह की आयु लड़कों के लिए 21 वर्ष और लड़कियों के लिए 18 वर्ष कर दी जाय ।

पाँचवीं योजनावधि में उपर्युक्त नीतियों को स्वीकार करते हुए रोजगार के सम्बन्ध में योजना प्रलेख में इस बात पर जोर दिया गया कि:-

(1) लघु उद्योगों के विस्तार से रोजगार बढ़ेगा ,लघु उद्योग कृषि पर आधारित होने चाहिए या ऐसे बड़े उद्योगों से सम्बद्ध होने चाहिए जो छोटी इकाइयों के लिए कच्चा माल बनाते हों या उनसे यंत्र आदि खरीदते हों ।

(2) शिक्षा को रोजगारपरक बनाया जाना चाहिए ।

(3) एक ओर अर्थव्यवस्था को अधिक रोजगार प्रदान करने योग्य बनाने तथा दूसरी ओर जनसंख्या पर प्रभावी नियंत्रण द्वारा बढ़ती हुई श्रमशक्ति की बाढ़ को रोकने से बेरोजगारी की समस्या हल हो सकती है ।

(4) सामाजिक सेवाओं- सड़क निर्माण,भवन निर्माण, जलपूर्ति ,सफाई , परिवहन ,संचार,कृषि उपकरण,मरम्मत,व्यापार ,बीमा आदि क्षेत्रों का विस्तार किया जाना चाहिए ।

(5) कृषि क्षेत्र में किये जा रहे सुधारों जैसे भूमि सुधार,छोटे कृषकों को रियायती दरों पर कृषि उपकरण उपलब्ध कराना,वितरण व्यवस्था को गरीब कृषकों के अनुरूप बनाना आदि में तेजी लाकर औद्योगिक उत्पादों की माँग में वृद्धि की जानी चाहिए इससे रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी ।

(6) निजी क्षेत्र में रोजगार के अवसरों का भरपूर लाभ उठाया जाना चाहिए तथा इस क्षेत्र को रोजगार देने के सामाजिक दायित्व के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने हेतु अनेक नीतियां अपनायी गयीं किन्तु उनका वांछित परिणाम देश व प्रदेश को इनके प्रभावी कार्यान्वयन के अभाव में न मिल सका ।

वर्तमान समय में बेरोजगारी तथा साधनों एवं विभिन्न योजनाओं की असफलताओं को देखते हुए बेरोजगारी की समस्या के समाधान की कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ रही है । अतः इसके समाधान के लिए चारो ओर से प्रयास करने की आवश्यकता है । इस सन्दर्भ में अधोलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं जिन्हें परिस्थितिवश परिवर्तित किया जा सकता है ।

बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए देश के औद्योगीकरण की गति को तीव्र किया जाय । भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए तो यह और भी आवश्यक है क्योंकि यहां कृषि में अनावश्यक रूप से लोग लगे हुए हैं और कृषि को अनुत्पादक बना रहे हैं । इस प्रकार कृषि में अतिरिक्त श्रम का समावेश कम किया जाना कृषि तथा श्रमिक दोनों के हित में होगा । अतः बेरोजगारी की समस्या का एक महत्वपूर्ण हल औद्योगिक विकास है ।

"काम मिले या न मिले, हम परदेश नहीं जायेगें" यह भावना भारतीय श्रमिकों में संस्कार के रूप में व्याप्त रही है किन्तु अब इस भावना में बहुत कुछ कमी आयी है क्योंकि परिवहन के आधुनिक साधनों के विकास से दूरी तथा समय की समस्या एक बड़ी सीमा तक समाप्त हो गयी है । गांवों में कृषि में अनावश्यक रूप में लगी जनसंख्या को नगरों में मिलों और कारखानों तक पहुंचना चाहिए जहां उनकी आवश्यकता है । इसके लिए इन्हें शिक्षा, सूचना और आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता भी मिलनी चाहिए ।

कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने की पर्याप्त संभावनाएं विद्यमान हैं । इसके लिए छोटी-छोटी तथा बिखरी हुई जोतों की चकबन्दी के द्वारा एक किया जाय और सहकारिता के विकास पर बल दिया जाय । कृषि से सम्बन्धित उद्योग धन्धों का विकास करने से रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी और मौसमी बेरोजगारी कम हो सकेगी ।

रोजगार कार्यालयों की कार्य प्रणाली में सुधार करके उन्हें और अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता है । साथ इनके यहाँ व्यावसायिक प्रशिक्षण का भी पर्याप्त प्रबन्ध किया जाना चाहिए और प्रशिक्षण प्राप्त लोगों को भिन्न विभिन्न वित्तीय संस्थाओं से ऋण आदि की सुविधा दिलाने में रोजगार कार्यालयों को भी सहयोग करना चाहिए जिससे प्रशिक्षण प्राप्त लोग स्व-रोजगार अपना सकें और सरकारी नौकरियों पर उनकी निर्भरता कम हो सके ।

आजकल शारीरिक श्रम करने से अधिकांश व्यक्ति कतराते हैं । अतः ऐसे दृष्टिकोण में परिवर्तन अपरिहार्य जान पड़ता है । इसके लिए शारीरिक श्रम करने वालों को समाज द्वारा महत्व दिया जाना चाहिए । ऐसा होने से शारीरिक श्रम करने में लोग गर्व महसूस करेंगें और सफेदपोशी के पीछे भागने की उनकी प्रवृत्ति में कमी आयेगी । इसके लिए शारीरिक श्रम करने वालों को अच्छा वेतन दिया जाना चाहिए जिससे आकर्षित होकर लोग शारीरिक श्रम को अधिक महत्व दे सकें । प्रत्येक प्रकार की डिग्री प्रदान करने से कम से कम एक वर्ष तक कुछ निश्चित भत्ता देकर गाँवों के विकास से सम्बन्धित कार्य कराया जाय जिससे उन्हें व्यावहारिक ज्ञान तो होगा ही साथ ही वे वास्तविक भारत का दर्शन भी कर सकेंगें ।

बेरोजगारी से सम्बन्धित सही आंकड़ों का सर्वथा अभाव है। रोजगार कार्यालयों की जीवित पंजिका के अनुसार जो आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं वे वास्तविक तथ्य प्रस्तुत नहीं कर पाते क्योंकि बहुतायत संख्या में ऐसे बेरोजगार होते हैं जो अपना पंजीयन इन कार्यालयों में नहीं कराते हैं। अशिक्षित बेरोजगारों का अधिकांश भाग अपना पंजीकरण रोजगार कार्यालयों में नहीं कराता है। ग्रामीण अंचलों के कुछ शिक्षित बेरोजगार भी अपना पंजीकरण नहीं कराते हैं। इस प्रकार बेरोजगारी से सम्बन्धित आंकड़े अपर्याप्त सिद्ध होते हैं जो किसी वास्तविक निष्कर्ष को प्राप्त करने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं।

मार्च 1972 को लखनऊ में आयोजित एक अखिल भारतीय छात्र नेता सम्मेलन में यह मांग की गयी थी कि काम करने का अधिक एक बुनियादी अधिकार माना जाना चाहिए।[1] जिन लोगों को रोजगार न मिल सके उन्हें बेरोजगारी भत्ता दिया जाना चाहिए। भारत जैसे विशाल बेरोजगार संख्या वाले देश के लिए यह जितना कठिन है उतना ही अव्यावहारिक भी। क्योंकि ऐसा कर देने से रोजगार के इच्छुक न होते हुए भी लोग अपनी शैक्षिक योग्यता के आधार पर बेरोजगारी भत्ता प्राप्त करने का प्रयास करने लगेंगे और गुणात्मक शिक्षा के स्थान पर परिमाणात्मक शिक्षा को प्रोत्साहन मिलेगा जो देश के भविष्य के लिए घातक सिद्ध होगा। अतः बेरोजगारी भत्ता देने से बेरोजगारों को रोजगार में माना भी नहीं जा सकता क्योंकि भत्ता की राशि अत्यन्त अल्प ही होगी और इससे उनका भरण-पोषण भी नहीं हो सकेगा।

1- नवभारत टाइम्स, 3 मार्च, 1972.

वर्तमान समय में विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत कर्मचारियों के अवकाश ग्रहण करने की वय 58 से 60 वर्ष है । इस सन्दर्भ में शोधकर्ता का अभिमत है कि जिन कर्मचारियों की नौकरी 30 वर्ष की या उनकी उम्र 50 वर्ष हो चुकी हो उन्हें अनिवार्य रूप से अवकाश प्रदान किया जाय । ऐसा करने से एक लाभ यह प्राप्त होगा कि इससे निरन्तर बढ़ती हुई कार्यक्षमता प्राप्त होगी और नये बेरोजगारों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकेंगे ।

स्पष्ट है कि भारत की पृष्ठभूमि में बेरोजगारी अपने विभिन्न स्वरूपों के साथ बड़ा रूप धारण करती चली जा रही है । बेरोजगारी को कम करने के जो भी उपाय किये जा रहे हैं वे भौतिक साधनों की कमी के कारण अपर्याप्त सिद्ध हो रहे हैं । आज यह राष्ट्र के सामने एक चुनौती के रूप में विद्यमान है । राष्ट्र का प्रत्येक शुभ-चिन्तक इस समस्या के प्रति चिंतित है और इसका हल ढूढ़ने का प्रयास कर रहा है । भारत का प्रत्येक प्रान्त भी इससे अत्यधिक पीड़ित है । बिहार राज्य जो प्राकृतिक सम्पदा की दृष्टि से एक धनी राज्य माना जाता है, भी बेरोजगारी की समस्या से जूझ रहा है । इस समस्या का हल यदि नहीं होता है तो कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने की बात सोचना एक कोरी कल्पना ही होगी । हमें अपने आर्थिक प्रणाली का नियोजन इस प्रकार करना होगा जिससे उत्पादन तथा उपभोग में उचित सन्तुलन बना रहे । इस समय बिहार राज्य की सबसे बड़ी आवश्यकता इस समस्या का समाधान ढूढ़ना है ।

बेरोजगार व्यक्ति के अन्दर बड़ी भयानक दुर्भावनाएं उठती रहती हैं और इसी के वशीभूत होकर वह गलत कार्यों की ओर उन्मुख हुआ करता है। हमारी सभ्यता और सामाजिक व्यवस्था में इस प्रकार के कार्यों की जहाँ एक

और भर्त्सना की गयी है वहीं दूसरी ओर "विभुक्षितं किंम् न करोति पापम्" कहकर कुछ स्वीकृति भी दी गयी है । इस समस्या का समाधान नारे लगाने, भाषण देने, झूठे आश्वासन देने, कागज पर लम्बी-लम्बी योजनाएं बनाने मात्र से ही नहीं होगा वरन् इस समस्या का समाधान गंभीरता से इसके उन्मूलन के लिए योजनाएं कार्यान्वित करने से ही होगा । आज आवश्यकता है इस संदर्भ में सही कदम उठाने की । रोजगार दिलाने का उत्तरदायित्व सरकार का है अत: सरकार को भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाने चाहिए ।

रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने की सबसे अधिक गुंजाइश अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में है । कृषि तथा कृषि से सम्बन्धित अधिकांश धन्धे श्रम-प्रधान हैं, अत: ग्रामीण रोजगार क्षेत्र की प्रगति के द्वारा तमाम अर्द्ध-बेरोजगारों एवं पूर्ण बेरोजगारों के लिए रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है । बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की एक ऐसी विशेषता है जिसके कारण ग्रामीण निर्धनता व ऋण ग्रस्तता की समस्या अधिक जटिल होती जा रही है । अत: ग्रामीण बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी को उत्पादक क्रियाओं में लगाना एक प्रकार से ग्रामीण तकनीकी आन्दोलन है । ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का एक उद्देश्य कृषि कार्य में लगे हुए व्यक्तियों के लिए गैर कृषि मौसम में पूरक रोजगार की व्यवस्था करना होना चाहिए किन्तु ग्रामीणों के लिए रोजगार की व्यवस्था करते समय दो बातों पर ध्यान रखना चाहिए--(1) कृषकों को रोजगार प्रदान करते समय उनकी इच्छा पर ध्यान रखना आवश्यक है कि रोजगार की सुविधाएं उनकी कृषि भूमि के आस-पास हों । यह बात कृषि श्रमिकों के लिए भी लागू होती है । (2) ऐसे धन्धों के विस्तार पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए जिनमें अधिक श्रम शक्ति तथा संसाधनों की खपत होने के साथ-साथ परम्परागत ग्रामीण तकनीकी के माध्यम से ग्रामीण परिवारों

को पर्याप्त रोजगार उपलब्ध होने के साथ इनकी आय में भी वृद्धि हो सकती है ।

ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने में ग्रामीण उद्योगों के विस्तार की योजना काफी हद तक सहायक सिद्ध हो सकती है । इसके द्वारा न केवल रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी बल्कि राष्ट्रीय आर्थिक विकास में भी योगदान प्राप्त होगा । उदाहरण के लिए खादी ग्रामोद्योग के द्वारा एक परम्परागत राष्ट्रीय हस्तकला के ह्रास को रोका जा सकता है । इस उद्योग में 3 मिलियन बुनकरों को रोजगार प्राप्त है । एक अनुमान के अनुसार इस उद्योग में एक अतिरिक्त रोजगार सृजन के लिए मात्र 350रू0 की आवश्यकता होती है । अतः रोजगारी नीति का उद्देश्य इस उद्योग की अधिकाधिक उन्नति करना होना चाहिए ।

ग्रामीण उद्योगों में अनेक उद्योग ऐसे हो सकते हैं जिनकी प्रगति से बेरोजगारी की मात्रा में कमी लायी जा सकती है । ऐसे उद्योगों की एक सूची शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत है जो इस प्रकार है :-

(1) चर्म सामग्री उत्पादन
(2) चावल छटाई(छोटी मशीन द्वारा)
(3) तेल पेराई
(4) कपास से सूत का उत्पादन(छोटी मशीन द्वारा)
(5) बुनाई(शक्तिचालित करघा)
(6) रस्सी बनाना
(7) मूंज व निवाड़ की बुनाई

(8) जूट के सूत का उत्पादन और टाट की वस्तुओं की बुनाई

(9) साबुननिर्माण

(10) मोमबत्ती का निर्माण

(11) दियासलाई का निर्माण

(12) फल और वानस्पतिक वस्तुओं के सॉस तथा मुरब्बे

(13) दाल आदि का बनाना

(14) अचार आदि बनाना

(15) फल संरक्षण

(16) लुहार, बढ़ई, सुनार आदि के कार्य

(17) मधुमक्खी पालन

(18) मत्स्य पालन

(19) दुग्ध व्यवसाय

(20) पशुपालन

(21) मुर्गीपालन आदि ।

उपर्युक्त सूची मात्र निर्देशनीय है, पूर्ण नहीं । इस प्रकार के उद्योग धन्धों की संख्या और भी हो सकती है । यदि इन उद्योगों का विकास वांछित दिशा में किया जाय तो इससे उद्योगों का विकेन्द्रीकरण होगा और ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक परिवेश का निर्माण होगा तथा ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या का एक सीमा तक समाधान भी हो सकेगा । ये उद्योग बड़े उद्योगों के प्रतियोगी न होकर पूरक हैं तथा इनमें विनियोग की मात्रा भी कम होती है ।

प्रगति के लिए ग्रामीण उद्योगों में पशुपालन, डेयरी फार्म, गोबर गैस प्लाण्ट आदि को अधिक महत्व प्रदान किये जाने की आवश्यकता है। क्योंकि इनके द्वारा रोजगार के साथ-साथ कई अन्य समस्याओं के समाधान होने की संभावनाएं बनती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में राष्ट्रीयकृत बैंक तथा सहकारी संस्थाएं पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान करके ग्रामीण रोजगार के अवसरों में निश्चित रूप से अभिवृद्धि ला सकती हैं। इनके सहयोग से ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि तथा उद्योग दोनों की प्रगति सम्भव है।

शहरी बेरोजगारी की समस्या को दूर करने में कम लागत वाले आवासों के निर्माण की योजना काफी सहायक सिद्ध हो सकती है। कम लागत वाले आवासों का निर्माण करना एक सामाजिक आवश्यकता भी है। इसके द्वारा समाज के कमजोर वर्ग के लिए आवासीय सुविधा में वृद्धि होने के साथ-साथ अनेक बेरोजगारों को, जिनमें कुशल तथा अकुशल दोनों शामिल हैं, रोजगार प्राप्त हो सकेगा।

रोजगार के अन्तर्गत कार्य करने के लिए कई प्रकार के अवसर हो सकते हैं जैसे अपने लिए कार्य करना अथवा स्वयं कोई रोजगार करना, दूसरों के लिए मजदूरी पर कार्य करना, दूसरों को मजदूरी पर रोजगार देना। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था का विकास होता जाता है तथा इसकी संरचना में परिवर्तन होता जाता है, नये तथा पूरक कार्य के अवसरों के अनुपात के मध्य श्रमिकों तथा मालिकों के साथ-साथ स्वयं रोजगार करने वाले व्यक्तियों के मध्य अनुपात में भी परिवर्तन होता जाता है। अतः विकास व रोजगार नीतियों का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य इन अनुपातों को नियोजित तरीकों से संतुलित करके अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाना होना चाहिए।

रोजगार की समस्या के हल के लिए छोटे तथा बड़े दोनों प्रकार के उद्योगों के विकास पर ध्यान देना चाहिए । इसी प्रकार वाणिज्य,व्यापार, यातायात,शक्ति के साधनों आदि की प्रगति आवश्यक है[1] क्योंकि इनके द्वारा संगठित और असंगठित दोनों के मध्य समन्वय स्थापित हो सकता है ।

मिश्रित परिणामों वाली उत्पादन विधि के द्वारा भी रोजगार वृद्धि की संभावना है । दूसरे शब्दों में निश्चित दुर्लभ साधनों के साथ वस्तुओं के मिश्रित उत्पादन में भी परिवर्तन के द्वारा रोजगार में वृद्धि की संभावना है । इस विधि का प्रयोग परस्पर उद्योगों तथा किसी एक उद्योग के विभिन्न स्तरों पर हो सकता है । मिश्रित वस्तुओं का उत्पादन रोजगार का प्रामाणिक निर्धारक बन सकता है ।[2] अन्य वस्तुओं की तुलना में कुछ वस्तुओं के उत्पादन में श्रम की अधिक मात्रा लगती है। उदाहरण के लिए सूती वस्त्र उद्योग,हस्तशिल्प कला तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य अधिक श्रम प्रधान उद्योग हैं । भारत जैसे विकासशील देश में औद्योगिक इकाइयों,तकनीकी ,विपणन विशेषज्ञों तथा इंजीनियरिंग कार्य में लगे व्यक्तियों को ऐसी कम लागत वाली वस्तुओं के उत्पादन विधियों की खोज करनी चाहिए जो देश के बहुसंख्यक कमजोर वर्ग की आवश्यकता की पूर्ति कर सके । तकनीकी परिवर्तन की दर,तरीके के प्रोत्साहन

1- तारलोक सिंह- इण्डियाज डेवलपमेण्ट एक्सीपिरियन्स, द मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि0,1974,पृ0-91-92.

2-मारवेट,डी0- इम्प्लायमेण्ट इम्प्लीकेशन आफ इंस्टीट्यूलाइजेशन इन डेवलपिंग कन्ट्रीज,इकोनामिक जर्नल,सितम्बर,1974,पृ0-499-542.

तथा संसाधन के द्वारा देश की विकासीय योजनाएं रोजगारपरक बनायी जा सकती हैं।[1] कुछ परिस्थितियों में यह संभव है कि तकनीकी चुना अधिक प्रभावी न हो तथा इनमें से किसी विशेष अथवा अनोखी तकनीकों को चुनना पड़े। उदाहरणस्वरूप पेट्रोकेमिकल्स उद्योग जैसे निरन्तर क्रियाशील उद्योग को लिया जा सकता है किन्तु अन्य क्षेत्रों में जहाँ रोजगार अधिक है और तकनीकी परिवर्तन के कारण श्रम को अपने स्थान से हटना पड़ सकता है और रोजगार वृद्धि के लिए मिश्रित तकनीकी (श्रम एवं पूंजी प्रधान) की नीति को अपनाना पड़ सकता है। यह नीति किसी एक तकनीक की चुनाव करने वाली नीति से भिन्न है जिसे मध्यम तकनीकी अथवा उपयुक्त तकनीकी के रूप में भारत जैसी श्रम अधिकता वाली अर्थव्यवस्था के लिए प्रयुक्त करने की सलाह दी जा सकती है।[2] भारत तथा बिहार के कुछ क्षेत्रों में श्रम प्रधान तकनीकों को अधिक विकसित करने तथा श्रम की नयी तकनीकों का विकास करते समय तकनीकी कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में भी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। नयी विधियों के खोज के आधार पर ही नयी तकनीकों के खोज की उपयोगिता होती है। आर्थिक आवश्यकता तथा क्रियाशील उद्यमों के लिए तकनीकी तथा उत्पादन प्रक्रिया का विशेष स्थान है तथा आर्थिक आवश्यकताओं तथा क्रियाशील उद्यम से तकनीकी तथा उत्पादन की प्रक्रिया निकली हुई है।[3] तकनीकी विकास को वास्तविक उत्पादन में स्वतंत्र रूप से नहीं देखा जा सकता है।

1- सुमेकर, ई०एफ०- स्माल इज ब्यूटीफुल: इकोनामिक्स ऐज इफ पीपुल्स मैटर्ड, सी०हारपर, कोलोफोन बुक्स, न्यूयार्क, 1975.

2- कृष्णराज, ऐन एनलिसिस आफ दि अनइम्प्लायमेण्ट टाप वीट पालिसी इम्प्लीकेशन, इण्टरनेशनल लेबर रिव्यू, जेनेवा, 1971.

3- गुस्टव रानिस-आउटपुट एण्ड इम्प्लायमेण्ट इन दि 70 केन फीयर।

वर्तमान बेरोजगारी की समस्या के संदर्भ में राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय स्तर पर रोजगारपरक तकनीकी के विकास की नितान्त आवश्यकता है। इस पर अनुसंधान किये जाने चाहिए। इस सम्बन्ध में रोजगारपरक तकनीकी के नये संस्थानों की स्थापना की जा सकती है किन्तु औद्योगिक इकाइयों में अनुसंधानों के द्वारा उत्पादन से सम्बन्धित समस्त समस्याओं का अधिक सरलता से हल निकाला जा सकता है। इस दृष्टि से रोजगारपरक तकनीकी संस्थाओं एवं उद्योगों को सम्बन्धित रखना उपयोगी है। रोजगारपरक तकनीकी विकास का दूसरा तरीका यह है कि आधुनिक औद्योगिक देशों में होने वाले अनुसंधानों के परिणाम तथा अपनायी जाने वाली उत्पादन तकनीकी को यदि वह उपयुक्त है तो अपने देश में भी अपना लिया जाय।[1]

रोजगारपरक विकासीय योजनाओं के अन्तर्गत ग्रामीण कार्य योजनाओं से विशेष लाभ प्राप्त होने की संभावना है। अनुमान है कि केवल सिंचाई सुविधाओं के विस्तार के द्वारा प्रति हेक्टेयर भूमि के अनाज उत्पादन में श्रम की मात्रा में आनुपातिक रूप से 64 व्यक्ति दिन से 115 व्यक्ति दिन की वृद्धि अथवा 80 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है।[2]

अधिक रोजगारपरक योजनाओं के सम्बन्ध में डडले जैक्सन तथा एच०ई०टर्नर ने रोजगार के लिए बजट सृजन की उपयोग सलाह दी है। इसके

1-नोरथोश,डब्लू०ए०-इनकैम,ग्रोथ एण्ड डेवलपेंट, एम०आई०टी०प्रेस,कैम्ब्रिज, 1969।

2-राज कृष्णा राव-रूरल इम्प्लायमेण्ट पालिसीज फार फिफ्थ प्लान,इकोनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली,मार्च 1973,पृ0-481।

अनुसार बजट सृजन के अन्तर्गत बेरोजगारों को पारिश्रमिक प्रदान करने के लिए सरकारी उधार के साथ-साथ वित्तीय आय का उपयोग भी सम्मिलित है । राज्य में उपयुक्त रोजगार प्रदान करने के लिए बजट का उपयोग किया जा सकता है किन्तु बजट का उपयोग तभी करना चाहिए जबकि इसके द्वारा वास्तविक रूप में जरूरतमंद व्यक्तियों को ही रोजगार प्राप्त हो सके क्योंकि यदि बजट की सहायता से निर्धन और जरूरतमंद व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त नहीं हो सकता तो इससे अर्थव्यवस्था में स्फीतिजनित दुष्परिणामों को प्रोत्साहन मिलने की पूर्ण संभावना है ।

जहाँ तक रोजगार के अवसरों में वृद्धि का प्रश्न है, नयी अवधारणा के अनुसार अधिक राष्ट्रीय उत्पादन व आय अच्छा स्वास्थ्य तथा अन्य विकासीय उद्देश्यों के अतिरिक्त रोजगार को अपने आप में एक उद्देश्य होना चाहिए । उच्च स्तरीय उत्पादक रोजगार प्राप्त करने के लिए एक अलग आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है । अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति तब तक संभव नहीं हो सकती जब तक इसे विकास रणनीति का एक महत्वपूर्ण पृथक उद्देश्य न बना दिया जाये ।

अधिकतर आर्थिक प्रगति के असन्तुलनों के कारण रोजगार की समस्या उत्पन्न होती है । श्रम शक्ति की वृद्धि दर शहरी जनसंख्या की वृद्धि दर, शिक्षा सुविधाओं तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की प्रगति के मध्य व्याप्त असंतुलन के वर्तमान ढांचे में रोजगार प्रदान करने की संभावना और अधिक दुष्कर हो जाती है । इन असन्तुलनों पर प्रहार करके आय, शिक्षा तथा भूमि के स्वामित्व आदि की असमानताओं को समान बनाने में भी सहायता दी जा सकती है ।

प्रशिक्षण के अभाव अथवा संसाधनों के लिए पर्याप्त विनियोग के अभाव के कारण,उपकरणों की कमी व इनकी अक्षमता आदि के कारण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में श्रम शक्ति का अपर्याप्त शोषण हो रहा है । शिक्षित व्यक्ति अपनी योग्यता और इच्छानुसार कार्य न मिलने से बेरोजगार हैं तथा निजी रोजगार में लगे व्यक्तियों में भी निर्धनता व निम्न आय की समस्या इसलिए अधिक पायी जाती है क्योंकि वे उत्पादन बृद्धि की कला व विधियों की कम जानकारी रखते हैं अतः रोजगार नीति के लक्ष्यों का निर्धारण करते समय उपरोक्त सभी बातों पर पर्याप्त विचार करते हुए इन सामाजिक समस्याओं को दूर करने के विभिन्न कार्यक्रमों को बनाने पर समान रूप से ध्यान देना चाहिए ।

राज्य एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के ग्रामीण व शहरी क्षेत्र,जनसंख्या कृषि व गैर कृषि क्षेत्र आधुनिक व परम्परागत क्षेत्र तथा जीवन की आवश्यकताओं आदि सर्वत्र असन्तुलन अथवा असमानता की स्थिति को देखते हुए हर क्षेत्र में रोजगार नीति द्वारा सन्तुलन स्थापित करने की आवश्यकता है किन्तु अर्थव्यवस्था की संरचना तथा लोगों की आर्थिक दशा को देखते हुए रोजगार कार्यक्रम का सबसे पहला लाभ उन ग्रामीण व्यक्तियों को प्राप्त होना चाहिए जो निर्धनता रेखा के नीचे रहते हुए अर्द्ध बेकारी की स्थिति में हैं । इसके उपरान्त समस्त बेरोजगारों को लाभान्वित करने वाले कार्यक्रमों पर ध्यान देना चाहिए । यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि ग्रामीण श्रम शक्ति का अधिक उपयोग होना आर्थिक तथा सामाजिक विकास की कुंजी है ।[1]

1-गुन्नार मिर्डल- एशियन ड्रामा ।

रोजगार नीति इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे एक ओर बेरोजगारों की संख्या में कमी हो और इस नीति का देश के आर्थिक विकास और जनसंख्या नीति के साथ सामंजस्य स्थापित हो सके । इस आधार पर रोजगार नीति के मुख्य तीन उद्देश्य हो सकते हैं । एक तो यह कि यह नीति बेरोज़गारी व गरीबी को दूर करे, दूसरे, स्थायी परिसम्पत्तियों का निर्माण करके, तीसरे, यह रोजगार सृजन तथा जनसंख्या वृद्धि में ताल-मेल रखने के साथ-साथ व्यक्ति की आय में वृद्धि द्वारा जनसंख्या नीति के लिए प्रतिपूरक सिद्ध हो ।

बेरोजगारी के संदर्भ में कृषि का विकास

भारतीय अर्थव्यवस्था के योजनाबद्ध आर्थिक विकास में प्रयत्नशील नियोजकों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि विकास की किसी भी तर्कसंगत व्यूह-रचना में कृषि विकास का केन्द्रीय स्थान है । आधुनिक औद्योगिक विकास के लिए एक सुदृढ़ आधार होना चाहिए । कृषि भारत जैसे देश के लिए गतिशील एवं कारगर तथा सुदृढ़ आधार उपलब्ध कराने में सक्षम है । इसलिए बिना सुनियोजित कृषि के विकास के आर्थिक विकास की किसी ऐसी नीति का उद्देश्य जो लोगों के रहन-सहन परिवर्तित करके समृद्ध बनाने से सम्बन्धित हो, सभी को रोजगार प्रदान करना हो, की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । इस परिपुष्ट प्रमाण के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत है । नियोजनकर्ताओं ने इसी विकास मॉडल जो कि कृषि विकास की अपेक्षा वृहद उद्योग विकास पर बल देता है, का अन्धानुकरण करते हुए यहाँ के आर्थिक विकास के लिए उसको प्रयोग करना उनकी बहुत बड़ी भूल का द्योतक है । इन

अर्थशास्त्रियों ने रूस के विद्वानों के प्रभाव में आकर यह विचार रखा था कि बड़े-बड़े एवं मूलभूत उद्योगों के विकास के माध्यम से देश की समृद्धि दर बढ़ा देने से कृषि का विकास अपने आप हो जायेगा ।

इस प्रकार स्टील,उर्वरक,सीमेन्ट,बड़ी-बड़ी मशीनों और दूसरे बहुत से बड़े-बड़े उद्योगों के संवर्द्धन में प्रयत्नशील इन आयोजकों ने कृषि विकास की उपेक्षा दूसरी योजना में की थी । इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग चार दशकों के बाद भी आयोजन ने एक स्थिर,गतिशील एवं आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के स्थान पर अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबावों के जीवन की बढ़ती हुई सामाजिक एवं आर्थिक विपन्नता तथा कृषि एवं उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में हीन उत्पादिता को बढ़ावा दिया है ।

विकास की प्रक्रिया को समाज के ऊपर बलात् लादा नहीं जा सकता है । यह प्रक्रिया संचयी एवं स्वेच्छाचारी तब तक नहीं हो सकती जब तक कि जनसाधारण अपने सम्पूर्ण प्रयत्नों को समर्पित करने के लिए तैयार न हो जाय । इसलिए विकास की प्रक्रिया प्रारंभ करने के पहले उसके अनुरूप वातावरण पैदा करना नितान्त आवश्यक हो जाता है । आयोजन के इतने लम्बे समय के बाद हम इसको तैयार नहीं कर पाये हैं । ग्रामीण प्रधान भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामेतर विकास परियोजनाएं स्थायी एवं सन्तुलित विकास की गति नहीं दे सकती हैं । भारत जैसे अर्द्धविकसित देश की समृद्धि वहाँ के कृषि क्षेत्र के उत्पादन योग्यता व ग्रामीण क्षेत्रों में संरचनात्मक परिवर्तन तथा आधारित संरचना पर निर्भर करती है । कृषि क्षेत्र की विशालता को देखते हुए भूमि की उत्पादकता में वृद्धि आर्थिक विकास को द्रुत गति प्रदान करेगी । कृषि क्षेत्र में आधुनिक

प्रवृत्तियों के साथ-साथ इस क्षेत्र में करारोपण एवं बचत को महत्वपूर्ण ढंग से बढ़ावा देना भी अहम भूमिका रखता है ।[1]

बढ़ती हुई जनसंख्या की कृषि पदार्थों की मांग और नवीन भूमि के रूप में प्राकृतिक साधनों का नगण्य हो जाना, कृषि क्षेत्र में आयोजन की कई नवीन समस्याओं को उत्पन्न करता है जो देश एवं राज्य के भावी विकास से निकटतम रूप से सम्बन्धित है । भीषण रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कृषि योग्य भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है, जो बेरोजगारी, अर्द्ध बेरोजगारी तथा छिपी हुई बेरोजगारी जैसी गंभीर समस्याओं को और उग्र बना रहा है । इसके अतिरिक्त कृषि जो इस समय भी अधिकांशतः परम्परागत रूप में विद्यमान है, का सम्पूर्ण रूप से आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए क्योंकि इससे राष्ट्रीय आय और रोजगार पर दूरगामी प्रभाव पड़ेंगे ।[2] परन्तु यह कार्य सिद्धान्त और योजना प्रारूपों के रूप में भले ही सरल दिखाई दे परन्तु मार्ग में वास्तविक व्यावहारिक रूप के लिए हमें आने वाले सभी अवरोधों को दूर करके व्यवस्थित व्यूह रचना का निर्माण एवं कार्यान्वयन आवश्यक है ।

आर्थिक संवृद्धि स्थिरीकरण एवं आर्थिक न्याय हमारे आयोजन के सर्वमान्य उद्देश्य रहे हैं । इनके परिप्रेक्ष्य में कृषि का विकास किया जाना चाहिए । इसके लिए कृषि क्षेत्र की समस्याओं के इन छुट-पुट सुधारों की

1-डा0आर0के0गोबिल-मोबिलाइजेशन आफ रिसोर्सेज इन एग्रीकल्चरल टैक्स इन यू0पी0 ।

2-रिपोर्ट आफ दि फिफ्थ फाइव ईयर प्लान, पृ0-25.

सीमितता को समझना होगा तथा आर्थिक नीतियों का निर्माण दीर्घकालीन विकास के सन्दर्भ में करना होगा ।[1]

कृषि उत्पादित को बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र में जहाँ एक ओर नवीन एवं संशोधित तकनीकों तथा भारी मात्रा में पूंजी निवेश की आवश्यकता है, वहीं दूसरी ओर संरचनात्मक परिवर्तन तथा सामाजिक न्याय को ध्यान में रखना वांछनीय है । छोटे तथा सीमान्त किसानों तथा बड़े किसानों के बीच निरन्तर बढ़ते हुए अन्तर, विखण्डित एवं छोटे आकार की जोतों आदि की समस्याओं का सुलझाने के लिए तथा कृषि को नवीन तकनीकों के अनुकूल बनाने के लिए कार्यक्रम को पूरा कर लेना चाहिए । इस सम्बन्ध में एक और महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हम तकनीक का आयात तो कहीं से कर सकते हैं परन्तु उसका प्रयोग एवं संचालन अपने देश एवं प्रदेश की आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाना चाहिए । कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत आधुनिक विज्ञान और आविष्कार के प्रयोगों तथा तकनीकी परिवर्तन के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया को अपनाया जा सकता है[1] :-

(1) पारम्परिक ढंगों से प्रारंभ करना और धीरे-धीरे आधुनिक विज्ञान का प्रयोग

(2) उच्च विकसित तकनीकों से आरंभ करना और उनको नवीन विकासशील देशों के अनुकूल बनाना ।

1-तारलोक सिंह- इण्डियाज डेवलपमेन्ट एक्सीपिरिएन्स, पृ0-15.

(3) विकासशील देशों की तकनीकी समस्याओं का नवीन उपागम और शोध द्वारा विश्लेषण करना और उत्पादन के नये ढंग निकालना ।

कृषि में अवरोधों की स्थिति को देखते हुए भावी विकास की प्रक्रिया में कृषि व औद्योगिक क्रियाओं को सम्मिलित करना होगा और कृषि रोजगार की संभावना को बढ़ाना होगा । औद्योगिक संरचना को गतिशील दिशा देने के लिए ग्रामों का औद्योगीकरण एवं नगरीकरण आवश्यक है । प्रदेश तीव्र गति से आर्थिक विकास की ओर अग्रसर हो सके ,इसके लिए शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच स्थापित द्वित्व को समाप्त करना होगा । भारतीय अर्थव्यवस्था तथा बिहार की अर्थव्यवस्था के सूक्ष्म विवेचन से ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा,यातायात एवं संदेशवाहन ,पूंजी और कुशल साहसियों का सर्वथा अभाव है परन्तु यहाँ भूमि ,श्रम और कच्चे माल की बहुलता है । दूसरे, शहरी क्षेत्र में पहले प्रकार की चीजें तो पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं, परन्तु दूसरी श्रेणी की चीजों का सर्वथा अभाव है । इस प्रकार विकास के लिए इन दोनों क्षेत्रों को एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करने के लिए निकट लाना होगा । आधुनिक व परम्परागत क्षेत्रों की सम्मिलित अन्तर्क्रिया भारतीय तथा बिहार की अर्थव्यवस्था में अत्यन्त अपेक्षित ,रोजगार संरचना में सुधार व राष्ट्रीय आय के गठन के परिवर्तनों को संभव बनायेगी । विकास की यह नवीन नीति भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम करेगी तथा अर्थव्यवस्था में विविधीकरण को प्रोत्साहित करेगी । दोषपूर्ण आर्थिक आयोजन के परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र और उसके बाहर रोजगार अवसरों में अपर्याप्त वृद्धि हुई है । योजना आयोग ने अपने प्रकाशन "एप्रोच टू दि फिफ्थ प्लान" में इस बात का

स्पष्ट उल्लेख किया है कि औद्योगीकरण की वर्तमान गति पर कृषि से गैर-कृषि में श्रम-शक्ति के स्थानान्तरण का प्रश्न ही नहीं उठता । कृषि क्षेत्र में बढ़ने वाली श्रम शक्ति को कृषि क्षेत्र में ही रोजगार देना होगा । पंजाब और हरियाणा में कृषि क्षेत्र में हुए मशीनीकरण के साथ-साथ कृषि उद्योगों का विकास हुआ है जिसमें बेरोजगारी बढ़ने नहीं पायी है ।

कृषि क्षेत्र में विचारणीय समस्या व्यावसायिक बदलाव की है जिसके लिए तीव्र आर्थिक विकास एवं पूंजी निर्माण की दर को बढ़ाना महत्वपूर्ण है परन्तु श्रम बाहुल्य ग्रामीण एवं कृषि क्षेत्रों में वित्तीय पूंजी की अपेक्षा श्रम को प्रधानता दी जानी चाहिए । सहकारिता,सेवासहकारिता एवं संयुक्त कृषि प्रणालियों की आदर्श व्यवस्था के द्वारा छोटे-छोटे एवं बिखरे जोतों को आर्थिक जोत के रूप में संगठित करने की आवश्यकता है । जब तक भारत तथा बिहार में खेतिहर और उत्पादक इतने बिखरे और असंगठित होंगे जैसे कि वे आज हैं तो इनके बारे में विचार निरर्थक सिद्ध होगा । कृषि आयोजन को सम्भव बनाने के लिए सर्वप्रथम कृषि उत्पादकों को इस प्रकार संगठित करना होगा कि वे और उनका संगठन नियोजन के उद्देश्यों में रूचि लेने लगें ।[1] कृषि एवं कृषि संगठनों में पूंजी,संसाधनों का निर्माण, पशुपालन व कुटीर उद्योगों को पर्याप्त महत्व देना चाहिए । क्योंकि उत्पादक रोजगार,अवसरों की वृद्धि द्रुत आर्थिक विकास और आर्थिक असमानताओं को कम करने के लिए नितान्त

1- डी0आर0गाडगिल - प्लानिंग फार एग्रीकल्चरल डेवलपमेण्ट ।

आवश्यक है । कृषकों और भूमिहीन श्रमिकों को उचित मात्रा में आगतों की प्राप्ति तथा आधारित मूल्यों का आश्वासन कृषि क्षेत्र विकास योजनाओं की सफलता के लिए आवश्यक है । नीतियों का कार्यान्वयन इस रूप में हो कि कृषि क्षेत्र में दुर्विधिता में कमी हो, संसाधनों का संग्रह हो तथा पर्याप्त वित्तीय विनियोग द्वारा गाँवों और गाँवों के पास कस्बों में गैर कृषि कार्यों में रोजगार की संभावनाएं बढ़ें । इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस राज्य में 3/4 भाग जनसंख्या प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर करती है, वहाँ कृषि क्षेत्र का विकास नि:संदेह बेरोजगारी की समस्या का एक सीमा तक हल करने में सक्षम है ।

रोजगार अवसरों में वृद्धि इस प्रकार हो जिससे तात्कालिक समय में बेरोजगारी को दूर किया जा सके और भविष्य में बेरोजगारी उत्पन्न न हो । इसके लिए समन्वित कार्यक्रम क्रियान्वित किये जाय । रोजगार के अवसरों में वृद्धि इस प्रकार की जानी चाहिए जिससे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की उत्पादकता बढ़े । इससे राष्ट्रीय उत्पादन एवं आय बढ़ेगी । केवल सेवा क्षेत्र के विस्तार से रोजगार वृद्धि अर्थव्यवस्था पर दीर्घकाल में प्रतिकूल प्रभाव छोड़ेगी। अत: आर्थिक विस्तार एवं रोजगार सृजन में इस बात का ध्यान रखना होगा ।

नयी आर्थिक नीति के कार्यान्वयन में बाजार पर आधारित अर्थव्यवस्था के विकास में इस बात का ध्यान सतर्कता के साथ रखना होगा कि कृषि एवं उद्योग की उत्पादकता में वृद्धि हो, केवल सेवा क्षेत्रों का विस्तार का उद्देश्य प्राथमिक एवं गौण क्षेत्र का विस्तार हो जिससे भविष्य में समन्वित एवं सन्तुलित आर्थिक विकास संभव हो सके ।

अध्याय-8

उपसंहार

उपसंहार

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है । इस राज्य की सम्पूर्ण आय में कृषि क्षेत्र का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । खनिज सम्पदा की दृष्टि से भी इस राज्य का योगदान देश की अर्थव्यवस्था में 30 प्रतिशत से अधिक का है । किन्तु यह देखा गया कि राज्य की प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त कम है और निर्धनता, गरीबी, बेरोजगारी, असमानता, अशिक्षा आदि का जो आलम इस राज्य में देखा जा सकता है, वह मुश्किल से ही किसी खनिज सम्पदा की दृष्टि से सम्पन्न अन्य किसी राज्य में दिखायी दे । उत्तर प्रदेश जो इसका पड़ोसी राज्य है उसकी प्रति व्यक्ति आय सातवीं योजना की अवधि में 992 रू0 थी जबकि बिहार राज्य की प्रति व्यक्ति आय इसी अवधि में 730रू0 ।[1] यह एक बिडम्बना ही है कि बिहार राज्य खनिज सम्पदा की दृष्टि से उत्तर प्रदेश की अपेक्षा अधिक धनी होने के बावजूद भी प्रति व्यक्ति आय की तुलना में उत्तर प्रदेश से पीछे है । यद्यपि उत्तर प्रदेश की जनसंख्या बिहार की अपेक्षा बहुत अधिक है । जहाँ तक जनसंख्या वृद्धि की दर का प्रश्न है वह दोनों राज्यों में लगभग एक सा है। जलवायु, मिट्टी और फसलों के उत्पादन में जो भिन्नता देखने को मिलती है, वह अत्यन्त ही न्यून है । बिहार राज्य की जनसंख्या

1-सांख्यिकीय डायरी, उ0प्र0, 1991, राज्य नियोजन संस्थान, लखनऊ, पृ0-307-309.

का तीन चौथाई से भी अधिक भाग अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर करता है और गाँवों में निवास करता है। भूमि के असमान वितरण का जो स्वरूप बिहार राज्य में है, वह सम्भवत अन्य राज्यों में कम ही देखने को मिले। गरीबी और निर्धनता तथा अमीरी के बीच की खाई इतनी चौड़ी है कि इसे आसानी से पाटना भी सम्भव नहीं। इस तरह गरीबों के लिए चलायी जाने वाली योजनाओं का लाभ उन्हें कम मिल पाता है। इसका कारण यह है कि वे अधिकांश तो निरक्षर अथवा अशिक्षित हैं और कई प्रकार से पीड़ित हैं जैसे उनकी दयनीय सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति तथा उनकी बातों पर ध्यान न दिया जाना और अफसरशाही तथा नौकरशाही के चलते हुए उन्हें सरकार द्वारा चलायी जाने वाली कल्याकारी योजनाओं का लाभ नहीं मिल पाता। जहाँ तक साक्षरता का प्रश्न है ,इस दृष्टि से भी बिहार पिछड़ा हुआ है।

राज्य की कुल श्रम शक्ति में आश्रित जनसंख्या का भाग अधिक है। इससे श्रमिकों की आर्थिक स्थिति और भी निम्न हो जाती है। शिक्षा और प्रशिक्षण के अभाव में उनको अकुशल श्रम के रूप में कार्य करना पड़ता है और अत्यन्त कम मजदूरी प्राप्त करनी होती है। इसमें अधिकांश तो कृषि श्रमिक ही हैं जिन्हें मौसमी बेरोजगारी का भी शिकार होना पड़ता है। इसके साथ ही इन्हें अपनी जीविका के लिए ऐसे समय में जब कृषि कार्य नहीं रह जाता है ,अन्य काम की तलाश करनी पड़ती है। वर्तमान समय में राज्य की जनसंख्या 2 से 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है जो एक अप्रिय सूचना प्रस्तुत करती है। यद्यपि जनसंख्या का बढ़ना हर दृष्टि से घातक नहीं होता, फिर भी यह इस बात पर निर्भर करता है कि किसी राज्य की जनसंख्या उसके लिए हितकर है अथवा नहीं। यह राज्य की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

राज्य की जनसंख्या के नियंत्रण हेतु हर व्यक्ति जिस आसानी से सुझाव प्रस्तुत कर देता है क्या वास्तव में जनसंख्या नियंत्रण हेतु अपनाये गये उपायों से वांछित प्रतिफल प्राप्त किया जा सका है ? यह एक विचारणीय विषय है । यह राष्ट्र नेताओं, आयोजकों, राजनीतिज्ञों, समाजशास्त्रियों आदि सभी के सामने चुनौती बन कर उपस्थित है । जनसंख्या नियंत्रण के सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कठिनाई यह है कि राज्य की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण और निरक्षर है जो आधुनिक विचारों के स्थान पर परम्परागत विचारों को ही अपनाये हुए है और किसी भी स्थिति में वैज्ञानिक तरीकों को अपनाने को तैयार नहीं होती है । यद्यपि इसमें कुछ परिवर्तन हुआ है किन्तु ऐसा परिवर्तन वास्तव में कोई वांछित परिणाम देने में समर्थ नहीं रहा । आज भी परिवार नियोजन कार्यक्रम अपनाने में अधिकांश अशिक्षित हिचकिचाते हैं और अधिक बच्चे रखने के पक्ष में हैं । इसका एक प्रमुख कारण उनकी अशिक्षा है तथा उनके ऊपर से परम्परागत विचारों का प्रभाव नहीं हट पा रहा है । सरकार द्वारा तथा केन्द्र सरकार द्वारा परिवार नियोजन कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु अनेक प्रकार के प्रोत्साहन दिये जा रहे हैं फिर भी इस कार्यक्रम की सफलता आंशिक ही है । थोड़ी देर के लिए यदि हम यह मान भी लें कि जनसंख्या नियंत्रित कर ली गयी है किन्तु इस प्रश्न को हम कैसे उत्तरित कर पायेंगे जो 20 वर्ष की आयु वाले आदमी अथवा 20 वर्ष बाद काम चाहने वाले आदमी होंगे ? जनसंख्या नियंत्रण का प्रभाव दीर्घकालीन होगा । इसके लिए तात्कालिक प्रभाव की आवश्यकता है । तात्कालिक प्रभाव लाने के लिए हमें अपने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में रोजगार की संभावनाओं को एक बार फिर से तलाशना होगा । ग्रामीण क्षेत्रों में भी रोजगार की क्षमता विद्यमान है किन्तु उनका उपयोग किये जाने की आवश्यकता है ।

राज्य की बेरोजगारी को कम करने के लिए जहाँ एक ओर जनसंख्या नीति को इस प्रकार संचालित करना होगा कि उससे जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी रोक लग सके, वहीं दूसरी ओर , यह भी उपाय करना होगा कि रोजगार नीति और जनसंख्या नीति में सामंजस्य बना रहे । यदि इन दोनों नीतियों में सामंजस्य स्थापित नहीं किया गया तो सम्भव है कि रोजगार सृजन के सन्दर्भ में किये गये उपाय नगण्य साबित हों ।

राज्य की अशिक्षित और परम्परा का निर्वाह करने वाली जनसंख्या के समक्ष सबसे बड़ी कठिनाई उनके स्थान परिवर्तन की है । यद्यपि आधुनिक परिवहन व्यवस्था के चलते हुए इस प्रवृत्ति में कुछ परिवर्तन आया है फिर भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग आज भी अपने निवास स्थान के आस-पास ही रोजगार की तलाश में रहता है । सरकारी स्तर पर इतने बड़े पैमाने पर रोजगार का सृजन कर पाना संभव नहीं जान पड़ता है कि इससे सम्पूर्ण बेरोजगारों को रोजगार प्राप्त हो सके । इस संदर्भ में स्व-रोजगार कार्यक्रम को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है । स्व-रोजगार हेतु प्रशिक्षण और वित्तीय सुविधाओं की जो उपलब्धता वर्तमान समय में राज्य में है वह जनसंख्या के विशाल आकार की दृष्टि से अपर्याप्त ही है । अतः इसके लिए प्रशिक्षण और वित्तीय सुविधाओं को बढ़ाना राज्य की वर्तमान बेरोजगारी की माँग है । इस सन्दर्भ में एक कठिनाई यह है कि राज्य के साधन तो अत्यन्त सीमित हैं ऐसी स्थिति में राज्य किस प्रकार से पर्याप्त सुविधायें प्रदान कर सकता है । अतः शोधकर्ता का अभिमत है कि केन्द्र सरकार को इस दिशा में पहल कर महत्वपूर्ण योगदान देना चाहिए । साथ ही केन्द्र सरकार को बेरोजगारी की समस्या के अध्ययन हेतु एक उच्च स्तरीय आयोग का गठन कर राज्यों को पर्याप्त वित्तीय सहायता देने का प्रबन्ध करना चाहिए ।

शोधकर्ता ने अपने अध्ययन के दौरान यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि राज्य में बचत और विनियोग की जो स्थिति है वह भी नैराश्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत करती है । प्रति व्यक्ति आय कम होने के परिणामस्वरूप बचत नहीं हो पाता और बचत के अभाव में विनियोग सम्भव नहीं है और विनियोग के अभाव में पूंजी निर्माण सम्भव नहीं है और पूंजी निर्माण के अभाव में औद्योगिक विकास सम्भव नहीं है । इस प्रकार प्रो० आर०नर्क्से द्वारा प्रस्तुत निर्धनता का दुष्चक्र राज्य में कार्यशील दिखाई पड़ता है ।

जहाँ तक राज्य में बेरोजगारी के स्वरूप का प्रश्न है, वह कई रूपों में देखा जा सकता है । उदाहरण के लिए शिक्षित और अशिक्षित बेरोजगारी, नगरीय और ग्रामीण बेरोजगारी, प्रच्छन्न या छिपी हुई बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी (मुख्य रूप से कृषि क्षेत्र में) । राज्य नियोजन के चार दशक पूर्ण कर चुका है किन्तु अभी भी विकास और बेरोजगारी की समस्या का सही अर्थों में हल नहीं हो पाया है ।

सार्वजनिक निर्माण कार्य के द्वारा कुछ हद तक बेरोजगारी को कम करने का प्रयास किया गया है, किन्तु यह स्थायी समाधान नहीं दे सका है । स्थायी समाधान तो ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि से सम्बन्धित उद्योगों का विकास करके ही प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि कृषि आधार उद्योग कम पूंजी से संचालित हो सकते हैं और ये श्रम गहन तकनीक पर आधारित होते हैं जिससे अधिक से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में शोधकर्ता ने यह मत प्रस्तुत करना चाहा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया जाय ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्याय-7 में लघु एवं कुटीर उद्योगों से सम्बन्धित एक निर्देशनीय सूची प्रस्तुत की गयी है जिसका अर्थ केवल इतना ही है कि सूची के दिये गये लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा इनसे सम्बन्धित इकाइयों की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में भी की जा सकती है और आसानी से उन्हें कच्चा माल प्राप्त हो सकता है । उदाहरण के लिए धान से चावल बनाने का कार्य, दाल की प्रोसेसिंग, फल संरक्षण, अचार व मुरब्बे का निर्माण आदि । लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना से श्रमिकों के घर की महिलाओं को भी इसमें काम मिल सकता है और वे भी अपना योगदान उत्पादन में देकर आय बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगीं । साथ ही ऐसे उद्योगों के विकास से मौसमी बेरोजगारी की समस्या का समाधान किया जा सकता है ।

राज्य के सम्मुख एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या यह है कि राज्य खनिज सम्पदा की दृष्टि से सम्पन्न तो है किन्तु खनिजों पर आधारित उद्योग राज्य में नहीं है । राज्य की जनसंख्या का एक अल्पांश ही खनिजों के उत्पादन में श्रमिक के रूप में कार्यरत है । ऐसी स्थिति में राज्य सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह अपनी जनता के लिए राज्य में खनिज आधारित उद्योग की स्थापना हेतु सरकार से निवेदन करे और खनिज आधारित उद्योग की स्थापना कर अधिक से अधिक रोजगार के अवसर सृजन करने का प्रयास करे ।

ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता सेवाओं का भी अभाव राज्य के अन्तर्गत देखा जा सकता है । डेयरी ,पशुपालन,मुर्गीपालन,मत्स्य पालन आदि के संदर्भ में राज्य की जनसंख्या में जागरूकता कम देखी गयी है । अतः इन कृषि सम्बद्ध उद्योगों में भी बेरोजगारों को प्रवेश करने हेतु प्रेरणा तथा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ।

सन् 1985 में घोषित आर्थिक नीति के तहत आधुनिकी तकनीक पर आधारित उद्योगों के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गयी फिर भी लघु एवं कुटीर उद्योगों को भी महत्व प्रदान किया गया था । नयी आर्थिक नीति जिसकी घोषणा आठवीं योजना के शुभारंभ के साथ की गयी, उसमें भी 1985 की नीतियों का ही अनुसरण किया गया है । कुटीर एवं लघु उद्योगों में निवेश की सीमा को बढ़ाया गया है । ऐसा इसलिए किया गया है क्योंकि मुद्रा की क्रय शक्ति को देखते हुए तथा मूल्य वृद्धि की स्थिति में ऐसा किया जाना अनिवार्य हो गया था । नयी आर्थिक नीति में बहुराष्ट्रीय निगमों को अत्यधिक बढ़ावा दिया गया है जिससे लघु एवं कुटीर उद्योग भी बुरी तरह प्रभावित होंगे । क्योंकि ये बहुराष्ट्रीय निगम छोटी से छोटी वस्तुओं का उत्पादन आधुनिक तकनीक के द्वारा करती हैं और जिस देश में ये कार्यरत होती हैं वहाँ के लघु एवं कुटीर उद्योगों को नष्ट करने के लिए हर प्रकार के उपाय अपनाती हैं । हाई-टेक तकनीक पर आधारित इनकी प्रतिस्पर्धा भला कैसे विकासशील देशों के लघु एवं कुटीर उद्योग कर पायेंगे ? यह प्रश्न जितना महत्वपूर्ण है उतना ही पेचीदा भी । अतः सरकार को इस दिशा में एक बार पुनः विचार करना होगा । आधुनिकता को बढ़ावा देने, औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने तथा वस्तुओं की आपूर्ति की निरन्तरता को बनाये रखने एवं अत्याधुनिक तकनीक के आयात की दृष्टि से तथा विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से ऐसा किया गया किन्तु उस समय इस बात का ध्यान नहीं रखा गया कि इनके आगमन से हमारे देश के लघु एवं कुटीर उद्योगों का क्या होगा । बहुराष्ट्रीय निगम जहाँ टूथपेस्ट से लेकर बड़ी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, ऐसी स्थिति में बहुत से उत्पादन इन निगमों के कार्यक्षेत्र में चले जायेंगे जिससे रोजगार की मात्रा कम हो जायेगी ।

आठवीं योजना का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक क्षेत्र के विकास को प्राथमिकता देना तथा मानव विकास पर विशेष बल देना है । योजना के प्रमुख उद्देश्य अधोलिखित हैं :-

(1) पर्याप्त रोजगार पैदा करना
(2) जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाना
(3) निरक्षरता का उन्मूलन
(4) कमजोर वर्गों को सुरक्षा प्रदान करना
(5) सभी के लिए स्वच्छ पीने का पानी उपलब्ध कराना
(6) बेहतर स्वास्थ्य सुविधा
(7) कृषि पर ध्यान ।
(8) उर्जा, यातायात, संचार एवं सिंचाई के साधनों को और मजबूत बनाना ।

उपर्युक्त लक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय नियोजन के इतिहास में यह पहली बार देखने को मिला है कि नियोजन के माध्यम से रोजगार को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी है । अभी तक जितनी योजनाएं क्रियान्वित की गयी उन सभी में समय और परिस्थिति की विवशता के कारण कभी कृषि को तो कभी उद्योग को, कभी निजी क्षेत्र को तो कभी सार्वजनिक क्षेत्र को प्राथमिकता देनी पड़ती थी । कभी उपभोक्ता उद्योगों के विकास को, तो कभी आधारभूत उद्योगों के विकास को ,तो कभी कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास को प्राथमिकता प्रदान करना हमारे आयोजकों की विवशता रही । किन्तु आठवीं योजना को रोजगारपरक दृष्टि से बनाया गया है और इसमें रोजगार को उच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी है ।

गरीबी उन्मूलन को दृष्टि में रखते हुए रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना आठवीं योजना का प्राथमिक उद्देश्य है । रोजगार के सन्दर्भ में आठवीं योजना में जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं वे अधोलिखित हैं[1] :-

(1) अगले दस वर्षों में सभी को काम उपलब्ध कराने का लक्ष्य है ।

(2) इसका अर्थ होगा कि प्रतिवर्ष 10 लाख अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जांय ।

(3) बंजर भूमि के विकास, परिवर्तित कृषि, भवन निर्माण, ग्रामीण सड़कों पर कार्य, लघु पैमाने पर उत्पादन आदि जैसी रोजगारोन्मुखी अवसर पैदा करने वाली विकासशील गतिविधियों को प्रोत्साहन देना ।

(4) नये रोजगार के अवसर पैदा करने के अतिरिक्त उन लोगों की आय में, जो किसी व्यवसाय से जुड़े हुए है, कार्य क्षमता में सुधार करके, वृद्धि की जानी है ।

इस प्रकार रोजगार के सन्दर्भ में आठवीं योजना के उद्देश्य निःसंदेह अत्यन्त आकर्षक और उपयोगी दिखाई पड़ रहे हैं किन्तु इन लक्ष्यों को जब तक प्राप्त नहीं कर लिया जाता तब तक ये लक्ष्य मात्र आदर्शात्मक लक्ष्य ही रहेंगे । वर्तमान आर्थिक गतिशीलता के सन्दर्भ में रोजगार से सम्बन्धित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु यदि योजना का कड़ाई से क्रियान्वयन किया गया तो लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं । इसके साथ ही अन्य कई उद्देश्य जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सामान्यजन एवं रोजगार को प्रभावित कर सकते हैं उनका विवरण अधोलिखित क्रम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

जनसंख्या की बढ़ती हुई स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए आठवीं योजना में यह कहा गया है कि यदि हम अपने देश की जनसंख्या में, प्रतिवर्ष आस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या के बराबर वृद्धि करते रहे तो हमारे विकास के प्रति किये गये सभी प्रयत्न निरर्थक हो जायेगें । इस दृष्टि से जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं, वे अधोलिखित हैं :-

(1) योजनावधि के अन्त तक वर्तमान 30•5 प्रति हजार की जन्म-दर को घटा कर 26 प्रति हजार लाने का लक्ष्य है ।

(2) जनसंख्या वृद्धि पर काबू पाने की दिशा में किये गये विस्तृत उपायों में महिला साक्षरता, विवाह की आयु, महिलाओं के लिए रोजगार अवसर तथा समाज में उनका स्थान, शिशु मृत्यु-दर में कमी, बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन एवं मातृत्व स्वास्थ्य की सुविधा प्रदान करना शामिल है ।

उल्लेख्य है कि पहली बार ऐसा किया जा सकता है जब किसी योजना के लक्ष्यों में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति बनाने पर विचार किया गया हो । आठवीं योजना के अन्तर्गत यह महसूस किया गया कि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति जिसकी आवश्यकता देश को बहुत दिनों से थी, पहली बार बनाने पर विचार किया गया ।[1] अब यह तो समय ही बतायेगा कि हम राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का निर्माण किस प्रकार करते हैं और इससे देश की जनसंख्या को नियंत्रित करने में किस सीमा तक सफलता प्राप्त हो सकती है ? सत्यता तो यह है कि यदि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का निर्माण कर इसका क्रियान्वयन प्रभावी ढंग से नहीं किया गया तो वांछित परिणाम भी संदिग्ध ही होगें ।

शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर शोधकर्ता ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि बिहार राज्य की बेरोजगारी समस्या का समाधान तत्काल कर पाना संभवतः कठिन ही है । बड़े पैमाने की बेरोजगारी को दूर करने के लिए जितनी मात्रा में संसाधनों की आवश्यकता होगी ,सम्प्रति उसकी तत्काल व्यवस्था कर पाना राज्य के सीमित साधनों से कठिन ही जान पड़ता है । बिहार राज्य की ग्रामीण क्षेत्र की बेरोजगारी को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम,समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम,भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम,अन्त्योदय कार्यक्रम आदि के प्रभावी कार्यान्वयन द्वारा कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है । इसके स्थायी निराकरण के लिए राज्य सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित उद्योगों को विकसित करना होगा और शहरी क्षेत्रों में भी लघु एवं कुटीर उद्योग तथा हस्त शिल्प जैसे व्यवसायों को विकसित करना होगा । यदि राज्य और केन्द्र सरकारें द्वारा इस समस्या के समाधान हेतु सम्मिलित रूप से प्रयास किया जाय,तो इस समस्या का समाधान आने वाले दिनों में किया जा सकता है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

(1) अरोड़ा, आर0सी : इण्डस्ट्रीज एण्ड रूरल डेवलपमेण्ट इन ए फ्री सोसाइटी, जार्ज एलेन एण्ड आल्विन, लन्दन, 1945.

(2) भारद्वाज, रमेश, सी0 : इम्प्लायमेण्ट एण्ड अनइम्प्लायमेण्ट, एलाइड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1938.

(3) भट्ट, वी0वी0 : इम्प्लायमेण्ट एण्ड कैपिटल फार्मेशन इन अण्डरडेवलप्ड इकोनामी, ओरिएण्ट लांगमैन, बाम्बे, 1960.

(4) चौधरी, प्रमीत : एस्पेक्ट आफ इण्डियन इकोनामिक डेवलपमेण्ट, जार्ज एलेन एण्ड आल्विन, 1971.

(5) दन्तवाला, एम0एन0 : पावर्टी इन इण्डिया, देन एण्ड नाऊ (1870-1970) मैकमिलन, 1973

(6) दास, नाबा गोपाल : अनइम्प्लायमेण्ट, फुल इम्प्लायमेण्ट एण्ड इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, 1960.

(7)दास गुप्ता,ए0के0	:	कीन्सियन इकोनामिक सिम्पोजियम, पीपुल्स पब्लिशिंग,देलही,1956.
(8)देसाई,के0जी0	:	ह्यूमन प्राब्लम्ब्स इन इण्डियन इण्डस्ट्रीज, सिन्धु पब्लिकेशन,देलही,1961.
(9)धोलकिया,जितेन्द्र	:	अनइम्प्लायमेण्ट एण्ड इम्प्लायमेण्ट पालिसी इन इण्डिया,स्टर्लिंग पब्लिशर्स, देलही,1977.
(10)धार,पी0एन0एण्डर लिंडाल एच0ई0	:	इण्डियन इकोनामिकडेवलपमेण्ट,एशिया पब्लिशिंग हाउस,बाम्बे,1961.
(11)डिलार्ड,डडले	:	द इकोनामिक्स आफ जे0एम0कीन्स (द थियरी आफ एमोनेट्री पोलिसी) क्रास बाई लुकउड एण्ड सन्सलि0,लन्दन, 1966.
(12)फ्री,जे0सी0एस0 एण्ड रोनिस,जी0	:	डेवलपमेण्ट आफ लेबर सरप्लस इकोनामी: थियरी एण्ड प्रैक्टिस,होमवुड इलीनोइज,1964
(13)फलनर,विलियम	:	मोनेट्री पालिसी एण्ड फुल इम्प्लायमेण्ट
(14)गिटाण्ड,पी0आर0	:	हाउ टू इन्क्रीज अपारचूनिटी फार इम्प्लायमेण्ट,क्रिश्चियन केलरम कालेज, बाम्बे।
(15)गिरी,बी0वी0	:	जाब्स फार मिलियन्स,वायास पब्लिशर्स, मद्रास,1940.

(16)गुहा,सुनील	:	रूरल मैनपावर एण्ड कैपिटल फारमेशन इन इण्डिया,एकेडमिक बुक,बाम्बे,1969.
(17)गुप्ता,आर0डी0 एण्ड चोपड़ा,पी0एम0	:	कीन्सियन इकोनामिक्स, एस0नागिन एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स,जलन्धर सिटी, 1964.
(18)हरीस,एस0ई0	:	द न्यू इकोनामिक्स,डेनिस डोब्सन, लन्दन1968.
(19)हूडा,मैनपुर	:	प्राब्लम्स आफ अनइम्प्लायमेण्ट इन इण्डिया, एलाइड पब्लिशर्स,बाम्बे,1974.
(20)जंगीर,जी0सी0	:	आवर इकोनामिक प्राब्लम्स,नेशनल पब्लिशर्स,देलही,1965.
(21)जॉफ एण्डस्टीवर्ट	:	मैनपावर रिसोर्सेज एण्ड यूटिलाइजेशन्स, जॉन विली,न्यूयार्क,1951.
(22)कालवेक,इडवर्ड,डी0	:	लेबर मार्केट्स एण्ड अनइम्प्लायमेण्ट, वेड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी,कैलीफोर्निया, 1973.
(23)कीन्स,जे0एम0	:	दि जनरल थियरी आफ इम्प्लायमेण्ट, मनी एण्ड इण्टरेस्ट,मैकमिलन ,लन्दन, 1936.
(24)लर्नर,ए0पी0	:	इकोनामिक्स आफ इम्प्लायमेण्ट,1951.
(25)मेहता,एम0एम0	:	ह्यूमन रिसोर्सेज डेवलपमेण्ट प्लानिंग विथ स्पेशल रिफरेन्स टू एशिया एण्ड फार ईस्ट,दिल्ली,1976.

(26) माउलें, जे0 एण्ड कोस्टा : इम्प्लायमेण्ट पालिसीज इन डेवलपिंग कन्ट्रीज, जार्ज एलन एण्ड आन्विन लि0, लन्दन, 1974.

(27) मुकर्जी, पी0के0 : इकोनामिक सर्वे एण्ड अण्डरडेवलण्ड कन्ट्रीज: ए स्टडी इन मैथोलाजी, एशिया पब्लिशिंग हाउस, न्यू देलही, 1960.

(28) म्र्डल, गुन्नार : एशियन ड्रामा, एलन लैन, द पेनग्विन प्रेस, लन्दन, 1968.

(29) नाग, डी0एस0 : करेक्टरेस्टिक्स आफ अण्डरडेवलण्ड इकोनामीज ।

(30) नैक, जे0पी0 : एजुकेशन प्लानिंग इन इण्डिया, एलाइड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1965.

(31) नर्क्से, आर0 : प्राब्लम्ब्स आफ कैपिटल फारमेशन इन अण्डरडेवलण्ड कन्ट्रीज, बेसवेल आक्सफोर्ड 1953.

(32) ओहलिन, : द प्राब्लम्ब्स आफ इम्प्लायमेण्ट स्टेब्लाइजेशन, कैम्ब्रिज हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1951.

(33) पद्मनाभ, सी0वी0 : इकोनामिक्स आफ एजुकेशनल प्लानिंग इन इण्डिया, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली ।

(34) प्रसाद, प्रधान, एच0 : ग्रोथ विथ फुल इम्प्लायमेण्ट, एलाइड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1970

(35) प्रमी, एम0के0 : एजूकेटेड प्लानिंग इन इण्डिया, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, न्यू देलही, 1972.

(36) पीगू, ए0सी0 : द इक्विलिब्रियम एण्ड फुल इम्प्लायमेण्ट, मैकमिलन, लन्दन, 1941.

(37) राव, वी0के0आर0वी0 : ऐसेज इन इकोनामिक डेवलपमेण्ट, एशिया पब्लिशिंग, बाम्बे, 1964.
इनवेस्टमेण्ट, इनकम एण्ड मल्टी प्लायर इन ऐन अण्डरडेवलप्ड इकोनामी, एलाइड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1948.

(38) राज, के0एन0 : इम्प्लायमेण्ट अस्पेक्ट्स आफ प्लानिंग इन अण्डरडेवलप्ड कन्ट्रीज, नेशनल बैंक आफ इजिप्ट कैरो, 1957.

(39) रोबिन्सन मिसेज : ऐसेज आन दि थ्योरी आफ इम्प्लायमेण्ट, मैकमिलन, लन्दन, 1951

(40) सक्सेना, पी0जी0 : एजूकेटेड अनइम्प्लायमेण्ट इन इण्डिया, कामर्शियल पब्लिकेशन ब्यूरो, न्यू देलही, 1972.

(41) शुम्पीटर, जे0ए0 : टेन ग्रेट इकोनामिस्ट, आक्सफोर्ड यूनि0 प्रेस, 1968.

(42) वकील, सी0एन0 : पावर्टी एण्ड प्लानिंग, एलाइड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1962.

(43)कुमारस्वामी,वी0 : पापुलेशन एण्ड सोसाइटी इन इण्डिया

(44)पैरी,एच0सी0(सम्पा0): पापुलेशन एण्ड इट्स प्राब्लम्स,1974

(45)बैरेल्सन,बर्नार्ड(सम्पा0): पापुलेशन पालिसीज इन डेवलप्ड कन्ट्रीज, न्यूयार्क,1974.

(46)सुरिन्दर,जे0 : माडर्नाइजिंग इण्डियन पीजेन्ट्स-ए स्टडी आफ सिक्स्थ विलेज इन ईस्टर्न यू0पी0, 1977,एशियन एजुकेशनल सर्विसेज,न्यू देलही।

(47)शर्मा,टी0आर0एण्ड वार्ष्णेय,जे0सी0 : आर्थिक नियोजन-सिद्धान्त एवं समस्याएं 1976,आगरा ।

(48)सिंह,एस0पी0 : आर्थिक नियोजन सिद्धान्त एवं व्यवहार द्वितीय संस्करण,1974,राजहंस प्रकाशन मन्दिर,धर्म आलोक,रामनगर ,मेरठ ।

(49)डी0आर0गाडगिल : प्लानिंग एण्ड एग्रीकल्चरल डेवलपमेन्ट

(50)तारलोक सिंह : इण्डियाज डेवलपमेन्ट एक्सपीरिएन्स

(51)डा0आर0के0गोबिल : मोबिलाइजेशन आफ रिसोर्सेज थ्रू एग्रीकल्चरल टेक्स इन यू0पी0 ।

(52)मारवेर्ट,डी0 : इम्प्लायमेन्ट इम्प्लीकेशन आफ इंस्टीट्यूलाइजेशन इन डेवलपिंग कन्ट्रीज ।

(53)सुमेचर,ई0एफ0 : स्माल इज ब्यूटीफुल,1975.

सरकारी प्रकाशन एवं रिपोर्ट

(1) आल इण्डिया रूरल क्रेडिट सर्वे रिपोर्ट आफ द कमेटी आफ डायरेक्टर, वाल्यूम-1 द सर्वे पार्ट-1 (रूरल फैमिलीज, रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, बाम्बे) 1956.

(2) भगवती कमेटी रिपोर्ट आन इम्प्लायमेण्ट, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, डिपार्टमेण्ट आफ लेबर एण्ड इम्प्लायमेण्ट, 1973.

(3) दन्तवाला, एम०एल०-रिपोर्ट आफ द कमेटी आफ एक्सपर्ट आन इम्प्लायमेण्ट इस्टीमेट्स, प्लानिंग कमीशन, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, 1970.

(4) गजेन्द्र गधार-नेशनल कमीशन आन लेबर, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, मिनिस्ट्री आफ लेबर एण्ड इम्प्लायमेण्ट एण्ड रीहेबिलिटेशन, 1969.

(5) नेशनल सर्वे (सैम्पुल), डिपार्टमेण्ट आफ स्टैटिस्टिक्स, न्यू दिल्ली, 1973.

(6) इकोनामिक सर्वे आफ इण्डिया 1991-92

(7) योजना आयोग द्वारा प्रकाशित पंचवर्षीय योजनाओं के प्रकाशन।

(8) बिहार सरकार द्वारा प्रकाशित सेलेक्टेड प्लान स्टैटिस्टिक्स 1980-81

(9) बिहार एक झलक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, बिहार सरकार, 1992

(10) बिहार प्रोग्रेस, 1980-81

(11) उपलब्धियों का वर्ष 1985-86, बिहार सरकार।

बिहार में बेरोजगारी की समस्या

अर्थशास्त्र में पी-एच0 डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

1992

निर्देशक :
डॉ० एस० एन० पाण्डेय
अर्थशास्त्र विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

शोधकर्ता :
दीन दयाल सिंह

अर्थशास्त्र विभाग

समाज विज्ञान संकाय

काशी विद्यापीठ, वाराणसी-२

अध्याय-8

उपसंहार

उपसंहार

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है । इस राज्य की सम्पूर्ण आय में कृषि क्षेत्र का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । खनिज सम्पदा की दृष्टि से भी इस राज्य का योगदान देश की अर्थव्यवस्था में 30 प्रतिशत से अधिक का है । किन्तु यह देखा गया कि राज्य की प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त कम है और निर्धनता, गरीबी, बेरोजगारी, असमानता, अशिक्षा आदि का जो आलम इस राज्य में देखा जा सकता है, वह मुश्किल से ही किसी खनिज सम्पदा की दृष्टि से सम्पन्न अन्य किसी राज्य में दिखायी दे । उत्तर प्रदेश जो इसका पड़ोसी राज्य है उसकी प्रति व्यक्ति आय सातवीं योजना की अवधि में 992 रू0 थी जबकि बिहार राज्य की प्रति व्यक्ति आय इसी अवधि में 730रू0 ।[1] यह एक बिडम्बना ही है कि बिहार राज्य खनिज सम्पदा की दृष्टि से उत्तर प्रदेश की अपेक्षा अधिक धनी होने के बावजूद भी प्रति व्यक्ति आय की तुलना में उत्तर प्रदेश से पीछे है । यद्यपि उत्तर प्रदेश की जनसंख्या बिहार की अपेक्षा बहुत अधिक है । जहाँ तक जनसंख्या वृद्धि की दर का प्रश्न है वह दोनों राज्यों में लगभग एक सा है। जलवायु, मिट्टी और फसलों के उत्पादन में जो भिन्नता देखने को मिलती है, वह अत्यन्त ही न्यून है । बिहार राज्य की जनसंख्या

1-सांख्यिकीय डायरी, उ0प्र0, 1991, राज्य नियोजन संस्थान, लखनऊ, पृ0-307-309.

का तीन चौथाई से भी अधिक भाग अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर करता है और गाँवों में निवास करता है। भूमि के असमान वितरण का जो स्वरूप बिहार राज्य में है, वह संभवत अन्य राज्यों में कम ही देखने को मिले। गरीबी और निर्धनता तथा अमीरी के बीच की खाई इतनी चौड़ी है कि इसे आसानी से पाटना भी संभव नहीं। इस तरह गरीबों के लिए चलायी जाने वाली योजनाओं का लाभ उन्हें कम मिल पाता है। इसका कारण यह है कि वे अधिकांश तो निरक्षर अथवा अशिक्षित हैं और कई प्रकार से पीड़ित हैं जैसे उनकी दयनीय सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति तथा उनकी बातों पर ध्यान न दिया जाना और अफसरशाही तथा नौकरशाही के चलते हुए उन्हें सरकार द्वारा चलायी जाने वाली कल्याकारी योजनाओं का लाभ नहीं मिल पाता। जहाँ तक साक्षरता का प्रश्न है, इस दृष्टि से भी बिहार पिछड़ा हुआ है।

राज्य की कुल श्रम शक्ति में आश्रित जनसंख्या का भाग अधिक है। इससे श्रमिकों की आर्थिक स्थिति और भी निम्न हो जाती है। शिक्षा और प्रशिक्षण के अभाव में उनको अकुशल श्रम के रूप में कार्य करना पड़ता है और अत्यन्त कम मजदूरी प्राप्त करनी होती है। इसमें अधिकांश तो कृषि श्रमिक ही हैं जिन्हें मौसमी बेरोजगारी का भी शिकार होना पड़ता है। इसके साथ ही इन्हें अपनी जीविका के लिए ऐसे समय में जब कृषि कार्य नहीं रह जाता है, अन्य काम की तलाश करनी पड़ती है। वर्तमान समय में राज्य की जनसंख्या 2 से 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है जो एक अप्रिय सूचना प्रस्तुत करती है। यद्यपि जनसंख्या का बढ़ना हर दृष्टि से घातक नहीं होता, फिर भी यह इस बात पर निर्भर करता है कि किसी राज्य की जनसंख्या उसके लिए हितकर है अथवा नहीं। यह राज्य की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

राज्य की जनसंख्या के नियंत्रण हेतु हर व्यक्ति जिस आसानी से सुझाव प्रस्तुत कर देता है क्या वास्तव में जनसंख्या नियंत्रण हेतु अपनाये गये उपायों से वांछित प्रतिफल प्राप्त किया जा सका है ? यह एक विचारणीय विषय है । यह राष्ट्र नेताओं, आयोजकों, राजनीतिज्ञों, समाजशास्त्रियों आदि सभी के सामने चुनौती बन कर उपस्थित है । जनसंख्या नियंत्रण के सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कठिनाई यह है कि राज्य की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण और निरक्षर है जो आधुनिक विचारों के स्थान पर परम्परागत विचारों को ही अपनाये हुए है और किसी भी स्थिति में वैज्ञानिक तरीकों को अपनाने को तैयार नहीं होती है । यद्यपि इसमें कुछ परिवर्तन हुआ है किन्तु ऐसा परिवर्तन वास्तव में कोई वांछित परिणाम देने में समर्थ नहीं रहा । आज भी परिवार नियोजन कार्यक्रम अपनाने में अधिकांश अशिक्षित हिचकिचाते हैं और अधिक बच्चे रखने के पक्ष में हैं । इसका एक प्रमुख कारण उनकी अशिक्षा है तथा उनके ऊपर से परम्परागत विचारों का प्रभाव नहीं हट पा रहा है । सरकार द्वारा तथा केन्द्र सरकार द्वारा परिवार नियोजन कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु अनेक प्रकार के प्रोत्साहन दिये जा रहे हैं फिर भी इस कार्यक्रम की सफलता आंशिक ही है । थोड़ी देर के लिए यदि हम यह मान भी लें कि जनसंख्या नियंत्रित कर ली गयी है किन्तु इस प्रश्न को हम कैसे उत्तरित कर पायेंगे जो 20 वर्ष की आयु वाले आदमी अथवा 20 वर्ष बाद काम चाहने वाले आदमी होंगे ? जनसंख्या नियंत्रण का प्रभाव दीर्घकालीन होगा । इसके लिए तात्कालिक प्रभाव की आवश्यकता है । तात्कालिक प्रभाव लाने के लिए हमें अपने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में रोजगार की संभावनाओं को एक बार फिर से तलाशना होगा । ग्रामीण क्षेत्रों में भी रोजगार की क्षमता विद्यमान है किन्तु उनका उपयोग किये जाने की आवश्यकता है ।

राज्य की बेरोजगारी को कम करने के लिए जहां एक ओर जनसंख्या नीति को इस प्रकार संचालित करना होगा कि उससे जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी रोक लग सके, वहीं दूसरी ओर , यह भी उपाय करना होगा कि रोजगार नीति और जनसंख्या नीति में सामंजस्य बना रहे । यदि इन दोनों नीतियों में सामंजस्य स्थापित नहीं किया गया तो सम्भव है कि रोजगार सृजन के सन्दर्भ में किये गये उपाय नगण्य साबित हों ।

राज्य की अशिक्षित और परम्परा का निर्वाह करने वाली जनसंख्या के समक्ष सबसे बड़ी कठिनाई उनके स्थान परिवर्तन की है । यद्यपि आधुनिक परिवहन व्यवस्था के चलते हुए इस प्रवृत्ति में कुछ परिवर्तन आया है फिर भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग आज भी अपने निवास स्थान के आस-पास ही रोजगार की तलाश में रहता है । सरकारी स्तर पर इतने बड़े पैमाने पर रोजगार का सृजन कर पाना संभव नहीं जान पड़ता है कि इससे सम्पूर्ण बेरोजगारों को रोजगार प्राप्त हो सके । इस संदर्भ में स्व-रोजगार कार्यक्रम को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है । स्व-रोजगार हेतु प्रशिक्षण और वित्तीय सुविधाओं की जो उपलब्धता वर्तमान समय में राज्य में है वह जनसंख्या के विशाल आकार की दृष्टि से अपर्याप्त ही है । अतः इसके लिए प्रशिक्षण और वित्तीय सुविधाओं को बढ़ाना राज्य की वर्तमान बेरोजगारी की मांग है । इस सन्दर्भ में एक कठिनाई यह है कि राज्य के साधन तो अत्यन्त सीमित हैं ऐसी स्थिति में राज्य किस प्रकार से पर्याप्त सुविधायें प्रदान कर सकता है । अतः शोधकर्ता का अभिमत है कि केन्द्र सरकार को इस दिशा में पहल कर महत्वपूर्ण योगदान देना चाहिए । साथ ही केन्द्र सरकार को बेरोजगारी की समस्या के अध्ययन हेतु एक उच्च स्तरीय आयोग का गठन कर राज्यों को पर्याप्त वित्तीय सहायता देने का प्रबन्ध करना चाहिए ।

शोधकर्ता ने अपने अध्ययन के दौरान यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि राज्य में बचत और विनियोग की जो स्थिति है वह भी नैराश्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत करती है । प्रति व्यक्ति आय कम होने के परिणामस्वरूप बचत नहीं हो पाता और बचत के अभाव में विनियोग संभव नहीं है और विनियोग के अभाव में पूंजी निर्माण संभव नहीं है और पूंजी निर्माण के अभाव में औद्योगिक विकास संभव नहीं है । इस प्रकार प्रो० आर०नर्क्से द्वारा प्रस्तुत निर्धनता का दुष्चक्र राज्य में कार्यशील दिखाई पड़ता है ।

जहाँ तक राज्य में बेरोजगारी के स्वरूप का प्रश्न है, वह कई रूपों में देखा जा सकता है । उदाहरण के लिए शिक्षित और अशिक्षित बेरोजगारी, नगरीय और ग्रामीण बेरोजगारी, प्रच्छन्न या छिपी हुई बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी (मुख्य रूप से कृषि क्षेत्र में) । राज्य नियोजन के चार दशक पूर्ण कर चुका है किन्तु अभी भी विकास और बेरोजगारी की समस्या का सही अर्थों में हल नहीं हो पाया है ।

सार्वजनिक निर्माण कार्य के द्वारा कुछ हद तक बेरोजगारी को कम करने का प्रयास किया गया है, किन्तु यह स्थायी समाधान नहीं दे सका है । स्थायी समाधान तो ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि से सम्बन्धित उद्योगों का विकास करके ही प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि कृषि आधार उद्योग कम पूंजी से संचालित हो सकते हैं और ये श्रम गहन तकनीक पर आधारित होते हैं जिससे अधिक से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में शोधकर्ता ने यह मत प्रस्तुत करना चाहा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया जाय ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्याय-7 में लघु एवं कुटीर उद्योगों से सम्बन्धित एक निर्देशनीय सूची प्रस्तुत की गयी है जिसका अर्थ केवल इतना ही है कि सूची के दिये गये लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा इनसे सम्बन्धित इकाइयों की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में भी की जा सकती है और आसानी से उन्हें कच्चा माल प्राप्त हो सकता है । उदाहरण के लिए धान से चावल बनाने का कार्य, दाल की प्रोसेसिंग, फल संरक्षण, अचार व मुरब्बे का निर्माण आदि । लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना से श्रमिकों के घर की महिलाओं को भी इसमें काम मिल सकता है और वे भी अपना योगदान उत्पादन में देकर आय बढ़ाने में सहायक सिद्ध होंगी । साथ ही ऐसे उद्योगों के विकास से मौसमी बेरोजगारी की समस्या का समाधान किया जा सकता है ।

राज्य के सम्मुख एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या यह है कि राज्य खनिज सम्पदा की दृष्टि से सम्पन्न तो है किन्तु खनिजों पर आधारित उद्योग राज्य में नहीं है । राज्य की जनसंख्या का एक अल्पांश ही खनिजों के उत्पादन में श्रमिक के रूप में कार्यरत है । ऐसी स्थिति में राज्य सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह अपनी जनता के लिए राज्य में खनिज आधारित उद्योग की स्थापना हेतु सरकार से निवेदन करे और खनिज आधारित उद्योग की स्थापना कर अधिक से अधिक रोजगार के अवसर सृजन करने का प्रयास करे ।

ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता सेवाओं का भी अभाव राज्य के अन्तर्गत देखा जा सकता है । डेयरी ,पशुपालन,मुर्गीपालन,मत्स्य पालन आदि के संदर्भ में राज्य की जनसंख्या में जागरूकता कम देखी गयी है । अतः इन कृषि सम्बद्ध उद्योगों में भी बेरोजगारों को प्रवेश करने हेतु प्रेरणा तथा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ।

सन् 1985 में घोषित आर्थिक नीति के तहत आधुनिकी तकनीक पर आधारित उद्योगों के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गयी फिर भी लघु एवं कुटीर उद्योगों को भी महत्त्व प्रदान किया गया था । नयी आर्थिक नीति जिसकी घोषणा आठवीं योजना के शुभारंभ के साथ की गयी, उसमें भी 1985 की नीतियों का ही अनुसारण किया गया है । कुटीर एवं लघु उद्योगों में निवेश की सीमा को बढ़ाया गया है । ऐसा इसलिए किया गया है क्योंकि मुद्रा की क्रय शक्ति को देखते हुए तथा मूल्य वृद्धि की स्थिति में ऐसा किया जाना अनिवार्य हो गया था । नयी आर्थिक नीति में बहुराष्ट्रीय निगमों को अत्यधिक बढ़ावा दिया गया है जिससे लघु एवं कुटीर उद्योग भी बुरी तरह प्रभावित होंगे । क्योंकि ये बहुराष्ट्रीय निगम छोटी से छोटी वस्तुओं का उत्पादन आधुनिक तकनीक के द्वारा करती हैं और जिस देश में ये कार्यरत होती हैं वहाँ के लघु एवं कुटीर उद्योगों को नष्ट करने के लिए हर प्रकार के उपाय अपनाती हैं । हाई-टेक तकनीक पर आधारित इनकी प्रतिस्पर्धा भला कैसे विकासशील देशों के लघु एवं कुटीर उद्योग कर पायेंगे ? यह प्रश्न जितना महत्वपूर्ण है उतना ही पेचीदा भी । अतः सरकार को इस दिशा में एक बार पुनः विचार करना होगा । आधुनिकता को बढ़ावा देने, औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने तथा वस्तुओं की आपूर्ति की निरन्तरता को बनाये रखने एवं अत्याधुनिक तकनीक के आयात की दृष्टि से तथा विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से ऐसा किया गया किन्तु उस समय इस बात का ध्यान नहीं रखा गया कि इनके आगमन से हमारे देश के लघु एवं कुटीर उद्योगों का क्या होगा । बहुराष्ट्रीय निगम जहाँ टूथपेस्ट से लेकर बड़ी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, ऐसी स्थिति में बहुत से उत्पादन इन निगमों के कार्यक्षेत्र में चले जायेंगे जिससे रोजगार की मात्रा कम हो जायेगी ।

आठवीं योजना का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक क्षेत्र के विकास को प्राथमिकता देना तथा मानव विकास पर विशेष बल देना है । योजना के प्रमुख उद्देश्य अधोलिखित हैं :-

(1) पर्याप्त रोजगार पैदा करना
(2) जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाना
(3) निरक्षरता का उन्मूलन
(4) कमजोर वर्गों को सुरक्षा प्रदान करना
(5) सभी के लिए स्वच्छ पीने का पानी उपलब्ध कराना
(6) बेहतर स्वास्थ्य सुविधा
(7) कृषि पर ध्यान ।
(8) उर्जा,यातायात,संचार एवं सिंचाई के साधनों को और मजबूत बनाना ।

उपर्युक्त लक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय नियोजन के इतिहास में यह पहली बार देखने को मिला है कि नियोजन के माध्यम से रोजगार को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी है । अभी तक जितनी योजनाएं क्रियान्वित की गयी उन सभी में समय और परिस्थिति की विवशता के कारण कभी कृषि को तो कभी उद्योग को, कभी निजी क्षेत्र को तो कभी सार्वजनिक क्षेत्र को प्राथमिकता देनी पड़ती थी । कभी उपभोक्ता उद्योगों के विकास को, तो कभी आधारभूत उद्योगों के विकास को ,तो कभी कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास को प्राथमिकता प्रदान करना हमारे आयोजकों की विवशता रही । किन्तु आठवीं योजना को रोजगारपरक दृष्टि से बनाया गया है और इसमें रोजगार को उच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी है ।

गरीबी उन्मूलन को दृष्टि में रखते हुए रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना आठवीं योजना का प्राथमिक उद्देश्य है । रोजगार के सन्दर्भ में आठवीं योजना में जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं वे अधोलिखित हैं[1] :-

(1) अगले दस वर्षों में सभी को काम उपलब्ध कराने का लक्ष्य है ।

(2) इसका अर्थ होगा कि प्रतिवर्ष 10 लाख अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जांय ।

(3) बंजर भूमि के विकास, परिवर्तित कृषि, भवन निर्माण, ग्रामीण सड़कों पर कार्य, लघु पैमाने पर उत्पादन आदि जैसी रोजगारोन्मुखी अवसर पैदा करने वाली विकासशील गतिविधियों को प्रोत्साहन देना ।

(4) नये रोजगार के अवसर पैदा करने के अतिरिक्त उन लोगों की आय में, जो किसी व्यवसाय से जुड़े हुए है, कार्य क्षमता में सुधार करके, वृद्धि की जानी है ।

इस प्रकार रोजगार के सन्दर्भ में आठवीं योजना के उद्देश्य नि:सदेह अत्यन्त आकर्षक और उपयोगी दिखाई पड़ रहे हैं किन्तु इन लक्ष्यों को जब तक प्राप्त नहीं कर लिया जाता तब तक ये लक्ष्य मात्र आदर्शात्मक लक्ष्य ही रहेंगे । वर्तमान आर्थिक गतिशीलता के सन्दर्भ में रोजगार से सम्बन्धित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु यदि योजना का कड़ाई से क्रियान्वयन किया गया तो लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं । इसके साथ ही अन्य कई उद्देश्य जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सामान्यजन एवं रोजगार को प्रभावित कर सकते हैं उनका विवरण अधोलिखित क्रम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

जनसंख्या की बढ़ती हुई स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए आठवीं योजना में यह कहा गया है कि यदि हम अपने देश की जनसंख्या में, प्रतिवर्ष आस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या के बराबर वृद्धि करते रहे तो हमारे विकास के प्रति किये गये सभी प्रयत्न निरर्थक हो जायेगें । इस दृष्टि से जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं, वे अधोलिखित हैं :-

(1) योजनावधि के अन्त तक वर्तमान 30•5 प्रति हजार की जन्म-दर को घटा कर 26 प्रति हजार लाने का लक्ष्य है ।

(2) जनसंख्या वृद्धि पर काबू पाने की दिशा में किये गये विस्तृत उपायों में महिला साक्षरता, विवाह की आयु, महिलाओं के लिए रोजगार अवसर तथा समाज में उनका स्थान, शिशु मृत्यु-दर में कमी, बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन एवं मातृत्व स्वास्थ्य की सुविधा प्रदान करना शामिल है ।

उल्लेख्य है कि पहली बार ऐसा किया जा सकता है जब किसी योजना के लक्ष्यों में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति बनाने पर विचार किया गया हो । आठवीं योजना के अन्तर्गत यह महसूस किया गया कि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति जिसकी आवश्यकता देश को बहुत दिनों से थी, पहली बार बनाने पर विचार किया गया ।[1] अब यह तो समय ही बतायेगा कि हम राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का निर्माण किस प्रकार करते हैं और इससे देश की जनसंख्या को नियंत्रित करने में किस सीमा तक सफलता प्राप्त हो सकती है ? सत्यता तो यह है कि यदि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का निर्माण कर इसका क्रियान्वयन प्रभावी ढंग से नहीं किया गया तो वांछित परिणाम भी संदिग्ध ही होगें ।

शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर शोधकर्ता ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि बिहार राज्य की बेरोजगारी समस्या का समाधान तत्काल कर पाना संभवतः कठिन ही है । बड़े पैमाने की बेरोजगारी को दूर करने के लिए जितनी मात्रा में संसाधनों की आवश्यकता होगी ,सम्प्रति उसकी तत्काल व्यवस्था कर पाना राज्य के सीमित साधनों से कठिन ही जान पड़ता है । बिहार राज्य की ग्रामीण क्षेत्र की बेरोजगारी को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम,समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम,भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम,अन्त्योदय कार्यक्रम आदि के प्रभावी कार्यान्वयन द्वारा कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है । इसके स्थायी निराकरण के लिए राज्य सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित उद्योगों को विकसित करना होगा और शहरी क्षेत्रों में भी लघु एवं कुटीर उद्योग तथा हस्त शिल्प जैसे व्यवसायों को विकसित करना होगा । यदि राज्य और केन्द्र सरकारें द्वारा इस समस्या के समाधान हेतु सम्मिलित रूप से प्रयास किया जाय,तो इस समस्या का समाधान आने वाले दिनों में किया जा सकता है ।
